साहित्यमाला ग्रंथ योजना

पर्यावरण विमर्श

पर्यावरण विमर्श

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

साहित्यमाला योजना

पर्यावरण विमर्श

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय,
भारत सरकार

PED-1036
450-2024 (DSK-II)

साहित्यमाला : पर्यावरण विमर्श
© भारत सरकार, **2024**

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/9689

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइटःwww.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in

		मूल्य
देश में	Inland	₹ 154
विदेश	Foreign	$ 1.82
		£ 1.43

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सत्यमेव जयते

पर्यावरण विमर्श

परामर्श एवं संपादक मंडल

प्रधान संपादक

प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर'

परामर्श मंडल

प्रो. जी. गोपीनाथन
प्रो. चक्रधर त्रिपाठी
प्रो. श्रीराम परिहार
प्रो. नरेंद्र मिश्र
प्रो. किरण हजारिका
प्रो. विशाला शर्मा
श्री कुलदीप अग्निशेखर

संपादन मंडल

संपादक

डॉ. अनुपम माथुर
डॉ. नूतन पाण्डेय

सह–संपादक

डॉ. प्रतिष्ठा श्रीवास्तव
श्री प्रदीप कुमार ठाकुर

कार्यालयीन व्यवस्था

विक्रांत हुड्डा
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

पर्यावरण विमर्श
साहित्यमाला ग्रंथ योजना

अनुक्रमणिका

प्रधान संपादक की कलम से
संपादकीय

1.	आधुनिक जीवन शैली और पर्यावरण	डॉ. वासुदेवन 'शेष'	13
2.	अष्टमूर्ति की पौराणिक अवधारणा और वृहत्तर पर्यावरणीय चिंतन	डॉ. वेद मित्र शुक्ल	20
3.	विलुप्त होते पक्षी और पर्यावरण	डॉ. वासंती रामचंद्रन	31
4.	मनुष्य के अस्तित्व में पर्यावरण की भूमिका	राधेश्याम भारतीय	48
5.	कचरा क्यों करें?	दीपक दीक्षित	67
6.	पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान : एक विमर्श	राहुल शर्मा 'अस्त्र'	75
7.	गंगा की अविरलता को अवरुद्ध करतीं लुप्त होतीं हिमालय की जलधाराएँ	प्रमोद भार्गव	83
8.	आखिर क्यों पूजते हैं हम जीव–जंतुओं को	पंकज चतुर्वेदी	91
9.	पर्यावरण के प्रति आदिवासी दृष्टिकोण	हरिराम मीणा	101
10.	पर्यावरण का स्वरूपगत विवेचन एवं पुहकर कृत 'रसरतन' में प्रकृति	दुर्गा प्रसाद	112
11.	पारिस्थितिकी विमर्श और 'झूठी है तेतरी दादी'	डॉ. अंबिली टी.	118
12.	'आधार–विच्छेद' का काव्यात्मक अंकन	डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत	131

13. जरूरत है पर्यावरण पत्रकारिता पर शोध की	डॉ. रूपचंद गौतम	140
14. वेदों में पर्यावरण—चेतना एवं उसका शाश्वत चिंतन	प्रो. दिनेश चमोला 'शैलेश'	145
15. समकालीन कविता में पर्यावरण का संकट	अजित कुमार	153
16. हिंदी सिनेमा और पर्यावरण	डॉ. प्रणु शुक्ला	162
17. साहित्य की पारिस्थितिकी	डॉ. के. वनजा	175
18. उपलब्धियों से भरे बाघ संरक्षण के 50 वर्ष : दस्तक देतीं चुनौतियाँ	डॉ. समीर कुमार सिन्हा	195
19. साहित्य और पारिस्थितिक समरसता की संकल्पना	डॉ. के. श्रीलता विष्णु	204
20. हिंदी एवं पाश्चात्य साहित्य में पर्यावरण : समस्या एवं समाधान	डॉ. प्रियंजन	215
21. कागा उड़ा आकाश में	डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल	231
22. हिंदी की ज्ञान परंपरा की धरोहर : गुरु जांभोजी की सबदवाणी में पर्यावरण चिंतन	डॉ. मिलन बिश्नोई	239
23. धरती को चरागाह बनाती सभ्यता और उपन्यास	पी. रवि	253
24. भारत में ईको टूरिज्म	डॉ. दीपक कोहली	267
25. पुराण साहित्य में निहित पर्यावरण विज्ञान : एक सैद्धांतिक विश्लेषण	डॉ. कपिल गौतम	276
26. समकालीन हिंदी कविता : पर्यावरण के संदर्भ में	डॉ. गौरी त्रिपाठी	288
27. पर्यावरण और जीवन	डॉ. उदय प्रताप सिंह	299

संपर्क सूत्र
305

प्रधान संपादक की कलम से

पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा आदिकाल से ही भारतीय चिंतन परंपरा में शामिल रही है। पर्यावरण के विभिन्न तत्वों का मानव जीवन के साथ रागात्मक–भावात्मक संबंध जोड़ते हुए संयमित जीवन–शैली अपनाने का उपदेश वैदिक ऋचाओं के साथ–साथ रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों सहित सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य, विशेषकर मध्यकालीन संत–साहित्य में भी मिलता है।

वैदिक साहित्य में मनीषियों ने यत्र–तत्र पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान योगदान और वनों की महत्ता का वर्णन किया है यथाः– ततः शिव कुसुमित बालपादपः छायाफलादयर्थ वृक्षमाश्रयते जनः। अर्थात् वृक्ष सदाशिव होते हैं, अतः फल एवं छाया के लिए लोगों द्वारा लगाए जाते हैं। मत्स्यपुराण में कहा गया है– दसकूपसमावापी दसवापीसमोह्रदः दसह्रदसमः पुत्रो दसपुत्रोसमो द्रुमः। अर्थात् दस कूप (कुआँ) के समान पुण्य एक वापी (पोखर) बनाने में, दस पोखरों का पुण्य एक तालाब बनाने में, दस तालाब का पुण्य एक पुत्र से तथा दस पुत्र के समान पुण्य एक वृक्ष लगाने से होता है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में पुरातन काल से ही पर्यावरण के सभी चल–अचल तत्वों में देवत्व की स्थापना करने के कारण उसके प्रति सुरक्षा, संबद्धता और ह्रदयभूत संवेदनशीलता का दृढ़ भाव भारतीय मानस में पैठा हुआ है। विभिन्न त्योहारों–रस्मों पर सूर्य–चाँद–तारे को अर्घ्य, गोवर्धन आदि

पर्वतों की परिक्रमा, पितृपक्ष में चींटी, कुत्ते, कौवे आदि का ग्रास, पीपल, तुलसी, केला, वटवृक्ष आदि वृक्षों की दैनिक पूजा – भारतीय समाज की ये सभी गतिविधियाँ हमारे मन–मानस के प्रकृति के प्रति अनन्य जुड़ाव और बार–बार कृतज्ञता–ज्ञापन की परिचायक हैं।

संत–साहित्य में भक्त कवियों के स्वरों में पर्यावरण के प्रति संचेतना मुखरित होती दिखाई देती है जब संत कबीर दास कहते हैं– ”बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर। पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।“ पर्यावरण–चेतना की दृष्टि से देखें तो इस साखी में कवि ने आलंकारिक तथा कम–उपयोगी वृक्षों के स्थान पर सघन और फलदार वृक्षों के अधिकाधिक रोपण की उपादेयता पर बल दिया है। कबीर की दृष्टि में प्रकृति के सभी उपादानों में परोपकार का भाव निहित है– वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर। वृक्ष पक्षपातरहित होने के कारण सभी को समान रूप से छाया देता है। निरीह पशु–पक्षियों को आश्रय देता है। प्राणवायु ऑक्सीजन का संचार करता है। उसके फल–फूल, पत्ते और लकड़ी मनुष्य के काम आते हैं। इसलिए धार्मिक कर्मकांड के लिए हरे–भरे पेड़ को नष्ट करना उचित नहीं है– पाती तोरै मालिनी, पाती–पाती जीउ। गोस्वामी तुलसीदास जी का रामचरितमानस प्रकृति एवं वन्यजीवन के साथ मानव के भावात्मक रागात्मक संबधों और पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्व बोध का अन्यतम उदहारण है। वृक्षारोपण हर मानव का अनिवार्य कर्तव्य है, इस का स्पष्ट संकेत भी तुलसीदास ने किया है। राम के राज्याभिषेक पर गुरु वशिष्ठ के आदेश पर अयोध्या नगरी में सभी ने सुमन–वाटिकाएँ, लताएँ लगाई हैं। फलदार रसाल आदि वृक्षों का रोपण चारों ओर हुआ है– सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। विविध भांति करि जतन बनाई।। लता ललित बहु जाति सुहाई। फूलहिं सदा बसंत की नाईं।। संत तुकाराम की अभंगवाणी में भी पर्यावरण जागरूकता का संदेश मिलता है– वृक्षवल्ली आम्हा सोयरी। वनचरी पक्षीही सुस्वरे आळविती।। सूखे रुचे एकांताचा वास नाही गुणदोष आपणासी।।

अर्थात् ये सृष्टि ये वन–उपवन मेरे संबंधी हैं, मेरे आत्मीय हैं, वन्य–जीव पक्षी भी यही वाणी बोलते हैं, मनुष्य अगर स्वयं से बातें करे तो वह सारे संसार को जान सकता है।

सच यही है कि विध्वंसगामी एवं शोचनीय पारिस्थितिकी–तंत्र पर विभिन्न वैज्ञानिकों/पर्यावरणविदों का ध्यान पिछले कुछ दशकों से ही गया है जबकि भारतीय मनीषा ने आदिकाल से ही मनुष्य के हर आचार–व्यवहार को प्रकृति से अभिन्न रखा है। यहाँ तक कि वैदिक मंत्रों में प्रकृति के हर तत्व के संयमित एवं आवश्यकतानुसार उपयोग का सख्त निर्देश भी है– ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। अर्थात् मनुष्य अपनी इच्छाओं को वश में रखकर प्रकृति से उतना ही ग्रहण करे कि उसकी पूर्णता को क्षति न पहुँचे। उल्लेखनीय है कि दो दशक पहले अर्थचार्टर कमीशन में पृथ्वी संकट पर तीन दिवसीय सम्मेलन हुआ जिसमें दो दिन में 22 सूत्र छाँटे गए तथा सम्मेलन के आख़िरी दिन अथर्ववेद की पृथ्वीसूक्त की चर्चा की गई। वैज्ञानिकों ने जिन 22 सूत्रों की चर्चा की थी, वे पहले ही अथर्ववेद में उपलब्ध हैं। अतः आज पर्यावरण संकट से निपटने के लिए पूरी दुनिया को आधुनिक उपायों के साथ वैदिक दर्शन की ओर लौटना भी अपरिहार्य प्रतीत होता है, तभी हमारी शस्य–श्यामला पृथ्वी और उसका विराट आभामंडल आयुष्मान रहेगा।

आज विश्वभर में राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण केंद्रित जागरूकता अभियान चलाए जाते रहे हैं। निदेशालय ने भी अपने दायित्वों का निर्वहन करते हुए इस बार 'साहित्यमाला' ग्रंथ हेतु पर्यावरण विमर्श को केंद्र में रखा है। विविध भाषा–भाषी साहित्यों में पर्यावरण, प्रकृति तथा उसके अवयवों के प्रभाव–अप्रभाव को किस प्रकार उल्लेखित किया गया है, इसका विवेचन इस ग्रंथ में द्रष्टव्य है। पर्यावरण विमर्श पर अपने सारगर्भित आलेखों के माध्यम से पाठकों एवं सुधीजनों को ज्ञान उपलब्ध कराने तथा पर्यावरण के प्रति जागरूक करने के प्रयास हेतु मैं इस ग्रंथ के सभी विद्वान लेखकों का हृदय से

धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। साथ ही यह आग्रह भी करता हूँ कि वे पर्यावरण जैसे ज्वलंत एवं महत्वपूर्ण विषय पर लेखन कार्य अनवरत जारी रखें। 'वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्' के साथ यह ग्रंथ सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। आपके विचार एवं सुझावों का स्वागत है।

(प्रो.सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर ')

संपादकीय

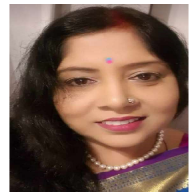

सामान्यतः पर्यावरण की परिभाषा मनुष्य के संदर्भ में की जाती है और मनुष्य को एक अलग इकाई और उसके चारों ओर व्याप्त अन्य समस्त चीजों को उसका पर्यावरण घोषित कर दिया जाता है। यह माना जाता है कि सृष्टि के निर्माण के साथ–साथ पर्यावरण का भी निर्माण हुआ जो चर–अचर जीवधारियों तथा पेड़–पौधों आदि के अस्तित्व और संतुलन को बनाए रखने के लिए आवश्यक था। पर्यावरण में समस्त प्राणियों एवं वनस्पतियों के मध्य मानव–जीवन विकसित हुआ।

वैदिक काल में "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या" कहकर पृथ्वी की अभ्यर्थना करते हुए मानवमात्र ने प्रकृति के संरक्षण का नैतिक दायित्व ग्रहण किया था। हमारे प्राचीन ऋषियों ने वैदिक वाङ्मय में इस प्रकार की जीवन–शैली की व्यवस्था की जिससे पर्यावरण–प्रदूषण की समस्या ही उत्पन्न न हो। यजुर्वेद के शांति मंत्र में पर्यावरण के इन्ही अवयवों के संतुलन को बनाए रखने की प्रार्थना की गई है ताकि ये अवयव सभी प्राणियों के लिए हितकारी हों। इसी प्रकार अथर्ववेद में वनस्पतियों के उपयोग के साथ उनकी जड़ को न काटने का आदेश भी है ताकि उनका संरक्षण होता रहे– "हरौषमहिसंत औषाधीर्दान्तु पर्वन्"। मानव जीवन के निर्माण हेतु सोलह संस्कारों की रचना भी इसीलिए की गई थी कि वह बालपन से ही पर्यावरण से जुड़ा रहकर उसके प्रति प्रेमभाव रखते हुए उसका संरक्षण करे। जीवन के चार आश्रमों में से तीन आश्रम–ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास वन में ही व्यतीत किए जाते थे। कहने का अर्थ यह कि प्राचीन काल का मानव–जीवन प्रकृति से अभिन्न था और वह आत्मोन्नति के साथ अपने पर्यावरण के प्रति भी जागरूक और संवेदनशील था।

धीरे–धीरे यांत्रिक एवं भौतिक विकास करते हुए अधिकाधिक सुख–सुविधाओं के लालच में अपनी महत्वाकांक्षाओं को बढ़ाते हुए आधुनिक सभ्यता के मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करना प्रारंभ कर दिया और इन अनियंत्रित क्रियाकलापों को उसने 'विकास' का दर्जा दिया। आज स्थिति यह है कि तथाकथित विकास और पर्यावरण के मध्य एक अनवरत संघर्ष चल रहा है। आँखों को चौंधियाने वाली विकास की चमक ने हमें इतना अंधा बना दिया है कि हम खुद ही नहीं देख पा रहे कि हम स्वयं अपनी ही जड़ों को उखाड़ रहे हैं, अपने विनाश को आमंत्रित कर रहे हैं। आधुनिक मानव की असीम भोगवादी प्रवृत्तियों के कारण प्रौद्योगिक क्रांति के अनियंत्रित उपयोग द्वारा जिस प्रकार प्रकृति का दोहन हो रहा है उससे धरती के पर्यावरण, जीव–जंतु, वन–संपदा सहित स्वयं मानव–जीवन भी खतरे में है। पौधे, जानवर, कीट, मछलियाँ तथा अन्य प्राणियों की प्रजातियाँ नष्ट हुई हैं जिससे ऑक्सीजन के उत्पादन, पानी की स्वच्छता, पराग–कणों के विकसन आदि में कमी आई है। जीवाश्म ईंधन के प्रयोग और वनों की असीमित अविवेकपूर्ण कटाई से पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हुई है जिससे जलवायु और मौसम प्रणाली में बदलाव लक्षित हो रहे हैं। एक भूवैज्ञानिक शोध से यह भी ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी में से लगातार 44 हजार बिलियन वाट ऊष्मा बाहर निकल रही है जिसका बड़ा हिस्सा रेडियो–एक्टिव तत्वों से निर्मित है।

सच्चाई यह है कि हम खतरे के निशान को लगभग पार कर चुके हैं किंतु आज भी विकास के नाम पर हमारी दौड़ जारी है। गांधी जी के शब्दों में यह "पागल दौड़" है। विकास के नाम पर विनाश की ओर उन्मुख इस पागल दौड़ को रोकना ही होगा अन्यथा इसके भयंकर परिणाम हमें और हमारी भावी पीढ़ियों को झेलने होंगे। दिसंबर 1948 की भोपाल गैस रिसाव त्रासदी के जख्म अभी भी भरे नहीं हैं।

इस विकराल समस्या के निराकरण के लिए जारी सरकारी कानूनों और पर्यावरण संबंधी संस्थानों /संगठनों के प्रयासों से आम

आदमी में जागरूकता तो आई है लेकिन इस पूरे अनुष्ठान में आप और हम सब की सक्रिय भागीदारी भी जरूरी है। हम ऐसी जीवन पद्धति विकसित करें जो हमारे पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने में सहायक हो। अंग्रेजी कहावत है– बॉल इज़ इन अवर कोर्ट। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम पृथ्वी की संतान बनकर एक बार पुनः उसे शस्य–श्यामला हरित वसुंधरा का रूप दें या जहरीला गैस चैंबर बनाकर सौरमंडल के अन्य ग्रहों की भांति उसे भी हमेशा के लिए जीवन–विहीन कर दें।

पर्यावरण–संरक्षण का यह ज्वलंत मुद्दा आज विश्व–साहित्य और साहित्यकारों में भी चहुँ ओर चर्चा और चिंता का कारण बन गया है। दीर्घकाल से विभिन्न भाषाभाषी समाज–सजग साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से शोचनीय पारिस्थितिकी स्थितियों की ओर इंगित करते हुए मानव जाति को चेताया है और ये प्रयास अनवरत जारी हैं।

साहित्यमाला ग्रंथ योजना के अंतर्गत प्रस्तुत सद्यःप्रकाशित ग्रंथ "पर्यावरण विमर्श" विषय पर आधारित है। इस ग्रंथ के आलेखों में न केवल पर्यावरण–प्रदूषण संबंधी आंकड़े और पारितंत्र विघटन के काले तथ्य समक्ष आए हैं, अपितु प्रदूषण के विभिन्न स्वरूपों पर चर्चा करते हुए उनके समाधान–निपटान पर भी विमर्श हुआ है। साथ ही इसी संदर्भ में न केवल पर्यावरण–संरक्षण से संबंधित भारत की पौराणिक–सांस्कृतिक–धार्मिक परंपराओं और पुरा–साहित्य का पुनर्विवेचन हुआ है बल्कि आदिवासी जनजीवन और उनकी पर्यावरणीय सजगता का भी सम्यक् उल्लेख हुआ है। समकालीन साहित्यकारों की सचेतन कृतियों के उदाहरणों के माध्यम से भी इस ग्रंथ के लेखकों ने समाज के सुप्त मानस को झिंझोड़ने का सार्थक प्रयास किया है।

यह ग्रंथ पारितंत्र–जागरूकता की दिशा में एक लघु प्रयास भर है। सहृदय पाठकगण इससे अवश्य लाभान्वित–प्रेरित होंगे, इसी अटूट विश्वास के साथ,

डॉ. अनुपम माथुर

आधुनिक जीवन शैली और पर्यावरण

डॉ. वासुदेवन 'शेष'

पर्यावरण वस्तुतः विश्वव्यापी समस्या बन गया है। पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है– परि+आवरण। अतः हमारे चारों ओर प्रकृति तथा मानव निर्मित जो भी जीवित तथा निर्जीव वस्तुएँ हैं, वे सब मिलकर पर्यावरण बनाती हैं और इस प्रकार मिट्टी, पानी, हवा, पेड़–पौधे, जीव–जंतु सभी कुछ पर्यावरण के अंग हैं और इन सभी के आपसी तालमेल को, उचित मात्रा होने को, पर्यावरण संतुलन कहा जाता है। यह हम सब भली–भाँति जानते ही हैं कि समस्त जीवन अन्योन्याश्रित है। पृथ्वी के समस्त प्राणी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं तथा विश्व का प्रत्येक पदार्थ एक दूसरे द्वारा प्रभावित होता है। अतः आवश्यक है कि प्रकृति की इन वस्तुओं के मध्य आवश्यक संतुलन को बनाए रखा जाए। यदि ऐसा न किया गया तो 21वीं शती तक वायुमंडल का तापमान दो से पाँच डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाने की आशंका है।

औद्योगिक विकास और भौतिक समृद्धि प्राप्त करने के उद्देश्य से आज मानव पर्यावरण के संतलुन को समाप्त करता जा रहा है। वायुमंडल में बढ़ रहे प्रदूषण के फलस्वरूप पृथ्वी की हरियाली क्रमशः समाप्त होती जा रही है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण निकट भविष्य में प्रकृति में अनेक अनिष्टकारी प्रभावों की संभावनाएँ व्यक्त की जा रही हैं।

इन्हीं समस्त आगामी खतरों से दुनिया में जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र संगठन के तत्वावधान में प्रतिवर्ष 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' मनाया जाता है।

कहा जाता है कि परिवर्तन ही सृष्टि का नियम है और प्रकृति का यह शाश्वत नियम ही परिवर्तन का मुख्य कारण बनता है। हमारा रहन–सहन, खान–पान और वस्त्र–विन्यास आदि अर्थात् हमारी

रोजमर्रा की जीवन–शैली भी कहीं–न–कहीं इन मौसमों से प्रभावित होती है। गर्मी सर्दी के अनुसार खान–पान वस्त्र आदि बदलने पड़ते हैं जो आवश्यक भी है। जीवन शैली में बदलाव हर युग की समस्या भी है और आवश्यकता भी। मनुष्य आदिकाल से जिज्ञासु प्रवृत्ति के साथ इस धरती पर आया है और अपनी इसी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण नित्य नए प्रयोगों और नई संकल्पनाओं के साथ नई रचनाएँ करता है और नई उपलब्धियों को अनुभूत करता है। संभवतया इसी नव्यता का नाम ही आधुनिकता है।

हमारी जीवन शैली से संबंधित जो कुछ भी परंपराएँ या सुख सुविधा के सामान जिनसे हमारा जीवन प्रभावित होता हो, जैसे–जैसे पुराने होते जाते है मानव समाज द्वारा उसे स्वीकार कर लिए जाने के कारण वे उसके जीवन का अंग बन जाते हैं।

आदिकाल के मानव ने पाषाणकाल से निकलकर आधुनिक काल, अर्थात् वर्तमान में प्रवेश करने तक प्रकृति के अनेक रहस्यों से स्वयं को अवगत कराया है और अनेक बार अपनी जीवनशैली में परिवर्तन किया है। वह गुफाओं से निकलकर झोपड़ियों और गाँवों में परिवर्तित होकर संतुष्ट नहीं हुआ और बड़े–बड़े नगरों में अपनी ऊर्जा खपाने लगा। कच्ची वनस्पति के बजाय पकाकर खाने लगा। इतना ही नहीं, उसने प्रकृति के नित नए रहस्यों को जानकर उनके दोहन के नित नए मार्ग भी खोजे हैं और उनका जी भरकर उपभोग भी किया है। जहाँ तक संसाधनों के सीमित और संयमित उपयोग की बात है, वहाँ तक तो ठीक है परंतु धीरे–धीरे मानव की लिप्सा इतनी बढ़ गई है कि आधुनिक काल तक आते–आते उसने प्रकृति को कंगाल ही बना दिया है।

आज के मनुष्य की आवश्यकताएँ इतनी बढ़ गई हैं जिनका कहीं भी ओर–छोर नज़र नहीं आता। आज के मानव की संचय–प्रवृत्ति इतनी विकराल हो गई है कि उसका कहीं अंत ही नहीं है। गाँव हो या शहर, पूरा घर फर्नीचर से इतना भर लिया जाता है कि सफाई करने को जगह न बचे। अपने आप को समृद्ध दिखाने की होड़ में

बड़े–बड़े भवन बनाए जाते हैं। रहने वाले केवल दो लोग और कमरे चार–पाँच। धरती पर हरियाली की जगह ऊँचे–ऊँचे भवन दिखाई देते हैं। सड़कों के जाल दिखाई देते हैं। गगन नीले के स्थान पर काला दिखाई देता है। बड़े शहरों में आज के समय में साँस लेना दूभर हो गया है। तेजी से बढ़ती हुई आबादी भी इसका कारण है। यही हमारी बदलती जीवनशैली है। यहीं यदि इन गगनचुंबी इमारतों को कुछ छोटा रखकर धरती पर कुछ जगह बचाई जाए तो वहाँ थोड़ी ही सही, कुछ वनस्पतियाँ जगह पा सकती हैं। दो–चार वृक्ष लग सकते हैं जो पर्यावरण को शुद्ध वातावरण और जीवन दे सकते हैं।

पर्यावरण के असंतुलन के लिए मात्र भवन निर्माण ही उत्तरदायी नहीं हैं अपितु सड़कों पर बेतहाशा दौड़ते हल्के–भारी वाहन, रेलगाड़ियाँ और वायुयान भी हैं। समृद्ध घरानों में जितने सदस्य हैं उससे अधिक कारें हैं। वाहनों के धुएँ से भरे शहर हैं। व्यर्थ के सामानों से अटे पड़े बाजारों को भरने वाले कारखाने भी हैं जिनसे निकला उच्छिष्ट नदियों के जल को प्रदूषित करता है। धड़ाधड़ कटते जंगलों के कारण बंजर होती धरती है। लुप्त होती वर्षा के कारण बदलती ऋतुएँ हैं। कभी अति वर्षा और कभी सूखा। आज प्लास्टिक का भी बहुत प्रयोग हो रहा है, प्लास्टिक से प्रदूषण फैलता है, उसके इस्तेमाल को रोका जाना चाहिए।

मान लेते हैं कि आज की जीवनशैली का मुकाबला पुरानी जीवनशैली नहीं कर सकती। कैसे हम वापस फिर से बैलगाड़ी के युग में जा सकते हैं। तीव्र गति से भागते जीवन को आज इन वाहनों, जलयानों, जलमार्गों और इसके लिए नदियों पर बांध बनाने, सुरंग बनाने, सुख–सुविधा के साधनों के लिए वृक्ष काटने, रेत सीमेंट के लिए खनन की आवश्यकता है। परंतु ये सभी काम सीमा के अंदर भी हो सकते हैं। यदि किसी देश ने इतना बड़ा बांध बनाया है तो हमारा देश उससे बड़ा बांध बनाएगा। अगर किसी ने लंबी सड़क बनाई है तो हमारा देश भी उससे लंबी सड़क कम समय में बनाएगा।

बांध बनाने के संबंध में हिमाचल प्रदेश में संजय जल विद्युत परियोजना नाम का एक बहुत बड़ा बांध है। यह एशिया की सबसे बड़ी जल विद्युत परियोजना कही जा सकती है। 1500 मेगावाट की इस परियोजना का उद्घाटन श्री राजीव गांधी जी ने 1988 में किया था। इस योजना का प्रारंभ दसियों वर्ष पूर्व हो गया था। पूरी की पूरी परियोजना भूमिगत होने की वजह से यह पूरी नगर परियोजना कहीं से भी दिखाई नहीं देती, जब तक कि हम उसके अंदर न जाएँ।

इस परियोजना के शुरू होने से पहले हिमाचल प्रदेश की यह हरी भरी घाटी सेब, खुबानी, आलुबुखारा, अखरोट और बादाम के बागों से समृद्ध थी। यहाँ का किसान और बागवान खुशहाल था। इतना ही नहीं, नेपाली गोरखा भी यहाँ से मोटी कमाई करके नेपाल लौटते थे। वहाँ न तो किसी ने फ्रिज देखे थे और न किसी घर में पंखे थे। बावड़ियों का ठंडा पानी, अखरोट और सेब के वृक्षों की घनी छाँव जून में भी रजाई ओढ़ने को विवश करती थी। परंतु नाथपा–झाकरी परियोजना के नाम से शुरू होने वाली इस परियोजना ने सारी घाटी का हुलिया ही बदल दिया और वहाँ की अर्थव्यवस्था को हिलाकर रख दिया। इसका कारण था बिगड़ता पर्यावरण।

आज लकड़ी तब मिलेगी जब हरे भरे पेड़ कटेंगे। ऐसे में पर्यावरण बिगड़ेगा। आज यह स्थिति हो गई है कि पक्षी न गाँव में दिखाई देते है न शहरों में। हम ही जलवायु परिवर्तन में अत्यधिक योगदान दे रहे हैं। कार्बन उत्सर्जन का सीधा संबंध ऊर्जा और साधनों के हमारे उपभोग से है। जितना संपन्न व्यक्ति होगा, उतना ही अधिक उपभोग व उत्सर्जन में योगदान देगा।

सवाल यह भी उठता है कि हम जलवायु परिवर्तन के संकट को क्यों अनदेखा कर रहे हैं ?

इसके कई कारण हो सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव अब भी काफी दूर हैं। हिमालय के ग्लेशियर का पिघलना जो उत्तराखंड में अक्सर होता है। असम में बाढ़, बिहार में बाढ़ और बंगाल में बाढ़ का प्रकोप देखा जा सकता है।

बहुत पहले उत्तराखंड में 'चिपको आंदोलन' चलाया गया था जिसके संस्थापक सुंदरलाल बहुगुणा थे। उन्होंने पर्यावरण के लिए आजीवन कार्य किया। मेधा पाटकर जी ने भी नर्मदा बचाओ आंदोलन चलाया।

आज हर क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा हमारी जीवन–शैली का अभिन्न अंग बन गई है। उसकी साड़ी मेरी साड़ी से उजली क्यों ? वर्तमान युग में हमारा हर काम बिजली पर आधारित है। नाथपा–झाकरी नाम की इस परियोजना का एशिया की सबसे बड़ी परियोजना होना प्रतिस्पर्धा का ही परिणाम है, अन्यथा छोटे–छोटे बांध भी हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर ही सकते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के कई माध्यम हैं– अनेकानेक उद्योग धंधे, वाहनों की आवाजाही तथा अन्यान्य मशीनी उपकरणों द्वारा हम हर घड़ी पर्यावरण जल और वायु को प्रदूषित करते हैं। वायुमंडल में बड़े पैमाने पर लगातार विभिन्न घातक औद्योगिक गैसों के छोड़े जाने से पर्यावरण संतुलन पर अत्यंत विपरीत प्रभाव पड़ता रहता है। पर्यावरण में कार्बनडाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड आदि स्वास्थ्य के लिए घातक गैसों की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

पर्यावरण के प्रदूषित होने के मुख्य कारण निरंतर बढ़ती हुई आबादी, कल–कारखाने, वाहन द्वारा छोड़ा हुआ धुँआ, नदियों–तालाबों में गिरता हुआ कूड़ा–कचरा, वनों का कटाव, खेतों में रसायनों का असंतुलित प्रयोग, पहाड़ों में चट्टानों का खिसकना, मिट्टी का कटान आदि हैं। इसके साथ–साथ वायु प्रदूषण, शोर प्रदूषण, रसायनों और कीटनाशकों द्वारा प्रदूषण, वन–वृक्षों का विनाश, विचार प्रदूषण के अंतर्गत हमारे स्वार्थबद्ध एवं संकुचित विचार वायुमंडल को दूषित करने में सहायक हैं। इनके कारण अनेक पेड़–पौधों व फूलों की वृद्धि बाधित होती है तथा अनैतिक कार्यों की प्रेरणा प्राप्त होती है।

कोरोना महामारी के काल में पर्यावरण साफ–सुथरा था। हिमालय पर बड़ी बर्फ साफ दिखाई दे रही थी। यमुना और गंगा का पानी स्वच्छ था। यमुना नदी में ताजमहल की छवि साफ देखी जा सकती

थी। सड़कों पर वाहनों की आवाजाही नहीं थी, बाजारों में भीड़ नहीं थी। शादी ब्याह पर लोगों की उपस्थिति कम थी। कार्यालयों में कर्मचारियों की संख्या कम थी। रेल और वायुयान और बस से लोगों की यात्राएँ थम गई थीं। कोरोना महामारी की चपेट से कुछ लोगों की मृत्यु हुई थी लेकिन किसी दूसरे रोग के कारण नहीं हुई। खान–पान घर का था और लोग संयम और अनुशासित ढंग से जीवन जी रहे थे। घर परिवार के साथ आनंदित थे।

पर्यावरण के लिए भी घातक है–युद्ध। रूस द्वारा यूक्रेन पर किया गया हमला जारी रहा एवं लोगों को डर बना रहा कि कहीं यह विश्वयुद्ध में न बदल जाए। यूक्रेन की राजधानी कीव के आसपास बम व मिसाइल गिराए गए। युद्ध में सैनिकों एवं गैर सैनिकों की मौत या घायल होने के साथ लोगों की संपत्ति एवं प्राकृतिक पर्यावरण भी तबाह हो रहा है और इस तरह घायल और तबाह हुए प्राकृतिक पर्यावरण के दुष्प्रभाव युद्ध समाप्ति के बाद भी लंबे समय तक बने रहते हैं। युद्ध की रणनीति में पर्यावरण के तबाह होने की चिंता कभी, कहीं नहीं की जाती एवं पर्यावरण सदैव ही युद्ध की बलि चढ़ता है। आमतौर पर युद्ध के पीछे मानव की लड़ने–झगड़ने तथा विजयी होने की प्रवृत्ति होती है।

पर्यावरण के प्रति हमारा उत्तरदायित्व– भारत के आर्य ऋषियों ने आज से शत–सहस्र वर्ष पूर्व पर्यावरण के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव किया था और कहा था कि प्रकृति हमारी माता है जो अपना सर्वस्व अपने बच्चों को अर्पण कर देती है। प्रकृति की गोद में खेलकर, लोट–पोट कर हम बड़े होते हैं। वह हमारी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। धरती, नदी, पहाड़, मैदान, वन, पशु–पक्षी, आकाश, जलवायु आदि सब हमें जीवनयापन में सहायता प्रदान करते हैं, ये सब हमारे पर्यावरण के अंग हैं। अतः अपने जीवन के सर्वस्व द्वारा पर्यावरण को उसकी स्वाभाविक स्थिति में बनाए रखना हम मानवों का कर्तव्य होना चाहिए। पर्यावरण प्रदूषण प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ता है। एक सीमा विशेष के बाहर प्रकृति का

संतुलन बिगड़ जाने की स्थिति में हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। इसी तथ्य को लक्ष्य करके भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि "यह बड़े दुःख की बात है एक के बाद दूसरे देश में प्रगति का अर्थ प्रकृति का विनाश माना जाने लगा है। जनता को अच्छी विरासत से दूर किए बिना और प्रकृति के सौंदर्य, ताजगी और शुद्धता को नष्ट किए बिना ही मनुष्य के जीवन में सुधार किया जाना चाहिए।"

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम सब लोग प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करें। निहित स्वार्थो की पूर्ति के लिए उसको क्षति पहुँचाना बंद करें। प्रकृति और जीवन का संबंध प्रगाढ़ और शाश्वत है। दोनों स्वतंत्र रहते हुए भी अन्योन्याश्रित हैं। हमारे ऋषि मुनियों की कही बात को आज हमें याद रखना चाहिए– "प्रकृति हमारी माता है जो अपना सब कुछ अपने बच्चें को अर्पण कर देती है– अतः आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी माता (प्रकृति) की रक्षा करें।"

अष्टमूर्ति की पौराणिक अवधारणा और वृहत्तर पर्यावरणीय चिंतन

डॉ. वेद मित्र शुक्ल

महाकवि कालिदास के साहित्य में पर्यावरणीय चेतना एक महत्वपूर्ण घटक है। पौराणिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक जैसे अनेक स्तरों पर और प्रायः परस्पर गुंथे स्तरों पर भी महाकवि की कृतियों में पर्यावरण विषयक प्रसंग बार–बार उभरकर आते हैं। ये रूपकों, घटनाओं, चरित्रों, दृश्य–वर्णन और यहाँ तक कि विधाओं के शिल्पगत उपांशों आदि के माध्यम से सहज रूप में उनके साहित्य में छाए रहते हैं। पाठक का चेतन और अवचेतन मन आनंदभाव से इनके साथ रहता है। दूसरे शब्दों में, पर्यावरण के महत्व के प्रति सहज भाव से जागरूक होता रहता है।

वर्तमान में जब पर्यावरण की महत्ता के प्रति जनमानस को और अधिक सचेत रखने की आवश्यकता आ पड़ी है, तब न केवल कालिदास की कृतियों से पाठकों का लगाव पहले से अधिक बनाए रखने की बल्कि समकालीन रचनाकारों को साहित्य के माध्यम से पर्यावरणीय चेतना को अकृत्रिमता, सहजता और कुल मिलाकर रचनात्मकता के साथ प्रस्तुत करने की विधि या कौशल सीखने और समझने की भी अपरिहार्यता महसूस होती है। यह अपरिहार्यता इस कारण से कि आज हर दूसरी–तीसरी किताब पर्यावरण जैसे जरूरी विषय पर आख्यान गढ़ती या सिद्धांत बघारती दिखाई पड़ जाती है। निश्चित रूप से ऐसी पुस्तकें पर्यावरण जैसे आवश्यक विषय के प्रति समाज में सकारात्मक वातावरण के निर्माण में सहायक होती हैं, लेकिन क्या पूर्ण रूप से प्रभावी रहते हुए लंबे समय के लिए जनमानस को पर्यावरणीय चेतना से संपन्न रख पाती हैं? यह एक प्रश्न है। इस दृष्टि से विचार करते हुए भारतीय साहित्य में विशेष रूप से कालिदास की कृतियों का पर्यावरणीय चेतना के संदर्भ में पठन–पाठन आवश्यक

है। प्रस्तुत आलेख में कालिदास की रचनाओं में आए पौराणिक आख्यान, रूपक आदि के महत्व की चर्चा करते हुए मुख्यतः अष्टमूर्ति की पौराणिक अवधारणा के रूपक में विन्यस्त पर्यावरणीय चिंतन पर विवेचनात्मक बातचीत करने का प्रयास किया गया है।

निस्संदेह पौराणिक आख्यान, रूपक आदि गहरे से पाठक–मन को छूते हैं। इनके माध्यम से संप्रेषित मूल्यवान संदेश पूरी सार्थकता के साथ अंगीभूत पाठक में पैठ जाते हैं। भारत में तो ये पाठक को आस्था के स्तर तक प्रभावित करने में समर्थ होते हैं। आजकल लोकप्रिय संस्कृति (जन संस्कृति या पॉप संस्कृति) के युग में अनेक प्रकार के संचार माध्यमों के द्वारा भारतीय पौराणिक विषयों का विभिन्न संस्थाओं, व्यक्तियों आदि द्वारा अपने–अपने उद्देश्यों की प्रभावशाली पूर्ति के लिए उपयोग आसानी से देखा जा सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में इनका आश्रय लेकर जनता तक नवीनतम दृष्टिकोण से मूल्यपरक बातों को पहुँचाने की सुदीर्घ परंपरा रही है। इस दृष्टि से देखा जाए तो महाकवि कालिदास की कृतियों में पौराणिक रूपकों, आख्यानों आदि का भरपूर सार्थक समावेश मिलता है। इस संदर्भ में प्रभुदयाल अग्निहोत्री का विश्लेषण द्रष्टव्य है–

"कालिदास जिस युग में काव्य रचना कर रहे थे, वह युग पौराणिक संस्कृति के उत्कर्ष का था। यद्यपि वैदिक मान्यताओं और विश्वासों के प्रति परम श्रद्धा का भाव स्थिर था तो भी व्यवहार में उनके उपवृंहित स्वरूप की ही प्रतिष्ठा थी। यह जनधर्म था और कालिदास में उसे बड़े सम्मान और श्रद्धा के साथ अभिव्यक्ति मिली। उनके द्वारा वर्णित देवताओं के स्वरूप और कार्यों में यह बात स्पष्ट देखी जा सकती है। ये सारे देवता अपनी मूल दिव्य आसंदी से नीचे उतरकर ऐसे उपवृंहित मानवीय रूप में मिलते हैं कि यदि उनके नाम के साथ प्रयुक्त वैदिककालीन विशेषणों को हटा दिया जाए तो उनके दोनों रूपों में एकत्व स्थापित करना कठिन हो जाएगा।" (पृ. 1)

समय–समय पर प्रस्तुत किए गए उन पर शोधपूर्ण अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि पौराणिक आख्यान, देवी–देवता, रूपक

आदि सभी गूढ़ संदेश से युक्त हैं और रचनात्मकता को पूर्णरूपेण बचाए रखते हुए पाठक को संप्रेषित होने में भी समर्थ हैं। सर्वविदित है कि कालिदास की अधिकांश कृतियाँ पौराणिक आख्यानों पर ही आधारित हैं। उदाहरण के लिए राजा दुष्यंत और शकुंतला के प्रेम पर आधारित नाटक अभिज्ञान शाकुंतलम्, अप्सरा उर्वशी और राजा पुरूरवा के प्रेम को दर्शाता नाटक विक्रमोर्वशीयम्, रघुकुल के राजाओं का वर्णन करता महाकाव्य रघुवंशम्, शिव–पार्वती और कार्तिकेय के जन्म की कहानी पर केंद्रित महाकाव्य कुमारसंभवम्, तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण और रामायण से प्रेरित खंडकाव्य मेघदूतम्। इन कृतियों में पौराणिक कथाओं का विधागत सीमाओं एवं शास्त्रीय सौंदर्य के साथ ऐसा मनोहारी प्रस्तुतीकरण किया गया है कि ये कालजयी हो गई हैं। इसी प्रकार से अनेक पौराणिक रूपक भी कालिदास की रचनाओं में आते हैं। ध्यान देने योग्य यह है कि पौराणिक विषयों, देवी–देवताओं आदि का चित्रण अथवा वर्णन मानवीयता के स्तर पर और मानवीय आवश्यकताओं के अनुसार कालिदास द्वारा अपने साहित्य में सोद्‌देश्यपूर्ण ढंग से किया गया है।

पर्यावरण से जुड़े विषयों पर विचार–विमर्श करते हुए हम प्रायः जल, वायु, धरती, आकाश और अग्नि इन पाँच तत्वों तक ही सीमित हो जाते हैं, परंतु भारतीय ज्ञान पद्धति में पौराणिक साहित्य के अंतर्गत आठ तत्वों की चर्चा अष्टमूर्ति शिव के माध्यम से की गई है। पंच महाभूतों (जल, वायु, धरती, आकाश और अग्नि) के साथ सूर्य व चंद्र और यजमान के समन्वित रूप में अष्टमूर्ति शिव की पौराणिक अवधारणा है जिसमें संपूर्ण पर्यावरण दृश्यमान हो उठता है। दूसरे शब्दों में कहें तो बृहत्तर पर्यावरणीय चिंतन भारत के पौराणिक साहित्य में उपलब्ध है। अष्टमूर्ति की अवधारणा पर कालिदास के समय से और पीछे जाकर विचार करते हुए हम पाते हैं कि ब्राह्मण ग्रंथों में अग्नि देवता के साथ रुद्र देवता को जोड़ा जाता है। माध्यन्दिनीये शतपथ ब्राह्मण के पाँचवें कांड में एक स्थान पर कहा गया हैः यो वै रुद्रः सोग्निः (5/2/4/13) अर्थात् "क्योंकि रुद्र ही अग्नि है"। आगे छठवें

अध्याय में अग्नि को आठ रूपों से युक्त बताते हुए स्पष्ट किया गया है कि तान्येतानि अष्टो (रुद्रः शर्वः पशुपतिः उग्र अशनिः भवः महान्देव ईशानः) अग्निरूपाणि (6ė1ė3ė18) अर्थात् "ये आठ (शर्व–पृथिवीमूर्ति, भव–जलमूर्ति, रुद्र–अग्निमूर्ति, उग्र–वायुमूर्ति, भीम–आकाशमूर्ति, महादेव–चंद्रमूर्ति, ईशान–सूर्यमूर्ति, पशुपति– यजमानमूर्ति) अग्नि के रूप हैं"। इसी क्रम में आगे शोध करने पर ध्यान में आता है कि विष्णुपुराण के प्रथम अंश के आठवें अध्याय में भी अष्टमूर्ति शिव की अभिव्यक्ति हुई है।

भवं शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं द्विज।
भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः।। 6।।
सूर्यो जलं मही चक्रे नामान्यतहितानि स्थानान्येषां चकार सः।
सूर्यो जलं मही वायुर्वह्निराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात्।। 7।।

[हे द्विज! प्रजापति ने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव कहकर संबोधन किया।।6।। यही उसके नाम रखे और इनके स्थान भी निश्चित किए। सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और चंद्रमा – ये क्रमशः उनकी मूर्तियाँ हैं।।।7।। पृ. 33]

अष्टमूर्ति की पौराणिक अवधारणा जिस प्रकार से भारतीय जीवन शैली का अंग है, उसको 'भारतीय पर्यावरण का अष्टमूर्तित्व' बताते हुए संजु मिश्रा अपने शोधग्रंथ 'प्राचीन संस्कृत साहित्य में पर्यावरण परिशीलन' में लिखती हैं:

"समस्त भारतभूमि में मंदिरों में आठ शिवलिंग में साकार सुस्थापित अष्टमूर्ति शिव की कल्याणमयी भावना को भारतीय जीवन शैली में संपूज्य बना दिया गया था जिससे पर्यावरण के प्रति श्रद्धा एवं सद्भाव का विकास जन–जन में हो सके। /जम्बुकेश्वर में जललिंग, अरुणाचल में तेजो लिंग, तिरुपति के निकट कालहस्ती में वायुलिंग, चिदम्बरम में आकाश लिंग, शिवकाँची में क्षितिलिंग, पशुपतिनाथ में यजमानमूर्ति, सोमनाथ मंदिर और चटगाँव के चंद्रनाथ मंदिर में

चंद्रमूर्ति प्रतिष्ठित है, तथा सूर्य तो हैं ही प्रत्यक्ष देवता। इससे समस्त भारतीय पर्यावरण में अष्टमूर्ति शिव का तादात्म्य परिलक्षित होता है। (पृ. 82–83)

पूर्व में की गई चर्चा के अनुसार प्रस्तुत पत्र में कालिदास की कुछ कृतियों में प्रयुक्त अष्टमूर्ति की पौराणिक अवधारणा के रूपक में विन्यस्त पर्यावरणीय चेतना की बात करते हुए सर्वप्रथम अभिज्ञानशाकुंतलम् का नांदी–पाठ हमारे ध्यान में आता है। विश्व–साहित्य में विशेष महत्व प्राप्त महाकवि कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुंतलम् का पाठ बहुआयामी है। पर्यावरण–चिंतन के स्तर पर अनेक स्थानों पर इस नाटक में मनोभावात्मक व्याख्याएँ सहज ही पाठकों द्वारा संभव हो जाती हैं। नाटक में आए तपोवन, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, नदी, पर्वत, उद्यान, चरित्रों के मनोगत भाव आदि के वर्णन में पर्यावरण–सुरक्षा से संबंधित भाव एवं विचार अंतर्व्याप्त हैं। पहली शताब्दी ई. पू. में हुए कालिदास के साहित्य में जिस प्रकार से पर्यावरण विषय को प्रतिनिधित्व मिला है, वह सदियों से लिखे जा रहे साहित्य के लिए प्रेरणास्रोत रहा है और आज जब पर्यावरण का संकट सुरसा की तरह मुँह बाए खड़ा हुआ है, तब समाधान के दृष्टिकोण से उनका साहित्य और अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

अभिज्ञानशाकुंतलम् नाटक के प्रथम अंक के प्रारंभ में ही नांदी में सूत्रधार 'सभ्य सामाजिकों एवं नटादिकों का कल्याण' की कामना से भगवान शिव का स्मरण करता है जो इस प्रकार से हैः–

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।1è1।।

[भगवान शिव की प्रथम सृष्टिभूत जलमयी मूर्ति, विधिपूर्वक हुत हवनीय पदार्थों को देवताओं के पास ले जाने वाली मूर्ति, यजमान रूपा मूर्ति, काल का विधान करने वाली सूर्यचंद्र रूपिणी दो मूर्तियाँ, आकाशमयी मूर्ति, क्षितिरूपा मूर्ति एवं वायुरूपा मूर्ति इन उपर्युक्त

प्रत्यक्ष दृष्ट अष्टमूर्तियों से विशिष्ट अष्टमूर्ति भगवान शिव सभ्य सामाजिकों एवं नटादिकों का कल्याण करें]

उल्लेखनीय है कि यहाँ सूत्रधार के माध्यम से कालिदास अपने अभीष्ट देव शिव के पौराणिक रूपों में से अष्टमूर्ति रूप का आह्वान करते हैं 'जो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की सर्वप्रथम सृष्टि है' अर्थात् जलमयी, 'जो विधि पूर्वक हवन की गई सामग्रियों को देवताओं के पास पहुँचाती है' अर्थात् अग्निमयी, 'जो कि हवनकर्ता है' अर्थात् यजमान स्वरूपा, 'जो दो मूर्तियाँ समय का विधान करती हैं' अर्थात् सूर्य–चंद्ररूपिणी, 'जो समस्त विश्व को व्याप्त करके स्थित है' अर्थात् आकाशमयी, 'जिसको (ऋषिजन) संपूर्ण अनादि बीजों का उत्पत्ति स्थान कहते हैं' अर्थात् क्षितिमयी और 'जिसके द्वारा प्राणी (चेतन जगत) जीवन धारण कर सामर्थ्यवान बनते हैं' अर्थात् वायुरूपा है। इस प्रकार से पर्यावरण के सभी कारकों (पंचमहाभूतों, समय का विधान करते सूर्य और चंद्र, तथा यजमान) के समन्वित और सारगर्भित स्वरूप के प्रति जागरूक और चिंतनशील व्यक्तियों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण रचनात्मक प्रक्रिया के रूप में इसे देखा जा सकता है। यहाँ यह स्पष्ट संदेश है कि आठों मूर्तियों के समन्वय व संतुलन के माध्यम से जो एक अष्टमूर्ति (शिव) की अवधारणा है, वह सृष्टि के लिए कल्याणकारी है। शिव की अष्टमूर्ति रूप की प्रार्थना के द्वारा वृहत्तर पर्यावरण (जो कुछ भी प्रत्यक्ष है) के महत्व के प्रति सचेत करने और समान भाव प्रकट करने का चिंतन कालिदास के साहित्य में स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

कालिदास द्वारा अष्टमूर्ति की पौराणिक अवधारणा का अभिज्ञानशाकुंतलम् के नांदी पाठ में अतुलनीय प्रयोग है। नांदी में आए श्लोक में यह अपेक्षित होता है कि देव, द्विज, नृपादि की आशीर्वचन युक्त स्तुति हो और काव्यार्थ की सूचना भी दी जाए। नाटक की अभिधेय वस्तु का पूर्व परिचय श्लोक की एक और व्याख्या के द्वारा समझा जा सकता है। इस आलेख के विषयानुसार जो उल्लेखनीय है वह यह कि पर्यावरणीय चेतना से युक्त अष्टमूर्ति (शिव) की स्तुति तो हुई ही है, साथ में नाटक के शिल्पगत उपांश नांदी के उद्‌देश्यों के

अनुरूप नृप की भी स्तुति इसी श्लोक में समाविष्ट है। ध्यान देने की बात है कि राजा दुष्यंत भी पर्यावरणीय चेतना के सशक्त माध्यम के रूप में वर्णित किए गए हैं। इस संदर्भ में अभिज्ञानशाकुंतलम् के इस श्लोक की वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी द्वारा दी गई व्याख्या दृष्टव्य है–

"भगवान शिव की स्तुति तो स्पष्ट ही है, इसी प्रकार इसमें नृप अर्थात् राजा दुष्यंत की भी स्तुति है। इस प्रकार की स्तुति के लिए श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया जाएगा – ताभि प्रत्यक्षाभि अष्टाभि तनुभि प्रपन्न ईश अर्थात् उन प्रत्यक्ष अष्टमूर्तियों से सेवित प्रजापालक दुष्यंत आप लोगों की रक्षा करें, राजा का शरीर जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश इन पाँच तत्वों से बना है, यज्ञानुष्ठानकर्ता दुष्यंत यजमान रूप भी है। विशिष्ट तेजस्वी होने से सूर्य और प्रजारंजक होने से एवं चंद्रवंशी होने से वह चंद्ररूपिणी मूर्ति से भी विशिष्ट है। इस प्रकार वह भी अष्टमूर्ति है। अथवा राजा अष्ट लोकपालों अग्नि, वायु, यम, सूर्य, इंद्र, वरुण, चंद्र, कुबेर के अंश से उत्पन्न होने से भी अष्ट मूर्ति संपन्न है"। (पृ. 5)।

भारतीय साहित्य परंपरा के अंतर्गत अभिज्ञानशाकुंतलम् के नांदी–पाठ में जिस प्रकार से एक राजा को अष्टमूर्तिओं से सेवित पढ़ा जा सकता है, वैसा संभवतः अन्य किसी साहित्यिक कृति में वर्णित नहीं हुआ होगा।

इसी संदर्भ में कालिदास की ही एक अन्य कृति रघुवंशमहाकाव्यम् में की गई अष्टमूर्ति की चर्चा उल्लेखनीय है। महाकाव्य के तृतीय सर्ग में राजा दिलीप को यज्ञमंडप में यजमान होने से अष्टमूर्ति के एक मूर्ति के रूप में दर्शाते हुए भगवान शिव का एकांश माना गया है:

यथा च वृत्तांतमिमं सदोगतस्त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः।
तवैव सन्देशहराद्विशांपतिः श्रृणोति लोकेश तथा विधीयताम्।।
66/3।।

इसी महाकाव्य के नौवें सर्ग में राजा दशरथ का भी यजमान के रूप में वर्णन करते हुए शिव की प्रतीति दिखलाई गई है। वह राजा दशरथ जो देवासुर संग्राम में इंद्र की सहायता करते हुए विजय प्राप्त

करके यज्ञ के लिए "मृगचर्म पहनकर, हाथ में दंड लेकर, कुश की करधनी बाँधकर और मौन धारण करके हाथ में मृगश्रृंग लेकर यज्ञ दीक्षित होकर बैठे, उस समय भगवान शिव उनके शरीर में प्रविष्ट हो गए जिससे उनकी शोभा द्विगुणित हो गई है। (पृ. 269)

अजिनदण्डभृतं कुशमेखलां यतगिरं मृगश्रृंगपरिग्रहाम्।
अधिवसंस्तनुमध्वरदीक्षितामसमभासमभासयदीश्वरः।।21/9।।

इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि न केवल भगवान शिव को अष्टमूर्तियों से सेवित बताते हुए वृहत्तर पर्यावरण के प्रति कालिदास जनमानस को जागरूक करते हैं बल्कि मनुष्यों के प्रतिनिधि राजा को भी पर्यावरणीय तत्वों का साक्षात् प्रतिनिधि मानते हुए पर्यावरण के प्रति सचेत रहने की भावना को अभिव्यक्ति देते हैं।

कालिदास की एक और कृति कुमारसंभव है। इस महाकाव्य के छठवें सर्ग में भी अष्टमूर्ति के महत्व को दर्शाया गया है। महाकाव्य में भगवान शिव मुनियों को संबोधित करते हुए कहते हैंः–

विदितं वो यथा स्वार्था न मे काश्चित्प्रवृत्तयः।
ननु मूर्तिभिरष्टाभिरित्वंभूतोऽभि सूचितः।।26è6।।

[हे मुनिगण! आप लोग यह जानते ही हैं कि हमारी कोई भी प्रवृत्ति स्वार्थ के लिए नहीं होती। यह बात हमारी आठों मूर्तियों से स्पष्ट रूप से सूचित होती है]

आठों मूर्तियों की अवधारणा जिसकी इस आलेख में वृहत्तर पर्यावरण के तोर पर चर्चा की गई है, पूर्ण रूप से सभी के कल्याण में निस्वार्थ प्रवृत्ति के साथ रत है। इसी बात को दूसरे प्रकार से कुछ हद तक हिंदी साहित्य में लोक के कवि कबीर के इस दोहे से भी समझा जा सकता है जहाँ वो कहते हैं कि "वृक्ष कबहुँ नहीं फल भखै, नदी न संचय नीर / परमार्थ के कारने, साधुन धरा शरीर (पृ. 406)"।

महाकाव्य कुमारसंभव के छठवें सर्ग में ही अष्टमूर्ति में समाहित समन्वय, संतुलन, अन्योन्यता, परस्परोपकारिता, परस्परापेक्षी क्रियाशीलता आदि के द्वारा संपूर्ण सृष्टि के संचालन की बात कही गई है।

कलितान्योन्यसामर्थ्यैः पृथिव्यादिभिरात्मभिः।

येनेदं ध्रियते विश्वं धुर्यैर्यानमिवाध्वनि।।76è6।।

[जो महेश्वर (धृति आदि) गुणों से व्याप्त परस्पर सहकारी सामर्थ्य वाले पृथ्वी आदि अपनी अष्टमूर्तियों से इस समस्त जगत् को उसी प्रकार धारण करते हैं जिस प्रकार लौकिक मार्ग में घोड़े रथ आदि यानों को धारण करते हैं]

उपर्युक्त सभी विशेषताएँ हमारे पर्यावरण में भी अंतर्निहित हैं जिससे पर्यावरण–संतुलन संभव होता है। आठों तत्वों में से किसी के भी विकृत होने पर पर्यावरण संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इसी महाकाव्य के प्रथम सर्ग में अष्टमूर्ति का संदर्भ कुछ इस प्रकार से आया है–

तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः।

स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार।।1.57।।

[हिमालय के उसी रम्य शिखर पर तपस्या के स्वर्गादि फलों को देने वाले अष्टमूर्ति महादेव जी अपनी मूर्त्यंतर समिधाओं से प्रदीप्त अग्नि का आधान कर किसी अनिर्वचनीय फल की कामना से तपस्या करने लगे]

पर्यावरण की दृष्टि से संजु मिश्रा ने अपने शोधग्रंथ 'प्राचीन संस्कृत साहित्य में पर्यावरण परिशीलन' में उपर्युक्त श्लोक की व्याख्या इस प्रकार से प्रस्तुत की है, "समस्त साधनाओं का फल देने वाले शिव की संयमित समाधि से भी शिवमय पर्यावरण के स्वनियमन का महत्व प्रकट होता है।" (पृ. 86)

कुल मिलाकर प्रस्तुत आलेख के प्रकाश में समकालीन साहित्यकारों, लेखकों, विद्वानों, शोधार्थियों, नीतिनिर्माताओं व निर्धारकों आदि द्वारा पर्यावरण की दृष्टि से किए जा रहे प्रयासों को लेकर कुछ जिज्ञासाएँ भी सहज ही अपने ध्यान में आती हैं। उदाहरणस्वरूपः– समकालीन भारतीय साहित्य में क्या पौराणिक रूपकों या आख्यानों के माध्यम से पर्यावरण के प्रति जनमानस को रचनात्मक तरीके से जागरूक करने का प्रयास किया जा रहा है? यदि किया गया है तो आज के समय में किस हद तक वो साहित्यिक रचनाएँ सफल और सार्थक प्रयास रहे

हैं? इन पर अकादमिक शोध की क्या स्थिति है? लोकप्रिय संस्कृति में संचार माध्यमों के द्वारा किस प्रकार से पर्यावरणीय–चेतना को ध्यान में रखते हुए पौराणिक विषयों का उपयोग किया जा सकता है या किया गया है? वैश्विक स्तर पर किस प्रकार से पर्यावरण से संबंधित भारतीय दर्शन, मान्यताएँ, विज्ञान आदि को स्वीकार किया गया है और आगे स्वीकार किए जाने की क्या स्थिति है? नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में भारतीय ज्ञान पद्धति को केंद्र में रखते हुए पाठ्यचर्या निर्धारण के आग्रह के आधार पर किस प्रकार से वर्तमान भारतीय शिक्षा पद्धति में अष्टमूर्ति जैसे पौराणिक रूपकों को पर्यावरण से जोड़ते हुए पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जा सकता है या किया गया है? ऐसी और भी जिज्ञासाएँ व प्रश्न समाधान हेतु प्राचीन भारतीय साहित्य का (कालिदास–साहित्य के विशेष संदर्भ में) पर्यावरण की दृष्टि से अध्ययन करते हुए एक अध्येता या शोधार्थी के मनोमस्तिष्क में भी मुखरित हो सकते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अष्टमूर्ति की पौराणिक अवधारणा और वृहत्तर पर्यावरणीय चिंतन भारतीय ज्ञान परंपरा में दो अलग–अलग बातें नहीं हैं। शिव की आराधना का अर्थ है संपूर्ण सृष्टि या यों कहें कि वृहत्तर पर्यावरण के प्रति कल्याण की मनोकामना के साथ आस्था से परिपूर्ण रहते हुए जागरूक होना। 'कण–कण में शंकर" की मान्यता को अष्टमूर्ति की पौराणिक अवधारणा का लोक में प्रचलित एक संस्करण ही मानना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहना न होगा कि वैदिक साहित्य से लौकिक संस्कृत साहित्य तक और उससे आगे लोकमान्यताओं में भी अष्टमूर्ति की संकल्पना को पर्यावरणीय चेतना के साथ सतत विस्तार मिलता रहा है। यह अष्टमूर्ति की पौराणिक अवधारणा और वृहत्तर पर्यावरणीय चिंतन की एकात्मकता का सूचक है। इस एकात्मकता को और ज्यादा स्पष्ट करते हुए कह सकते हैं कि "अष्टमूर्ति शिव की अवधारणा द्वारा कालिदास प्रकृति के प्रत्येक रूप में साक्षात शिव की प्रतिष्ठा करके उसकी मानवोपयोगिता और महत्ता को व्यक्त करते हैं। समस्त शिवात्मक प्रकृति का समादर एवं संरक्षण

मानव का अपरिहार्य कर्तव्य है।" (मिश्रा, पृ. 224) यह एक निर्विवाद सत्य है कि पर्यावरण की दृष्टि से कालिदास का साहित्य आज भी प्रासंगिक है। महाकवि कालिदास के साहित्य में जिस प्रकार से अष्टमूर्ति के पौराणिक रूपक में पर्यावरणीय चेतना के समावेश का सफल एवं सार्थक परिशीलन दिखाई पड़ता है, वह अद्‌भुत और अतुलनीय है।

संदर्भ ग्रंथ

1. अग्निहोत्री, प्रभुदयालु, महाकवि कालिदास सांस्कृतिक अवदान (तृतीय खंड), दिल्ली ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 1997.

2. कालिदास, अभिज्ञानशाकुंतलम्, संपा. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, आगरा, महालक्ष्मी प्रकाशन, 1981–82.

3. कुमारसम्भवं महाकाव्यम्, संपा. व अनु. सुधाकर मालवीय, वाराणसी, कृष्णदास अकादमी, 1997.

4. रघुवंशमहाकाव्यम्, व्याख्याकार श्रीनिवास शर्मा, वाराणसी, भारतीय विद्या प्रकाशन, 2017.

5. कबीर समग्र, संपा. युगेश्वर, वाराणसी : हिंदी प्रचारक पब्लिकेशंस, 2001 (पाँचवाँ संस्करण).

6. मिश्रा, संजु, प्राचीन संस्कृत साहित्य में पर्यावरण परिशीलन (विशेष संदर्भः वेद, रामायण एवं कालिदास–साहित्य), दिल्लीः अमर ग्रंथ पब्लिकेशंस, 2017.

7. शतपथब्राहमणम् (द्वितीयो भाग), संपा. पंडित गंगाप्रसाद उपाध्याय, नई दिल्लीः प्राचीन वैज्ञानिकाध्ययन – अनुसंधान संस्थानम्, 1969.

8. श्रीविष्णुपुराण, अनुवादक मुनिलाल गुप्त, गोरखपुरः गीताप्रेस, 2019 (छप्पनवाँ संस्करण).

विलुप्त होते पक्षी और पर्यावरण

डॉ. वासंती रामचंद्रन

जैसे–जैसे समय गुजरता जा रहा है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हम प्रकृति और उसकी दिलचस्प व अनूठी गतिविधियों से दूर होते जा रहे हैं। इसका कारण कुछ भी हो सकता है, जैसे दैनिक उद्यम में हमारी व्यस्तता और आसपास घटती नैसर्गिक खुशियों को अनदेखी करने की आदत। घर के साथ लगा आंगन कहाँ है जो बच्चे कुछ घड़ी खुली हवा में खेल सकें। बड़े–बूढ़ों के प्रकृति से बटोरे अनुभवों से नहीं, उन्होंने मोबाईल, टी. वी., लैपटॉप को अपना अंतरंग मित्र बना लिया है। साधारणतया पाए जाने वाले पेड़–पौधों को, फूल–पत्तियों को वे नहीं पहचानते, न दिन–रात हमारे आसपास मंडराते पक्षियों से अपना मेलजोल बढ़ाते हैं। यहाँ तक कि जीव–विज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थी पेड़ों व पक्षियों की परिभाषा तक नहीं जान पाते। ऐसा कहना चौंका देने वाला विषय तो है ही, इससे पर्यावरण को कितना नुकसान हो रहा है, कोई नहीं जानता। ऐसे में पक्षियों के संरक्षण और उनके निवास–स्थानों को आज की पीढ़ी कैसे बचा पाएगी? हमारे आसपास एक प्राकृतिक क्षेत्र है जिसमें बहुत कुछ है, नदी, पहाड़, पेड़–पौधे, समुद्र, फूल–पत्ते यही तो पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण एक प्राकृतिक संसार है (भूमि, वायु और जल) जिसमें हम सभी रहते हैं, पशु–पक्षी, पौधे सब कुछ। मनुष्य इन सभी से घिरा हुआ है, इन सबका हमारे जीवन में अलग–अलग स्थान है। उनकी संख्या और स्वास्थ्य को नियंत्रित रखना हमारा कर्तव्य है। पक्षियों की अपनी अलग दुनिया है। वो एक स्थान पर नहीं रहते। कुछ पक्षी उड़ने की क्षमता नहीं रखते लेकिन तेजी से चलते हैं, दौड़ते हैं जैसे शुतुरमुर्ग। कुछ पक्षी प्रवासी होते है जो मीलों लंबी दूरियाँ उड़कर तय करते हैं, कुछ अप्रवासी (स्थानीय) होते हैं। विश्व के किसी विशेष स्थान पर, विशेष मौसम में प्रजनन द्वारा अपनी संतति बढ़ाते हैं। उन्हें

जीवित रहने के लिए सही वातावरण चाहिए। वे अपने भोजन और आवास के लिए मुख्य रूप से भूमि, वायु और जल पर निर्भर रहते हैं। इन तीनों का स्वच्छ रहना अनिवार्य है। मनुष्यों की जनसंख्या बढ़ने के कारण निर्जन जंगल उजड़ते जा रहे हैं। साथ ही उनके निवास स्थान भी मिटते जा रहे हैं। अतः हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम सब मिलकर पर्यावरण का संरक्षण भली–भाँति करें। ऐसा करने के लिए शक्तिशाली नियम व कानून बनाने की आवश्यकता है, साथ ही उसका प्रवर्तन करना भी उतना ही आवश्यक है। इस प्रकार हम मनुष्यों, पशु–पक्षी, पेड़–पौधों सभी का हित कर पाएँगे। ये सभी आपस में गहन रूप से जुड़े हुए हैं। किसी एक के प्रति लापरवाही से पर्यावरण का ढाँचा तहस–नहस हो जाएगा।

पक्षी पर्यावरण का मुख्य अंग हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि पक्षी कितने समय तक जीवित रहते हैं? ये प्रश्न जितना सरल लगता है उसका उत्तर उतना ही कठिन है। पक्षियों की आयु का हिसाब पक्षी–विज्ञानी ही वैज्ञानिक तरीकों से बता सकते हैं। पक्षी के शरीर के विशेष भागों में वलय या लोहे की पट्टी बाँधकर उन्हें जंगल में उड़ा देते हैं। निर्धारित समय पर जाली वाले पर्दों को बाँधकर जब तब उनका अध्ययन करते रहते हैं। इस बात से वे सतर्क रहते हैं कि यह वलयधारी (रिंग) पक्षी कब उड़ा था और कब वापिस आया। इस बात का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। आयु की गणना वैज्ञानिक तरीकों से ही की जा सकती है। यह भी संभव है कि कुछ पक्षी वापिस न आ पाए और परभक्षी का शिकार बनकर रह जाएँ!

पक्षियों के अध्ययन में समय के साथ धैर्य और सहनशीलता भी चाहिए। कुछ वैज्ञानिकों ने तो पक्षियों के अध्ययन के लिए अपना संपूर्ण जीवन बिता दिया। इनमें से एक जाना–पहचाना नाम है सलीम मोइजुद्दीन अब्दुल अली (1896–1987) जिनका नाम बड़े आदर से लिया जाता है। सलीम अली एक भारतीय पक्षी–वैज्ञानिक और प्रकृतिवादी थे। उन्हें "बर्डमैन ऑफ इंडिया" के नाम से भी जाना जाता रहा है। वे पहले भारतीय थे जिन्होंने बड़े व्यवस्थित ढंग से पक्षी–सर्वेक्षण

किया। भारत की सभी दिशाओं में स्थित जंगलों में भ्रमण करके कई सर्वेक्षणों का भली–भाँति संचालन किया। इस पक्षी–सर्वेक्षण की प्रशंसा जितनी भी की जाए, कम है। मुँह अंधेरे उठकर जंगलों की तरफ कदम बढ़ाकर दिन–रात पक्षियों की खोज में घूमा करते थे। उनकी आँखें हर वक्त पेड़ों के ऊपर या दूर आकाश में पक्षियों को खोजा करती थी। इतने दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को देखना कठिन है। यह एक तरह का प्रकृति–प्रेम नहीं तो और क्या है? वे गहन अध्ययनों के फलस्वरूप प्राप्त जानकारियों को पुस्तकें लिखकर/असंख्य पृष्ठों में उतारकर अपने ज्ञान की प्यास को बुझा लिया करते। पक्षी–विज्ञान के क्षेत्र में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो 'सलीम अली' नामक इस महान व्यक्ति को नहीं जानता होगा।

सलीम अली सन् 1947 के बाद 'बॉम्बे–नेचुरल–हिस्ट्री–सोसाइटी' के मुख्य अंग थे। उन्होंने इस संगठन के लिए महत्वपूर्ण सामग्री एकत्र करके अपने निजी प्रयत्न से सरकार की सहायता मांगी। उन्होंने अपना समस्त जीवन पक्षियों के लिए त्यागा। उन्होंने भरतपुर (राजस्थान) में अभयारण्य की स्थापना की। 'राष्ट्रीय उद्यान साईलेंट वैली' में पक्षियों के हित में कार्य किया। उन्होंने सिडनी डिलोन रिपले के साथ एक कालातीत हस्त–पुस्तिका की रचना की जिसमें कुल 10 अंक हैं। इन पुस्तिकाओं में भारत और पाकिस्तान के पक्षियों के विषय में संपूर्ण जानकारी है। इस महान वैज्ञानिक को युगों–युगों तक स्मरण किया जाएगा।

वर्तमान समय में विज्ञान में हुई प्रगति के कारण कई सूक्ष्म बातों की जानकारी एवं नई प्रजातियों की खोज करने के बाद उसकी जानकारी भी हमें समय–समय पर वैज्ञानिक दिया करते हैं।

विज्ञान और वैज्ञानिक तरीके सदा इन पक्षियों पर एक नज़र रखते हैं। उनके विषय में खबर देते रहते हैं। यह जानकर दुःख होता है कि कुछ पक्षी ही वृद्धावस्था तक पहुँच पाते हैं। उदाहरण के लिए रॉबिन नामक पक्षी की आयु केवल 1.1 वर्ष है लेकिन कुछ रॉबिन पिछले 20 वर्ष से वन्य जीवन बिता रहे हैं। कुछ पक्षी अंडे से प्रस्फुटित

होने के कुछ दिन बाद ही काल–कवलित हो जाते हैं। इसका ये भी एक कारण हो सकता है कि घोंसले से नीचे गिर जाते हों या परभक्षी के शिकार बन जाते हों। ऐसा देखने में आया है कि बड़े आकार के पक्षी छोटे आकार के पक्षियों की तुलना में अधिक समय तक जीते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि उष्णकटिबंधीय स्थानों में निवास करने वाले पक्षी शीतोष्ण स्थानों पर रहने वाले पक्षियों की तुलना में अधिक समय तक जीवित रहते हैं। समुद्रीय पक्षी, स्थलीय पक्षियों की तुलना में लंबा जीवन पाते हैं। बहुत कुछ उनको दी गई पर्यावरणीय सुविधा और संरक्षण पर निर्भर करता है। इसका उदाहरण है, पालतू पक्षी जंगल में निवास करते पक्षियों की अपेक्षा अधिक जीते हैं। इस बात को साधारणीकृत नहीं किया जा सकता। इसके कुछ अपवाद भी हो सकते हैं।

पक्षियों का पर्यावरण और उसमें होते परिवर्तन से गहरा संबंध है। जंगल लगातार समाप्त हो रहे हैं, इमारत व सड़कों के बनने के कारण शहर और गाँवों में पेड़ कट रहे हैं। एक तरह से पक्षियों के आवास में कमी आ रही है। ये सब आधुनिक समाज की देन है जिसके कारण प्राणियों के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो रहा है जिसमें पक्षी सबसे अधिक प्रभावित हो रहे हैं।

कुछ तो प्राकृतिक तरीके से धरती पर जलवायु परिवर्तन हो रहा है जिससे क्रमागत उन्नति (इवोल्यूशन) से कई नई प्रजातियाँ विकसित हुईं और कई प्रजातियाँ विलुप्त हुईं। प्रवासी पक्षी एक देश से दूसरे देश तक लंबी–लंबी यात्राएँ उड़कर करते हैं। वर्तमान समय में आराम, भोजन की खोज करके थक गए हैं क्योंकि आर्द्रभूमि व जलाशय सूख चुके हैं। वहाँ केवल रेगिस्तान की रेत नज़र आ रही है। धरती के वातावरण में तापमान में लगातार हो रही विश्वव्यापी बढ़ोतरी को ग्लोबल–वार्मिंग कहते हैं। दूसरे शब्दों में जब वायुमंडल में कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है तो वायुमंडल के तापमान में बढ़ोतरी हो जाती हैं। तापमान में हुए इस बदलाव को 'ग्लोबल–वार्मिंग' कहा जाता है।

समय से पहले बढ़ते तापमान के कारण वनस्पति और कीड़ों की संख्या में अचानक तेजी आई है जो कि पक्षियों के अंडों के प्रस्फुटन से पहले ही हो जाती है। चूजों के विकसित होते–होते यह भोजन समाप्त हो जाता है। इस प्रकार उन चूजों की भोजन के अभाव में मृत्यु हो जाती है और मृत्यु दर निरंतर बढ़ता चला जाता है।

भारत में पिछले कुछ वर्षों से जलवायु परिवर्तन हो रहा है, जिसे स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। जैसे मानसून का असामान्य चलन अर्थात् एल–नीनो (el-nino effect) ऐसी घटनाएँ है जिसका असर पक्षियों के भोजन व प्रजनन स्थल पर हो रहा है। एल–नीनो हवाओं के दिशा बदलने, कमजोर पड़ने तथा समुद्र के सतही जल के तापमान में बढ़ोतरी की विशेष भूमिका निभाती है। वर्षा के प्रमुख क्षेत्र बदल जाते हैं, परिणामस्वरूप विश्व के ज्यादा वर्षा वाले क्षेत्रों में कम वर्षा और कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अधिक वर्षा होने लगती है। जल स्तर के बढ़ने से बाढ़ की स्थिति में पक्षियों का भोजन मछली, बीज, वनस्पति सब कुछ बह जाता है।

कहीं सूखा पड़ जाता है जिसके कारण प्रवासी पक्षियों का प्रवासीय रास्ता बदल रहा है। इस कारण या तो रास्ता छोटा हो गया है या फिर प्रवासी पक्षियों ने उस यात्रा को ही समाप्त कर दिया है।

पर्यावरणीय परिवर्तन के कारण हल्की सर्दियाँ स्थानीय पक्षियों को जीवन देने में समर्थ होती हैं। इस प्रकार ये पक्षी वहीं पर खुशी–खुशी अपना जीवन–यापन करने लगे हैं। कृत्रिम जलाशयों और अभयारण्यों में, इमारतों में भी कुछ पक्षी अपना आवास ढूंढकर रहने लगे हैं। जैसे कबूतर, बार्न स्वालो, किंग फिशर इत्यादि। ऐसा तो पहले भी किया करते थे लेकिन अब इन पक्षियों की संख्या बढ़ने लगी है। जब यहाँ प्रवासी पक्षी दूरियाँ तय करके आते हैं तब वे देखते हैं कि वहाँ तो इनके भोजन व निवासों पर स्थानीय पक्षियों का कब्जा हो चुका है। वैसे भी इतनी लंबी दूरियाँ तय करते समय रास्ते में इन पक्षियों के साथ दुर्घटनाएँ भी हो सकती हैं। किसी पड़ाव पर परभक्षी का आक्रमण, अत्यधिक थकान से, उच्च तनाव तारों (हाई टेंशन वायर

जिनमें बिजली के 11,000 वोल्टेज बहती है) से टकराकर, इन पक्षियों का जीवन समाप्त हो सकता है। इस बात को रोकना संभव तो नहीं है, व्यावहारिक भी नहीं है। उनकी छोटी–छोटी आवश्यकताओं को हम जहाँ तक हो सके, पूरा कर सकते हैं।

वैसे तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बहुत कुछ हो रहा है। पक्षियों के हित में कई बातों का ध्यान रखा जाता है, उनके विषय में अनेक रोचक बातें बताई व समझाई जाती हैं। कोई अनूठा पक्षी पहली बार कहीं दिखाई देता है तो यह बात सब तरफ फैल जाती है। पक्षी–प्रेमी उसे देखने के लिए दूर–दूर से आते हैं, उसे नई प्रजाति की सूची में शामिल करते हैं। पक्षियों की पहचान व गणना भी एक अनिवार्य विषय है। साथ ही यह ध्यान रखना और इस बात पर सतर्क रहना भी आवश्यक है कि कुछ समय पहले जो पक्षी झुंडों में दिखाई देते थे वो अब कहाँ चले गए? धीरे–धीरे ही सही, क्यों कम हुए? स्थानीय लोगों को उन पर नज़र रखनी होगी। इस प्रकार उनकी संख्या को कम नहीं होने देना, भविष्य में उन्हें विलुप्ति की कगार पर खड़े नहीं होने देना ही कर्त्तव्य है।

ऐसा ही काम एक संगठन कर रहा है, स्थानीय स्तर पर और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी कार्य करने में संलग्न है। वैश्विक स्तर पर पक्षियों की विभिन्न जातियों की संरक्षण–स्थिति पर निगरानी रखने वाले इस सर्वोच्च संगठन को 'अंतरराष्ट्रीय–प्रकृति–संरक्षण–संघ' के नाम से जाना जाता है और इसे आई. यू. सी. एन. कहा भी जाता है। इस संघ के पास सभी पक्षियों के दस्तावेज हैं जिनमें सभी जानकारी उपलब्ध है। जैसे पक्षियों के विषय में कब, कहाँ, कितने– इन सभी का हिसाब–किताब है।

इस संगठन की सन् 1963 में स्थापना की गई जो कि विश्व भर में पौधों, पशुओं, पक्षियों की विभिन्न जातियों/प्रजातियों की संरक्षण–स्थिति से समय–समय पर अवगत कराता रहता है। संबंधित तालिका व जानकारी उनके पास विस्तृत रूप से उपलब्ध होती है। यह संगठन यह भी बताता है कि किस स्थान पर विकास–योजनाओं के कारण

पक्षी–जगत को नुकसान पहुँच रहा है, उन्हें किस तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिन्हें समय से सुलझाने की आवश्यकता है, समाधान है भी कि नहीं, यदि है तो क्या किया जा सकता है। यह संगठन हमारे लिए एक तंत्र–जाल है जिसके किसी एक तार को खींचने से ही कई जानकारियाँ मिल सकती हैं। उन्होंने अपनी सूचनाओं को कुछ इस प्रकार क्रम–बद्ध किया हुआ है:–

1. विलुप्त	–	Ex
2. वन–विलुप्त	–	EW
3. घोर–संकटग्रस्त	–	CR
4. संकटग्रस्त	–	EN
5. असुरक्षित	–	VU
6. संकट–निकट	–	NT
7. संकट मुक्त	–	LC
8. आंकड़ों का अभाव	–	DD
9. अनाकलित	–	NE

उपर्युक्त सूचनानुसार हमें उस समय जागृत हो जाना चाहिए जब पक्षी क्रमांक–6 –संकट निकट–NT की स्थिति तक पहुँच चुके हों।

अंतरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ के पास क्रमांक–4–संकटग्रस्त पक्षियों की सूची भी उपलब्ध है जिसे लाल सूची/आई. यू. सी. एन. या रेड–लिस्ट कहा जाता है। समय–समय पर यह अपनी सूची द्वारा हमें झकझोरती है, हमें क्या करना है, इस बात के प्रति सचेत करती है। यदि हम केवल आई. यू. सी. एन./ अंतरराष्ट्रीय–प्रकृति–संरक्षण संघ के अनुसार चलें तो लाभ नहीं होगा। उससे पहले ही हमें स्थानीय संगठनों द्वारा मिले आंकड़ों के अनुसार चलना होगा अन्यथा बहुत देर हो जाएगी, हमें पक्षियों के जीवन को दाँव पर लगा देना होगा।

जो पक्षी वर्तमान में जीवित हैं, उनकी आबादी बढ़ानी होगी। उन्हें अनदेखा न करते हुए, विलुप्त होने की स्थिति से बचाना होगा।

विश्व से पक्षियों का विलुप्त हो जाना एक दुर्भाग्य है। विलुप्त होने के कितने ही कारण क्यों न हों, मानव–जाति को उन्हें बचाने के लिए सतत प्रयत्न करते रहना होगा। वही करना होगा। जो उनके हित में है। पक्षी प्रकृति के जीवित केंद्र–बिंदु हैं जिनकी चहचहाहट कानों में मधुर रस घोलती है और इस आवाज की अनुपस्थिति से सारी धरती सूनी हो जाती है। जहाँ मनुष्य उनकी हर गतिविधियों को देख–सुनकर अपना मन बहलाता है, वहीं जाने–अनजाने उन्हें नष्ट करने का उत्तरदायित्व भी अपने कंधे पर ले लेता है। भौतिकवादिता की यह अंधी दौड़ ही पक्षियों को विलुप्त होने के कगार पर छोड़ जाती है।

इन 50,000 वर्षों में मानव–जाति ने अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति/पर्यावरण को भारी क्षति पहुँचाई है। देखते देखते 10–20 विभिन्न प्रजाति के पक्षी विलुप्त हो चुके हैं जिसमें कम से कम 469 परिचित प्रजाति के पक्षी सम्मिलित हैं। यह गणना कुछ अधिक ही होगी, कम नहीं। जितने प्रजाति के पक्षी विलुप्त हुए हैं उनके लक्षण एक जैसे ही हैं जैसेः–

- वो आकार में बड़े थे।
- उड़ नहीं पाते थे।
- द्वीपों में रहा करते थे।

उनके विलुप्त होने के कई कारण हो सकते हैं लेकिन मुख्य कारण मानव–जाति द्वारा उन्हें भोजन के लिए अपना शिकार बनाना ही था। कुछ जानवर भी उन्हें समय–समय पर खाते चले गए। आखिर भूख तो मिटानी ही थी न!

पुराने समय में मनुष्य द्वीपों में रहा करता था। अपने लिए उसने कई जरूरत की चीजें जुटाई। भोजन के लिए कई जीवों को मार गिराया। सुविधाओं के लिए सुअर, चूहे, बिल्ली, बंदर सभी को वहाँ ले आया। बड़े आकार के पक्षी, सर्प, छिपकलियों, कछुओं का शिकार किया। वैज्ञानिक तौर पर यह कहा जा सकता है कि 68 बड़े आकार

के पक्षी विलुप्त हो गए। न्यूजीलैंड का मोआ पक्षी विलुप्त हो गया। बीते हुए 300 वर्षों के भीतर 11 प्रजाति के पक्षी विलुप्त हो गए, जिनका रिकार्ड वैज्ञानिकों के पास है।

पुरातत्वविज्ञानी और जीवाश्मविज्ञानी ने एक पक्षी की रोचक जानकारी दी। उनके अनुसार एक मादा कबूतर थी जिसका नाम 'मारथा' था। यह 'पेसेंजर पिजन' थी इसकी आयु कुल 29 वर्ष थी जिसकी सिनसिनाटी (अमेरिका) के चिड़ियाघर में 1914 के सितंबर 1 तारीख को मृत्यु हो गई। 'मारथा' अंतिम पेसेंजर पिजन थी। 'पेसेंजर–पिजन' के विलुप्त होने के निम्नलिखित कारण हैंः–

- उनके निवास स्थानों का उजड़ जाना।
- संक्रामक रोग का आक्रमण।
- खेत में ये 'पेसेंजर–पिजन' झुंड के झुंड जाकर फसलों को हानि पहुँचाते थे। अतः पूरे झुंड को मार दिया गया क्योंकि इनसे फसल को खतरा पैदा हो गया था। ऐसी लोगों की सोच थी।
- ये पक्षी जंगलों पर मुख्य रूप से निर्भर थे, जंगलों के उजड़ जाने से इनकी प्रजाति भी धीरे–धीरे विलुप्ति हो गई!

हिंद महासागर में स्थित मॉरीशस में बहुत पहले 'डोडो' नामक पक्षी हुआ करता था। विशाल आकार का यह पक्षी उड़ने में सक्षम नहीं था। उस समय उसे क्षति पहुँचाने वाला परभक्षी भी नहीं था। अतः वह सुरक्षित था, लेकिन सन् 1500 में उस द्वीप में मनुष्यों का आगमन शुरू हुआ। फलस्वरूप मनुष्य उसका शिकार करने में जुट गए। इस तरह धीरे–धीरे उनकी संख्या घटती चली गई और सन् 1681 में 'डोडो' प्रजाति विलुप्त हो गई।

इसके अतिरिक्त और भी कई पक्षी हैं जो समय के चलते न जाने कब विलुप्त हो गए। उदाहरण के लिए **कैरोलिना पैराकीट** (यू. एस. ए.) जो मुख्य रूप से धान्यों और फलों पर निर्भर हुआ करते थे। सन् 1800 से उनकी संख्या में कमी आई और वे सन् 1920 में विलुप्त हो गए।

'अरेबियन ऑस्ट्रीच' जिसे उसके पंखों, त्वचा और अंडों के लिए उपयोग में लाया जाता था, विशेषकर रात्रि के भोजन के लिए उसका मांस बनाया जाता था। वह अंतिम बार 1941 में बहरीन में नज़र आया।

'ग्रेट–ऑक' जिसका आकार पेंग्विन से मिलता जुलता था। उड़ने में सक्षम नहीं था। उसके पंखों को नोंचकर तकियों में भरा जाता था। सन् 1830 में ज्वालामुखी फूटा जिसके कारण बहुत बड़ी संख्या में वे समाप्त हुए।

'आइवरी–बिल्ड वुड पेकर' नामक यह पक्षी मेक्सिको में पाया जाता रहा है। इसका शिकार इसकी बड़ी सुंदर, सफेद रंग की चोंच के लिए किया जाता रहा। समय चलते ये पक्षी भी विलुप्त हो गए।

तास्मानियन एमू.–1830–1850 के बीच विलुप्त हो गए।

आगे चलकर 300 वर्षों में कई परिवर्तन आए, शिकार करने पर प्रतिबंध लगाया गया, शिकार की प्रथा न्यूनतम तो हुई लेकिन विकास और भौतिकवादिता के चलते पक्षियों के निवासों पर आक्रमण होने लगा और अब भी हो रहा है। पक्षियों का भविष्य अंधकार में है। एकजुट होकर इन चुनौतियों का सामना करना होगा।

पक्षियों के विलुप्त होने के कई कारण हैं जिसमें अधिकांश रूप से मनुष्यों द्वारा उत्पन्न की गई स्थिति है। उदाहरण के लिए उनका निवास स्थान उजाड़ना, पेड़ों को काटना, जंगल समाप्त करना, अपने भोजन के लिए पक्षियों का शिकार करना इत्यादि। ये बात और है कि प्राकृतिक आपदाओं आदि के लिए मनुष्य उत्तरदायी नहीं है। इस क्षेत्र में भी विज्ञान का क्षेत्र आगे बढ़ रहा है। उनके अध्ययन यह बता रहे हैं, मार्गदर्शन कर रहे हैं कि मनुष्यों को अपने आवासों को खेत/जंगल में किस सीमा तक बढ़ाना चाहिए।

'बर्ड लाइफ इंटरनेशनल' द्वारा पक्षियों का अध्ययन यह सूचित कर रहा हैं कि जलवायु–परिवर्तन का एशिया की पक्षी प्रजातियों पर भी प्रभाव पड़ रहा है। कुछ भागों में जैसे पूर्वी हिमालय,

भूटान, लाओस, कंबोडिया, वियतनाम, भारत, नेपाल के हिस्सों का इस संगठन द्वारा अध्ययन किया गया है।

'क्लाइमेट इम्पेक्ट इंडिकेटर' द्वारा एक तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है कि किसी देश, राज्य का इतिहास, जलवायु की स्थिति क्या बता रही थी। आगे भविष्य में किस तरह की स्थिति की आशा की जा सकती है?

समय के चलते धीरे–धीरे हम अपने पर्यावरण और आसपास के वातावरण को जाने–अनजाने नष्ट करते चले जा रहे हैं। हम जिस पर्यावरण में कई बरसों से रह रहे हैं, उसे सहेजकर रखना तो बिल्कुल भूल गए हैं। हम विकास और प्रगति को गलत तरीके से परिभाषित करने लगे हैं। तोड़–फोड़, नाश, इन सबके सहारे जीने लगे हैं। पर्यावरण पर होते अन्याय को देख नहीं पा रहे हैं। जब हम समस्याओं को परत दर परत सुलझाने का प्रयत्न करते हैं, उस समय विभिन्न दृष्टिकोण सामने उभरकर आते हैं। समय के साथ पर्यावरण के प्रति वैज्ञानिक रूप से दृष्टिकोण बदल रहा है। समाधानों को ढूँढते–ढूँढते हो सकता है पक्षी–प्रजातियों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ मिल जाएँ, वो अपने आवासों को पुर्नस्थापित कर सकें। मुख्य रूप से तीन समस्याएँ है जिन पर ध्यान देना होगा।

1. वायु प्रदूषण
2. मिट्टी का निम्नीकरण
3. जल प्रदूषण

वायु प्रदूषण :–

वायुमंडल और समुद्र का जल ये सभी वर्तमान में कार्बन से अतिभारित हो रहे हैं। वायुमंडलीय कार्बनडाइआक्साइड अवरक्त (इंफ्रारेड) तरंग लंबाई विकिरण (इंफ्रारेड वेव लेंग्थ रेडियेशन) को जब तब सोख लेता है और आगे चलकर पुनः उसका उत्सर्जन करता है जिसके कारण वायु, समुद्र सतह का जल और मिट्टी गरम हो जाते हैं। कार्बन की मात्रा वायु में बढ़ने का कारण है मनुष्यों द्वारा जीवाश्म ईंधन को जलाना। जीवाश्म ईंधन पौधों और जानवरों के सड़ने से

बनते हैं। ये ईंधन पृथ्वी की पपड़ी में पाया जाता है। इसके अलावा जंगल को नष्ट करने से और औद्योगिक गतिविधियों से भी ऐसा होता है। समस्त विश्व में जहाँ पहले वायुमंडल में 280 पी. पी. एम. कार्बन था, अब बढ़कर 400 पी. पी. एम. हो गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी इस बात की पुष्टि की है कि 10 में से 9 मृत्यु उन रोगों के कारण हुई है जहाँ वायु में कैंसरकारी तत्व उपस्थित होते हैं।

वायु प्रदूषण जैसी समस्या का समाधान तो है लेकिन इस पर अमल करना अनिवार्य है।

- ऐसे वाहनों को उपयोग में लाया जाए जिनमें से न्यूनतम कार्बन उत्सर्जन निश्चित हो।
- वाहनों का न्यूनतम उपयोग किया जाए।
- वाहनों की मशीन को सिग्नल पर बुझा दिया जाए।
- जहाँ तक हो सके हरित–ऊर्जा का इस्तेमाल किया जाए।

हरित ऊर्जा ऐसा स्थायी स्रोत है जो मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए अधिक हानिकारक नहीं है। हरित ऊर्जा प्राकृतिक अक्षय ऊर्जा है जैसे– सूर्य, पवन, जल, भूगर्भ और पादपों से उत्पन्न ऊर्जा।

हरित ऊर्जा के कुछ उदाहरण जैसे सोलर पैनल, पवन चक्र आदि! अधिकाधिक पेड़ों को लगाया जाए। पेड़ आसपास के वायु प्रदूषण को कम करता है, वातावरण को शीतलता प्रदान करता है।

- रोजमर्रा के जीवन में पर्यावरण हितैषी वस्तुओं का इस्तेमाल करना चाहिए। हानिकारक रसायन का उपयोग छोड़ दें।

मिट्टी का निम्नीकरणः–

मिट्टी जब अपनी गुणवत्ता खो देती है, तब उस मिट्टी को निम्नीकृत मिट्टी कहते हैं। मिट्टी का निर्माण मुख्य रूप से तीन घटकों से होता है–

- जैविक
- भौतिक
- रासायनिक

उपर्युक्त इन तीन अवयवों से मिट्टी का निर्माण होता है। मिट्टी के निम्नीकरण के कई कारण हैं जैसे–भूक्षरण, विषैले रासायनिकों का प्रभाव, मिट्टी में कार्बनिक सामग्री का कम हो जाना, उपजाऊपन का कम हो जाना।

मिट्टी स्थलीय जीवन का आधार है। फसलों का उगना इस पर मुख्य रूप से निर्भर है। यह एक महत्वपूर्ण साधन है। इसका निम्नीकरण पर्यावरण की अत्यंत महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है। घटिया तरीके से किया गया उद्योग और गलत कृषि पद्धतियों को अपनाने से मिट्टी का निम्नीकरण हो जाता है। यही कारण है कि कभी बाढ़ और कभी सूखा जैसी आपदाओं का सामना करना पड़ जाता है। विश्व वन्य जीव कोष (डब्ल्यू डब्ल्यू एफ) भी यही मानता है कि धरती की सतही मिट्टी का 50 भाग पिछले 150 वर्षों में बहकर निकल गया है। इसके कई कारण हैं–

• भूक्षरण–भूमि का कटाव, पेड़ों के अभाव में भूमि में मिट्टी का कटाव अधिक हो जाता है।

• मृदा संघनन– यह तब होता है जब मिट्टी के कणों को एक साथ दबाया जाता है। ऐसी मिट्टी में जल घुसपैठ और निकासी दोनों ही कम हो जाते हैं।

• एकल कृषि/मोनोकल्चर प्लांटिंग– एक ही फसल को बार–बार उगाने से मिट्टी का उपजाऊपन कम हो जाता है।

• अति चराइ– गाय–भैंसों को एक ही चारागाह में बार–बार चराने से मिट्टी की गुणवत्ता कम हो जाती है।

इसके कई समाधान हैं–

• भूक्षरण को रोकने के लिए पेड़ लगाए जाएँ।

• कहीं भी खेती की शुरुआत करने से पहले मिट्टी का परीक्षण किया जाए।

• घरेलू गतिविधियों में इस्तेमाल होने वाले रासायनिक पदार्थों व अपशिष्ट का भली प्रकार निपटान करें। इसके लिए स्वच्छता विभाग की सलाह लेनी होगी।

• कृषि करते समय फसल–चक्र पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। विभिन्न मौसम में बदल–बदल कर फसल उगाने से मिट्टी उपजाऊ बनी रहती है, फसल अधिक मात्रा में प्राप्त होती है।

• जहाँ बीज रोपना हो वहीं तक खेतों की जुताई करें। संपूर्ण खेत की मिट्टी को न पलटें।

• जैव–विविधता को बनाए रखने के लिए गाय–भैसों को एक ही स्थान पर चराई के लिए नहीं भेजें।

जल प्रदूषणः–

घरेलू गतिविधियों में इस्तेमाल होने वाले रासायनिक पदार्थों व अपशिष्ट का भली प्रकार निपटान करें। ये दूषित जल जब आर्द्रभूमि की ओर जाता है तो उसमें पलने वाले कीड़े–मकोड़े, मेरूदंडहीन जीव, केचुएँ, मछलियाँ आदि समय से पहले काल–कवलित हो जाते हैं जो जलीय पक्षियों के भोजन का आधार हैं।

वैसे तो भारत में कई शहरों में नालों का दूषित जल, पेय–जल के पाइप–लाइन के साथ मिलकर उसे दूषित कर रहा है। समुद्र में विभिन्न प्रकार की गंदगी, कचरे और औद्योगिक दूषण को फेंककर जल को प्रदूषित किया जा रहा है जिससे समुद्र जीव, मछलियाँ इत्यादि धीरे–धीरे दम तोड़ रहे हैं। विषाक्त मछलियों व जलीय जीवों का भक्षण कर कई पक्षी समय से पहले काल–कवलित हो रहे हैं।

इसका यही समाधान है कि दूषित जल की सफाई करें। फिर समुद्र या नदी में जाने दें। अपशिष्ट जल व पेय जल की पाइप लाइनों को अलग–अलग रखें।

इन कर्त्तव्यों को भली–भाँति नहीं निभाने से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, फलस्वरूप जैव–विविधता का नुकसान भी हो रहा है। पक्षियों की प्रजातियों के विलुप्त होने का प्रदूषण ही मुख्य कारण है, चाहे वह वायु प्रदूषण हो, जल प्रदूषण हो, या फिर मिट्टी का निम्नीकरण क्यों न हो। अपने स्वार्थ के लिए मनुष्यों ने पारिस्थितिकी में असंतुलन उत्पन्न कर दिया है, जिसे रोकना अनिवार्य है। मछली पकड़ने के व्यापार की सीमा भी निर्धारित की जानी चाहिए ताकि मछलियों की

विभिन्न प्रजातियों को विलुप्त होने से बचाया जाए। इस प्रकार समुद्री एवं जलीय पक्षियों को उनके भोजन से वंचित न किया जाए और जैव विविधता को संरक्षित किया जाए।

नदियों को बांधकर जल स्तर को उचित सीमा में ही रखा जाए, अधिक न बाँधा जाए। मानव जनसंख्या व उनके आवासों को मौजूदा जंगलों की ओर बढ़ने से रोकना मुख्य सरकारी नीतियों में शामिल हो।

विभिन्न पक्षियों और जीवों के उजड़े हुए निवास स्थानों को पुर्नस्थापित, संरक्षित किया जाए, ताकि उन्हें अनुकूल वातावरण में निवास करने का पुनः अवसर मिले। प्रवासी पक्षियों को यहाँ पहुँचने का आकर्षण प्राप्त हो, प्रजनन करके अपनी संतति और संख्या बढ़ाने का सुअवसर प्राप्त हो।

पक्षियों को विलुप्त होने से बचाने का रोचक प्रसंग याद आता है। 'अमूर फेल्कन' एक शिकारी पक्षी का नाम है जो अमूर नदी के कारण पड़ा। यह नदी रशिया और चीन के बीच की सीमा बनाते हुए बहती है। ये पक्षी अपना प्रजनन दक्षिण पूर्वी साइबेरिया और उत्तरी चीन में संपन्न करने के बाद लाखों की संख्या में भारत की ओर प्रवास करते हैं। ऐसा करते–करते ये हिंदमहासागर को लाँघते हुए दक्षिण अफ्रीका की ओर प्रस्थान करते हैं फिर मंगोलिया और साइबेरिया की तरफ वापिस लौट जाते हैं। इस तरह उनका सफर कुल 22000 किलोमीटर लंबा होता है। शायद पक्षी–जगत में सबसे लंबा सफर!

सन् 2012 तक इन पक्षियों का नागालैंड (भारत) में पंगति में लगभग 1.5 लाख की संख्या में अक्टूबर के अंत में झुंड बनाते हुए एकत्र होना, शोर मचाना, एक दिव्य दृश्य हुआ करता था। यह भी ज्ञात है कि अमूर –फेल्कन पक्षी का दोयांग (नागालैंड) में एकत्र होने वाला सबसे बड़ा समूह है। उनका इस तरह चहचहाना चारों दिशाओं में आनंद का वातावरण फैलाता है। कहते हैं न, खुशी और आनंद अस्थायी होते हैं। स्थानीय लोगों ने जब इस पक्षी का माँस चखा तो बहुत खुश हुए। अपने जिह्वा की तृप्ति के लिए उन्होंने चहुँ ओर

मछली पकड़ने वाले जाल का उपयोग किया। जाल को खंभों और पेड़ों से बांधा। ये निरीह पक्षी बड़ी संख्या में इस जाल में फँसने लगे जिन्हें मारकर उन्होंने भोजन बनाया। ये खबर वरिष्ठ पत्रकारों, संरक्षावादी, प्रकृतिवादियों के बीच दावानल की तरह फैल गई। वे लोग इस बात को लेकर बड़े चिंतित हुए। प्रतिक्रिया बड़ी तीव्र थी, सन् 2012 के अक्टूबर माह में अमूर–फेल्कन के संरक्षण का कार्य जोर पकड़ने लगा। कुछ समय के लिए रुककर पड़ाव डालने वाले अमूर–फेल्कन नामक इन पक्षियों को इतनी बड़ी सजा मिलेगी, ऐसा किसी ने नहीं सोचा था। बड़ा दर्दनाक माहौल था जब एक के बाद एक इस पक्षी की सामूहिक रूप से हत्या हुई। पल भर में इन निरीह पक्षियों की चीखों से आसपास का वातावरण सहम गया। अनुमानतः इन प्रवासी पक्षियों का 10–12% समाप्त हो गया था।

जल्द ही नागालैंड वन्य जीवन और जैव विविधता संरक्षण न्यास की स्थापना की गई। अमूर–फेल्कन के प्रति किए जा रहे इस क्रूर व्यवहार को रोकने के लिए सभी तैयार थे। इस समूह में कई प्रकार के लोग थे जिसमें वरिष्ठ मंत्री, प्रशासन अधिकारी, विश्वभर के विभिन्न संरक्षण–संगठन के लोग, प्रकृति प्रेमी– ये सभी लोग शामिल थे। एकता में बहुत ताकत होती है। सभी लोग स्थानीय लोगों को ऐसा करने से रोकने के लिए निवेदन कर रहे थे, समझा रहे थे। कुछ यह भी कह रहे थे कि नागालैंड जैसे हरे भरे राज्य की बदनामी ठीक नहीं। समय के चलते 2013 में इन प्रयत्नों को सफलता मिली। ग्राम–परिषद पंगति और उसके आसपास के गाँवों के लोगों ने मिलकर इस घोषणा पर हस्ताक्षर किए जिसमें लिखा था–

"अमूर–फेल्कन पक्षियों का शिकार करना, उन्हें किसी भी विधि से मारना गैरकानूनी है, एक दंडनीय अपराध है"।

'फ्रेंड्स ऑफ अमूर फेल्कन' नामक इस अभियान ने स्थानीय लोगों के भीतर एक भावना उत्पन्न की कि वे लोग भी इस पक्षी के संरक्षण प्रयत्न के सहभागी हैं, जिम्मेदार व्यक्ति हैं।

पंगति गाँव के स्कूली बच्चों को इस पक्षी के विषय में पाठ पढ़ाया गया और यह भी समझाया गया कि क्यों उन्हें बचाना आवश्यक है। धीरे–धीरे पक्षीप्रेमियों और पर्यटकों का विभिन्न स्थानों से आने का तांता लग गया। नागालैंड सरकार ने और न्यास ने भी पर्यटकों को ठहराने का प्रबंध शुरू कर दिया। पर्यटकों को घुमाने और इन पक्षियों को दिखाने का जिम्मा मार्गदर्शकों (गाइड) ने भी ले लिया। इस प्रकार नागालैंड के लोगों की भी आमदनी हो गई।

ये घटना और गतिविधि प्रेरक है, पक्षियों के लिए कुछ कर गुजरने को प्रोत्साहित करती है। पक्षियों को विलुप्त होते देख जितना दुःख होता है, उनके लिए कुछ करने से मन आनंदित हो जाता है।

❑❑

पीकर जिनकी लाल शिखाएँ उगल रही सौ लपट दिशाएँ
जिनके सिंहनांद से सहमी धरती रही अभी तक डोल
कलम, आज उनकी जय बोल

— राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर

मनुष्य के अस्तित्व में पर्यावरण की भूमिका

राधेश्याम भारतीय

किसी कवि ने क्या सटीक कहा है–
"चारों ओर तो जल ही जल है।
पीने के पानी की मुश्किल है।"

निःसंदेह जीवन से जुड़े जल, पर्यावरण, प्रदूषण और पारिस्थितिकी आदि जैसे गहन गंभीर और विचारणीय विषय की विपुल अहर्ताओं, चुनौतियों और संभावनाओं को चंद पृष्ठों में समेट पाना असंभव है। वैसे भी किसी लेखन की विषयवस्तु को कोई समग्र संपूर्णता से कहाँ लिख सकता है? विषय वृक्ष की अध्याय रूपी प्रत्येक उपशाखा पर ही महाग्रंथ लिखे जा सकते हैं, तो फिर इस विशद् विषय के विस्तृत ब्यौरे को फैलाने में चंद सीमित पृष्ठों की बिसात ही क्या? वैसे भी कोई जिस भाव–शाखा को दिल और हाथों में थाम कर आगे बढ़ने का प्रयास करता है, विषय वृक्ष की शाखा भी उसी ओर झुक जाती है। बस– इसी भाव की पृष्ठभूमि पर आधारित, मेरे विचारों की संभाव्य बानगी अग्रिम पंक्तियों में बद्ध है।

आदिकाल से ही मानव आगत से हजारों हजार उम्मीदें लगाए बैठा रहता है तो उसके सामने चुनौतियां भी हजारों हजार होती हैं जिनसे निपटने के लिए उम्मीदों को नई उड़ानों, सक्रिय संकल्पों और सतत प्रयासों की अविलंब परमावश्यकता होगी।

सतत प्रगति मानव का स्वाभाविक गुण है। यानि प्रगति का नियम ही विस्तार है, संकोच नहीं। वैज्ञानिक भी, निर्विवाद रूप से, स्वीकार करते हैं कि चांद–तारे भी विस्तार पा रहे हैं, सारा जगत विस्तार पा रहा है। इस विस्तार, विकास या प्रगति की बेतहाशा अंधी दौड़ में हम ऐसे रास्ते के करीब आ रहे हैं जिसके अंत में एक बंद गली है। इस तथ्य को स्वीकारना दुखद है, लेकिन अच्छा होगा कि हम इसे

स्वीकार करें क्योंकि तब फिर भी एक नया मोड़ लेने की संभावना बनती है, अन्यथा नहीं। आज प्रगति और वैश्विक घटनाएँ जिस परिमाण और दिशा में गतिमान हैं उसकी तार्किक निष्पत्ति एक ही है–सार्वभौमिक आत्मघात। बेशुमार ताबड़–तोड़ प्रगति–द्योतक आयुधों के बीच हमारी पृथ्वी भयभीत है, उसांस भर रही है। इस आत्मघाती विकास से पार पाने के लिए, आओ हम सब न केवल विचार करें बल्कि संकल्पित होकर विश्व हित में अविलंब कदम बढ़ाएँ।

भले ही हर आदमी इस शाश्वत सत्य को भली भाँति जानता है कि यह शरीर नश्वर है और हर किसी को अपना–अपना निर्धारित आयुष्य भोगकर एक दिन इस पृथ्वीलोक से प्रयाण कर जाना होता है। लेकिन कितने आश्चर्य की बात है कि हर व्यक्ति इस सत्य को स्वयं के लिए विस्मृति कोष की गहन गुहाओं में दफन करते हुए जीवन के हर पल क्षण से सुख–सुविधाओं को निचोड़ कर उन्हें इस प्रकार भोगते हुए जीने का निरंतर प्रयास करता रहता है, मानो उसे तो पृथ्वी के समकक्ष आयुष्य के साथ निरंतर सदा–सदा जीवित ही बने रहना है। और उससे बढ़कर अचंभा यह है कि पृथ्वी पर पल–पल बढ़ रहे नैसर्गिक और मानव क्षरणकारी कारकों, और निरंतर पनप रहे विनाशकारी घटकादि को रोकने की दिशा में किसी के द्वारा भी किंचित मात्र सार्थक प्रयास नहीं किया जा रहा है। सर्वाधिक चौंकाने वाला तथ्य तो यह है कि संसार के समग्र बुद्धिजीवी वर्ग, वैज्ञानिक, विचारक, दार्शनिक और देशों के राष्ट्राध्यक्ष तक सभी इन तथ्यों से अनजान बने रहने का अभिनय करते हुए इनकी उपेक्षा करते आ रहे हैं।

हर बड़े, विकसित और समृद्ध कहे जाने वाले देश के पास शक्ति के नाम पर परमाणु हथियारों के अंबार लगे पड़े हैं। और परमाणु अस्त्र–शस्त्रों की क्षमता? वो तो कल्पनातीत है! अभी तक तक तो हम मानव और प्रकृति को बचाने के लिए केवल कुछ बुनियादी समस्याओं जैसे –भोजन, जनसंख्या, साधन, जातियाँ, पर्यावरण, व्यवस्था, उद्योग, प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, पिघलते ग्लेशियर तथा शहरी समस्याओं के निवारण पर ही चर्चाएँ करते थे लेकिन द्रुतगामी वैज्ञानिक और

तकनीकी विकास के चलते अब लगता है ये मूल समस्याएँ नहीं बल्कि समस्याओं के अल्पांश मात्र हैं। देश और द्वीप भले अलग–अलग हों लेकिन जीवन या प्राण (VITAL) तत्व अलग–अलग नहीं होता। सब कुछ परस्पर अवलंबित और अंतर्संबधित होते हैं–मनुष्य, वृक्ष, हवा, पानी, पशु, पक्षी, धरती, सूरज, चांद–चांदनी, सागर, पर्यावरण आदि सब एक दूसरे के साथ अविच्छिन्नता से गुंथे हुए होते हैं। अतीत के मनुष्यों की सोच से हटकर हमें ध्यान रखना होगा कि यह ब्रह्मांड और पृथ्वी हमारी एक ही हैं, साझा हैं।

इसमें दो राय नहीं है कि वैज्ञानिक और तकनीकी विकास ने समूल मानवता के साथ–साथ हमारी पृथ्वी को संभावित समूल विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। संप्रति की वस्तुस्थिति, उसकी भयावहता, कारणों और निवारणों के संदर्भ में, आज हमें पृथ्वी के फेफड़ों में बढ़ते संक्रमण और धरती की व्यथा के मूल कारणों का न केवल अन्वेषण करना होगा बल्कि अविलंब समाधान भी करना होगा।

पृथ्वी माता जगत की हम सब हैं संतान।
पर्यावरण संवारिए, दे इसको सम्मान।।
हरियाली के गीत में प्यार भरा पैगाम।
पर्यावरण सुधारिए, स्वस्थ रहो सुखधाम।।

सर्वज्ञातव्य है कि विश्व के प्रमुख देशों के पास जीव संघातिक रासायनिक अस्त्र–शस्त्र और युद्‌ध के लिए उपलब्ध गैसीय क्षमता कल्पनातीत है ! यानि उपलब्ध रासायनिक अस्त्र–शस्त्रों से पृथ्वी पर उपलब्ध जीवन को पांच हजार बार नष्ट किया जा सकता है। इसी तरह विकसित देशों के पास, समग्र पृथ्वी को नष्ट करने में सक्षम आण्विक विस्फोटक आयुध सामग्री तो इतनी है कि हमारी जैसी सात सौ पृथ्वियों को चुटकी बजाने जितने क्षणांश समय में समूल नष्ट किया जा सकता है। यानि एक एक व्यक्ति को सात सौ बार मारा जा सकता है। जबकि ये सब एक बार करना ही काफी से ज्यादा साबित होगा।

मनुष्य के भावी स्वर्णिम भविष्य के लिए यदि हमें वास्तव में इसे बचाने के लिए कुछ न कुछ ठोस करना है तो वह वर्तमान समय खंड में एक परमातिपरम और महान चुनौती मानकर ही करना होगा। आज हमें समस्या रूपी वृक्ष के केवल चंद पत्ते ही नहीं काटने हैं बल्कि समग्र वृक्ष की जड़ ही काटनी होगी। अन्यथा पृथ्वी नामक हमारा यह ग्रह मानवीय चैतन्यता के सर्वश्रेष्ठ विकासोन्मुखी अस्तित्व के साथ साथ हमेशा–हमेशा के लिए खो जाएगा। धीरे–धीरे आत्मघाती विसंगतियों का निवारण करने का अब हमारे पास समय नहीं है। इन लाखों वर्षों में हम चेतना की थोड़ी संभावना पैदा कर सके हैं लेकिन हमारे पास इतना समय नहीं है कि हम प्रतीक्षा करें कि प्रकृति अपनी धीमी गति से विकसित होती रहे। प्रकृति के पास अनंत काल उपलब्ध हो सकते हैं लेकिन हमारे पास नहीं। संभवतः हमारे पास चंद शताब्दियों का ही समय बचा हो।

पृथ्वी के अंतस् तक चोट करते घातक प्रहार एवं मूल कारण : सर्वज्ञातव्य तथ्य है कि हर देश अन्य देशों की तुलना में, खास कर पड़ोसी देशों की तुलना में स्वयं को अधिक शक्तिसंपन्न साबित करने की होड़ में लगा है। और इसी प्रतिस्पर्धा के गर्भ से जन्म लेता है एक विचित्र सत्य कि हर देश की अधिकांश प्रयोगशालाओं के शोध के केंद्र में 'युद्ध और पड़ोसी देश से संभावी युद्ध की स्थिति में हर हाल में जीतने की दमित प्रचंड अभिलाषा'। इस बढ़ते पारस्परिक विकास और शक्ति की प्रतिस्पर्धा से समूल मानवता की शांति व सौहार्द खतरे में पड़ गया है। अंतर्देशीय विकास और विनाश समांतर पटरियों पर अहर्निश यात्रायित है।

एल्बर्ट आइंस्टीन की यह तीखी, प्रासंगिक एवं दिलचस्प प्रश्नप्रेरक टिप्पणी मन को बहुत गहरे तक सिहरा देती थी कि–

''मुझे यह निश्चयपूर्वक मालूम नहीं कि तीसरा विश्वयुद्ध कैसे लड़ा जाएगा लेकिन अनुमानतः तीसरा विश्वयुद्ध कभी छिड़ा तो वह पृथ्वी से नहीं, चांद से, उपग्रहों से, अंतरिक्ष से और न जाने कहाँ–कहाँ से लड़ा जाएगा। न जाने कौन–कौन से घातक अस्त्रों–शस्त्रों का

इस्तेमाल होगा। लेकिन चौथा विश्वयुद्ध अवश्य ही डंडों और पत्थरों से लड़ा जाएगा। अर्थात् चौथा विश्वयुद्ध हमें आदिम युग में पहुँचा देगा।'' प्रथम विश्वयुद्ध टैंकों से शुरू हुआ था और उसका अंत हवाई जहाजों से हुआ। दूसरा विश्वयुद्ध हवाई जहाजों से शुरू हुआ और उसका अंत परमाणु बम से हुआ। लेकिन लगता है कि तीसरा युद्ध परमाणु बम से शुरू होगा और उसके बाद के अगले सभी युद्ध पत्थरों–डंडों से लड़े जाएंगे। यानि तीसरे युद्ध के साथ ही मानव और मानव सभ्यता सहित सब कुछ नष्ट हो जाएगा और जीव संज्ञा को पुनः प्रागैतिहासिक काल से शुरुआत करनी होगी। लेकिन गतीय वैज्ञानिक विकास के साथ–साथ हुए मेरे यत्किंचित प्रज्ञा–विस्तार ने तीसरे विश्वयुद्ध के आगे की संभाव्य परिणामी परिणति से मेरा अंतस् तक हिला दिया। यानि उससे आगे तो हजारों लाखों गुणा भयातीत स्थिति ही बन जाएगी! इस विचारमात्र से आत्मा हिल जाती है कि उसके बाद तो हर जीव मात्र सहित समग्र पृथ्वी ही विनष्ट हो जाएगी। और जब हमारी पृथ्वी ही नहीं बचेगी तो यह प्रागैतिहासिक काल भी आएगा कहाँ पर?

बदहवास बेहाल पृथ्वी के बारे में कुछ चौंकाते आंकड़े

1. संयुक्त राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष साठ लाख हेक्टेयर कृषि योग्य और चराऊ जमीन बंजर जमीन में परिवर्तित हो रही है। और प्रतिवर्ष दो करोड़ हेक्टयर की जमीन की उपादकता शून्य हो रही है।

2. मोटे आंकड़ों के तौर पर प्रगतिशील देशों में प्रतिवर्ष पंद्रह–बीस लाख लोग कीटाणुनाशक दवाइयों के जहर से पीड़ित होते हैं जिनमें से लगभग दस हजार मृत्यु के मुँह में चले जाते हैं।

3. पृथ्वी को लगभग 20 मील की ऊँचाई पर घेरे, सूर्य से पृथ्वी की ओर आने वाली हानिकारक किरणों को स्वयं में शोषित करके हमारी रक्षा करने और जीवन को पोषक सूर्य किरणों को हम तक आने देने वाली 'ओजोन परत' में बड़े–बड़े छेद बनने लगे हैं। ओजोन में ये झरोखे बने हैं हमारे कारखानों और उद्योगों से पैदा की गई गैसों से।

इन नए रोगों से पृथ्वी को इतना खतरा कभी नहीं रहा जितना आज हैं। लेकिन न्यस्त स्वार्थों के चलते ये कारखाने बंद करने या इनके नए विकल्प खोजने के लिए कोई तैयार ही नहीं हैं। किसी ने सच ही कहा है कि–''पर्यावरण को स्वच्छ बनाएँ, रोगों को हम दूर भगाएँ।''

4. कैसी विडंबना है कि विश्व का वर्तमान युद्ध–बजट तो एक हजार अरब डॉलर प्रतिवर्ष है, जबकि धनाभाव में प्रतिवर्ष एक करोड़ पांच लाख लोग कुपोषण से मर जाते हैं।

5. प्रति मिनट तीस बच्चे भोजन और सस्ते टीकों के अभाव में मरते है। जबकि प्रति मिनट सार्वजनिक जमा राशि में से तेरह लाख डालर विश्व के सैनिक बजट पर खर्च किए जाते हैं।

6. दो सौ पचास मिलियन बच्चों को प्राथमिक शिक्षा भी नहीं मिलती है जबकि केवल एक परमाणु पनडुब्बी का बजट प्रगतिशील देशों के स्कूलों में पढ़ने वाले एक करोड़ साठ लाख बच्चों की शिक्षा के वार्षिक बजट के बराबर है और दुनिया भर के सागरों में ऐसी सैंकड़ों पनडुब्बियां घूम रही हैं। प्रत्येक पनडुब्बी पर ऐसे परमाणु हथियार हैं जो उन सब हथियारों से छह गुणा अधिक ताकतवर हैं, जो दूसरे विश्वयुद्ध में इस्तेमाल किए गए थे। वे इतने मँहगे हैं कि उतने खर्च में हम अपने बच्चों को शिक्षा और पोषाहार दे सकते हैं।

7. न केवल धरती वरन सागर, पर्वत, ग्लेशियर, उपग्रहादि पर भी मानव द्वारा छोड़े गए प्लास्टिक आदि के कचरे के दैत्य का आकार निरंतर बढ़ता ही जा रहा है।

8. वैज्ञानिक प्रगति के कारण संपूर्ण ब्रह्मांड, मानव शरीर के लिए घातक कैंसर आदि बीमारियों को बढ़ाने वाली अवश्य इलैक्ट्रो–मैग्नेटिक किरणों के संजाल में जकड़ता जा रहा है।

9. तिथि बाह्य गोमोरा और सोडोम की तो छोड़ो, विश्व में एक करोड़ से भी अधिक लोगों को एड्स हो चुका है। भारत और मुस्लिम देशों सहित भारत में एड्स से ग्रसित लोगों की संख्या तो निश्चित रूप से अधिक होगी क्योकि वहाँ पर हजारों वर्षों से समलैंगिकता प्रचलित रही है।

ये बहुआयामी रास्ते हैं जिनके द्वारा मौत पृथ्वी की ओर बढ़ी आ रही है। इन अंतरराष्ट्रीय समस्याओं का समाधान किसी एक राष्ट्र के बूते की बात नहीं है। जब समस्या वैश्विक है तो निदान भी वैश्विक निकालना होगा। यह हमें निर्धारित करना होगा कि हम इस विराट चुनौती और विराट अवसर का सामना किस तैयारी के साथ करते हैं। यदि हम समवेत स्वर और कार्यशीलता से एकजुट होकर काम करने को तैयार नहीं हुए तो हम सबको इस ग्रह सहित विलीन होने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

वृक्ष और मनुष्य का सह अस्तित्व : न मनुष्य वृक्षों के बिना जी सकता है और न ही वृक्ष मनुष्य के बिना जीवित रह सकते हैं। लेकिन मूढ़तापूर्ण ढंग से बिना यह विचार किए कि इन वृक्षों की आपूर्ति हम कैसे करेंगे, अखबारों का कागज तैयार करने के लिए असंख्य पेड़ निरंतर काटे जा रहे हैं। सनातन संपत्ति हिमालय से युक्त नेपाल के पास तो यही एकमात्र बिकाऊ चीज है। पिछले तीस वर्षों में नेपाल के आधे वृक्ष तिरोहित हो गए हैं। कुल्हाड़ी की बजाय, आधुनिकतम तकनीक से काटे जाने से, एक दिन में ही सैकड़ों वृक्ष निःशेष हो जाते हैं, ओर मीलों लंबी जमीन रेगिस्तान बन जाती है। पूरी दुनिया में उष्णकटिबंधीय जंगल लगभग दो करोड़ हेक्टेयर, यानि अमेरिका के सबसे बड़े प्रदेश कैलिफोर्निया से लगभग आधा क्षेत्र प्रतिवर्ष नदारद हो रहा है। अपरिसीम दुखद परिणाम तो इस समय भयावह हो उठेंगे जब हमारे सामने यह समस्या आएगी कि अब मनुष्य जाति की सजीवता बचाने के लिए आक्सीजन कहाँ से पाएँ? मनुष्यों की छोड़ी हुई सांसों के द्वारा विसर्जित कार्बनडाईआक्साईड वृक्ष पी जाते हैं। उनकी अनुपस्थिति से आकाश में कार्बनडाईआक्साइड की एक परत सतत जमा है जिससे भी वातावरण का तापक्रम कुछ न कुछ अंशों में बढ़ता ही है। उन वृक्षों के, जो कभी नदियों के प्रचंड वेग से बहने को रोकते थे, न होने से सागर विपुल जल प्रवहन को पूर्णतः तुरंत आत्मसात नहीं कर पाता और परिणामतः राह में आने वाली फसलों के नष्ट होने के साथ–साथ बाढ़ें भी आती हैं।

कैसी विडंबना है कि हमने न केवल प्रदूषणों को बढ़ाया बल्कि आज भी निरंतर बढ़ाए ही जा रहे हैं, बजाय सचेत होने के। आज विकास के पर्याय समझे जाने वाले वैश्वीकरण और औद्योगिकीकरण के नाम पर हो रही वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, बेहिसाब पर्वतीय उत्खनन, जल अपव्यय, पशु–पक्षियों की घटती संख्या, बिगड़ते–बदलते प्राकृतिक संतुलन व अनियमित मौसम चक्र के चलते बहुआयामी प्रदूषण जिस गति से लगातार अपने पैर पसारता जा रहा है, उससे तो स्वयं पृथ्वी का भावी अस्तित्व ही खतरे की जद में आ गया है। ऐसा लगता है मानो धरती की धड़कनें भी विचलित हो उठी हैं। आज ताजी और स्वच्छ हवा व पानी मिलना दूभर हो गया है। ध्वनि ने भी जानलेवा शोर–शराबे का रूप इख्तियार कर लिया है।

प्रकृति को विकृत करते भाँति–भाँति के प्रदूषणः

प्रदूषण न केवल प्रकृति को विकृत कर रहा है, बल्कि मानव स्वास्थ्य को भी लीलने लगा है। आइए, एक नजर डालते है तरह–तरह के प्रदूषणों और उनके खतरनाक प्रभावों पर–

वायु प्रदूषण : निरंतर बढ़ती जनसंख्या और वायु प्रदूषण ने सारे विश्व को हिलाकर रख दिया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में प्रतिवर्ष वायु प्रदूषण से 70 लाख लोग जान गँवाते हैं। नेचर सस्टेनेबिलिटी नामक पत्रिका में प्रकाशित अध्ययन से अनुमान लगाया गया है कि बाहरी और आंतरिक स्रोतों से होने वाले वायु प्रदूषण के कारण भारत में वर्ष 2010 में 11.9 लाख से अधिक लोगों की असामयिक मृत्यु हुई और जीवन के लगभग 18 मिलियन स्वास्थ्य वर्षों का नुकसान हुआ है। विश्व के 91 देशों के लगभग 1100 शहरों में प्रदूषण का स्तर काफी उच्च है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के आँकड़ों के विश्लेषण के अनुसार भारी जनसंख्या वाले 49 शहरों में से 42 शहरों में 10 माइक्रोन के बराबर अथवा इससे कम आकार के अवांछित पदार्थों का स्तर मानकों से अधिक है।

जल प्रदूषण : पिछले दो दशक के दौरान केंद्र सरकार देश में विभिन्न जल प्रदूषण नियंत्रण परियोजनाओं, मसलन गंगा और यमुना

कार्य योजनाओं पर अब तक लगभग बीस हजार करोड़ रूपए खर्च कर चुकी है। लेकिन अब तक इसके कोई खास नतीजे नहीं आए हैं। उल्टे दिल्ली से गुजरने वाली यमुना की जो हालत हो गई है उसे देखते हुए सीएजी ने अपनी रपट में उसे एक 'मृत' नदी कहा है, तो शायद इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। कहने को केंद्र और राज्यों के प्रदूषण बोर्ड एक दूसरे के सहयोगी हैं लेकिन सीएजी के मुताबिक उनके नियंत्रण क्षेत्रों को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर कोई भी एजेंसी जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं है।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि देश के करीब 650 जिलों के 158 इलाकों में भूजल खारा हो चुका है। 267 जिलों के विभिन्न क्षेत्रों में क्लोराइड की अधिकता है और 385 जिलों में नाइट्रेट की मात्रा मानकों से काफी ज्यादा है। इसी तरह कई इलाकों के पानी में आर्सेनिक, सीसा, क्रोमियम, कैडमियम और लौह तत्वों की भारी मात्रा मौजूद है जो आदमी की सेहत को नुकसान पहुँचा रही है। ये ऐसे तथ्य हैं जिन्हें नजरअंदाज करना खतरे से खाली नहीं। सच बात तो यह है कि स्थिति खतरे के निशान के बिल्कुल करीब पहुँच गई है। भाद्र मास में रूठे मानसून का 45 डिग्री पार पारा हमें चेतावनी देने लगा है। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि आने वाले दिनों में लाखों लोगों के लिए पीने के पानी की परेशानी के साथ–साथ कृषि और जलविद्युत ऊर्जा पर भी संकट मंडराने लग जाए। हमें सोचना होगा कि जन–जन को शुद्ध पानी कैसे उपलब्ध कराया जाए। इस परिप्रेक्ष्य में उचित होगा कि सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के लिए समय–समय पर चेतना–जागृति रैलियाँ निकाली जाएँ।

उक्त प्रदूषण विवेचना में सामुद्रिक प्रदूषण, जो किसी मायने में पृथ्वी–तल पर होने वाले प्रदूषण से कम नहीं है, शामिल नहीं किया गया है।

ध्वनि प्रदूषण :– उफ् ये महानगरों का शोर! देश में हुई खोजों के निष्कर्ष चौंकाने वाले हैं। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई, कानपुर आदि व्यस्त महानगरों में ध्वनि प्रदूषण प्रत्येक 9 वर्षों में लगभग दो

गुना हो रहा है। इस समय दिल्ली व कानपुर के 85 प्रतिशत हिस्से की घनी आबादी वाले क्षेत्रों में 90 से 105 डेसीबल स्तर का ध्वनि प्रदूषण है। देश की आर्थिक राजधानी मुंबई का लगभग 91 प्रतिशत भाग 100 से 120 डेसीबल ध्वनि के बीच रहता है। इसी से मिलती–जुलती स्थिति कोलकाता की है, लेकिन प्राप्त आंकड़ों के अनुसार चेन्नई का सिर्फ 40 प्रतिशत हिस्सा ही 80 से 100 डेसीबल ध्वनि में रहता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से 45 से 75 डेसीबल से अधिक क्षमता का शोर स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद होता है। वैज्ञानिकों का यह अनुमान है कि 21वीं सदी में शहरी आबादी के चालीस प्रतिशत लोग न केवल बहरेपन के शिकार होंगे बल्कि मानसिक अस्वस्थता तथा हृदय रोगों से भी परेशान होंगे।

प्रदूषण न केवल प्रकृति को विकृत कर रहा है बल्कि मानव स्वास्थ्य को भी लील रहा है। आइए, एक नजर डालते हैं तरह–तरह के प्रदूषणों और उनके खतरनाक कारकों पर–

ग्लोबल वार्मिंग से बढ़ता जलवायु असंतुलन और पिघलते ग्लेशियरः

संयुक्त राष्ट्रसंघ के पूर्व महासचिव श्री बान की मून ने अपने 'इको टूर' के बाद, स्व–अनुभूत जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव की भयावहता और उसके लिए मानव को ही पूर्ण और प्रमुखता से जिम्मेवार ठहराते हुए, बहुत लुटे–टूटे मन से गहरी संवेदना के साथ इसी वेदना को अभिव्यक्त किया था। विकास के नाम पर निरंतर किए जा रहे भौतिक सुख–सुविधाओं और साधनों के संग्रहण, उनकी जुनूनी अभिवृद्धि, प्राकृतिक स्रोतों के अंधाधुध और बेरहम दोहन के फलस्वरूप पृथ्वी पर निरंतर बढ़ रही ग्लोबल वार्मिंग, जल, वायु और ध्वनि आदि प्रदूषण के निरंतर हो रहे प्रलयंकारी हमलों ने तो मानो पृथ्वी को ही तीव्र प्रज्वलनशील बारूद के विशाल ढेर पर लाकर धर दिया है। क्या यह चौंकाने वाला भयावह सच नहीं है कि 87 किलोमीटर लंबा जगप्रसिद्ध विशाल हिमखण्ड 'लार्सन' महज तीन सप्ताह में ही पिघल कर लुप्त हो गया? जार्ज द्वीप में चिली रिसर्च बेस

में कार्यरत वैज्ञानिकों ने गहन चिंता जाहिर की है कि आज लार्सन की ही तरह पानी पर तैर रही संपूर्ण पश्चिमी अंटार्कटिक हिम पट्टी का अस्तित्व भी खतरे में आ गया है। ईश्वर न करे, यदि यह पट्टी पिघल गई तो समुद्र स्तर में छह मीटर से भी अधिक की वृद्धि हो सकती है।

पिघलते पर ग्लेशियर से कब डूबेंगे समुद्र किनारे बसे शहर ?

ध्यातव्य है कि थाइलैंड की राजधानी बैंकाक 1.2 इंच प्रति वर्ष की दर से समुद्र में डूब रही है। भूमिगत जल के अंधाधुंध दोहन ने यह समस्या बढ़ाई है। मरिआना आइलैंड्स और फिजी को समुद्री तूफानों से खतरा बढ़ा हैं। समुद्री पानी के स्तर और तापमान में वृद्धि से मूंगे की चट्टानों जैसी प्राकृतिक रक्षा प्रणाली कमजोर हो रही है। अगले सौ वर्षों में दुनिया के इन 15 क्षेत्रों में समुद्री जल के स्तर में सबसे ज्यादा बढ़ोतरी होगी और इसमें सबसे ज्यादा खतरा है बैंकाक को। यानि बैंकाक 6.7 फिट, मनीला 4.39 फिट, कुषिरो जापान 3.08 फिट, ग्रैंड आइल अमेरिका 3.03 फिट, पोटी ज्योर्जिया –2.16 फिट, ओशियन सिटी अमेरिका –1.8 फिट, जेजू दक्षिण कोरिया– 1.76 फिट, कार्टाजेना कोलंबिया– 1.74 फिट, लुसी चीन–1.63 फिट, गुआम, मरिआना आइलैंड्स– 2.77 फिट, गेलवेस्टन, अमेरिका– 2.24 फिट, सुवा फिजी 2.07 फिट, लेगाज्पी फिलीपाइंस 1.77 फिट, रॉकफोर्ट, अमेरिका–1.69 फिट, देवाओ सिटी और फिलीपाइंस में –1.75 फिट तक की अभिवृद्धि का अनुमान है।

क्षरण की दिशा में ग्रीनलैंड का एलीफेंट फुटः

ग्रीनलैंड के पूर्वी तट पर स्थित यह ग्लेशियर सबसे सुंदर माना गया है। ऊँचे पहाड़ों से बहने के कारण इसे 'एलीफेन्ट फुट ग्लेशियर' (हाथी के पैर जैसा) कहा जाता है। यहाँ भी ग्लेशियरों की स्थिति अच्छी नहीं है। पिछले 10 सालों में यहाँ के ग्लेशियरों के पिघलने से समुद्र के जलस्तर में बढ़ोतरी, वैश्विक जलस्तर की दृष्टि से 10 प्रतिशत है। यहाँ मौजूद ग्लेशियर आर्कटिक जैसी आइसशीट से अलग है। इसी कारण इनके पिघलने की गति उनकी तुलना में ज्यादा

है। स्विस वैज्ञानिकों के शोध बताते हैं कि ग्लोबल वार्मिंग के कारण ये ग्लेशियर ज्यादा समय तक सुरक्षित नहीं कहे जा सकते कोई आश्चर्य नहीं कि किसी विध्वंसकारी विज्ञान फंतासी फिल्म की तरह न्यूयॉर्क, मुंबई और शंघाई जैसे खूबसूरत व्यवसायी नगर भी जल–समाधिस्थ हो जाएँ।

विश्व के कुल 240 (संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्यता प्राप्त–195) देशों में भारत की स्थितिः

सबसे बेहतर पर्यावरण वाले देश		**सबसे खराब पर्यावरण वाले देश**	
देश	**रैंक**	**देश**	**रैंक**
डेनमार्क	1	भारत	180
ब्रिटेन	2	म्यांमार	179
फिनलैंड	3	बांग्लादेश	177
स्वीडन	5	पाकिस्तान	176
स्विट्जरलैंड	9	तुर्की	172

यानि पर्यावरण के मामले में भारत पिछले साल 168 वें नंबर पर था और इस साल 12 स्थान नीचे गिरकर 180वें स्थान पर आ गया।

मध्य एशिया ग्रीन लैंड के साथ उत्तर दिशा में स्थित क्षेत्रों को ऐसे तीन संवेदनशील 'हाट स्पॉट' में से एक माना गया है, जहाँ का तापमान वैश्विक औसत तापमान से भी दस गुना अधिक तेजी से बढ़ रहा है। ग्लेशियर आँखों के सामने पीछे खिसक रहे हैं। घास–फूस जड़ें जमाने लगे हैं। अक्सर गर्मी के मौसम में बर्फबारी के बजाए पानी बरसने लगा है। बान की मून का यह मानना यद्यपि न तो उनका निराशावादी दृष्टिकोण है और न ही वे मात्र दुनिया वालों को डराने के लिए ही ऐसा कह रहे हैं कि संभवतः हम प्राकृतिक विनाश के चरम बिंदु के बहुत नजदीक पहुँच चुके हैं। चिली के शोधकर्ताओं जो 120 ग्लेशियरों पर निगाह रखे हुए हैं, उनके अनुसार लगभग आधे ग्लेशियरों तो सिकुड़ रहे हैं। सिकुड़ने की दर बीते एक दो दशकों से

दो गुना अधिक है। इसमें राजधानी सेंटियागो से बाहर स्थित पहाड़ों के ग्लेशियर शामिल हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि आने वाले दिनों में साठ लाख क्षेत्रीय लोगों को पीने के पानी के साथ–साथ कृषि और जलविद्युत ऊर्जा पर भी संकट मंडराने लग जाए।

अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त टोरेस डेल के नेशनल पार्क में भी क्षरण के चिन्ह दिखने लगे हैं। एंडीज पर्वत श्रृंखला की बर्फ भी हमारी सोच से कहीं अधिक तेजी से पिघल रही है। 1985 में एक बार लोगों ने नोटिस किया था कि अल्पाइन से घिरा बर्फीला समुद्र, महज दो सप्ताह में तीन किलोमीटर पीछे खिसक गया था। अमेजन नदी के मुहाने के समीप स्थित, कोम्बू दीप समाउमीरा पेड़ का तल, जिसे कपोलकल्पित 'पृथ्वी के फेफड़े' का हृदय–स्थल भी कहा जाता है, वहाँ भी नैसर्गिक संपदा के क्षरण के दबे पांव आने की पदचाप स्पष्ट सुनाई देने लगी है। लगता है कि हमें एक बार फिर विषम, अनिश्चित और विध्वंसक लार्सन प्रभाव के साक्षात दर्शन होने को हैं। यहाँ के उष्णकटिबंधीय वर्षा ऋतुवाले वन तो बहुत पहले ही जंगलों की कटाई और भूमि क्षरण की भेंट चढ़ चुके हैं। फलतः यह क्षेत्र अकेला ही वैश्विक स्तर की लगभग 21 प्रतिशत कार्बन के उत्सर्जन का मूल कारक बन गया है। यदि वैज्ञानिकों की शंका को निर्मूल न समझें तो यह बात काफी निराश करने वाली है कि निरंतर हो रहा जलवायु परिवर्तन कुछ दशकों में ही अमेजन को लंबी वृक्षहीन घास में बदल कर रख देगा।

दशाब्दियों पूर्व महान रचनाकार प्रदीप ने भले कभी निम्न गीत भारतवासियों को विदेशी आक्रमण से सचेत करने के मकसद से लिखा था लेकिन आज यह गीत पूरी दुनिया वालों को मानवता बचाने की सीख देता प्रतीत होता है–

"एटम बमों के जोर पे ऐंठी है ये दुनिया,
बारूद के इक ढेर पे बैठी है ये दुनिया।
तुम हर कदम उठाना जरा देखभाल के,
इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के।।

विगत शताब्दी की वस्तुस्थिति एवं परिणामः–

न केवल पर्यावरणविज्ञों बल्कि हर आम आदमी का यह मत हो चला है कि यदि अब भी हम सचेत नहीं हुए तो इस शताब्दी के अंतिम दशक तक पहुँचते–पहुँचते हमें पर्यावरण के दमघोंटू गंभीर खतरों का सामना करना होगा। यदि हमारे प्रयास अपर्याप्त रहे तो मानवता की वह बड़ी असह्य और दयनीय स्थिति होगी।

विश्व युद्धों से होते क्षत–विक्षत मानवीय विश्वास, विकास, अवसाद, दुख, भय और मौत के तांडव से सिहरे हुए, अतिसंवेदनशील, अंतरराष्ट्रीय कानून के प्रवर्तक कहे जाने वाले हॉलैंड के विचारक ग्रोशियस ने यह सोचकर कि देशों के बीच झगड़ों को निपटाने के लिए कोई न कोई उपाय तो होना ही चाहिए, उसने एक किताब लिखी थी "राष्ट्रों के बीच युद्ध और शांति के नियम"(ऑन लाज ऑफ वॉर एंड पीस अमंग नेशंस)। लेकिन लगता है विकास की इस ताबड़तोड़ विनाशी दौड़ में, हथियारों के ढेर पर बैठी इस दुनिया के लिए, आज इस किताब की प्रासंगिकता और प्रभाव बहुत फीके पड़ गए हैं। किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में आज सारे विश्व के वैज्ञानिक, दार्शनिक और बुद्धिजीवीवर्ग हतप्रभ हैं।

हमारी पुरानी मानवीय प्रवृत्ति और प्रकृति के अनुसार आज इस समयबिंदु पर समस्या के हल के लिए कर्तव्य, दायित्व, नैतिकता और अध्यात्म पर व्याख्यान सुनने–सुनाने का समय शेष नहीं बचा है। हमें क्षणांशों को भी खोए बिना निर्धारित निवारण बिंदुओं पर अमल करना होगा। प्रथमतः यदि सभी शिक्षित वर्ग के लोग इन बातों को अपनाएँ तो बाकी के लोग भी उनका अनुसरण करके इस धरती को स्वर्ग बना सकते हैं, बिना हमें और हमारी पृथ्वी को स्वर्गीय बनाए। समग्र मानवता का एकमेव मकसद होना चाहिए कि हल निकले, अविलंब निकले, भले कहीं से भी निकले, कोई भी हल–स्रोत हो। दुष्यंत कुमार के समसामयिक सटीक शब्दों में–

"हो गई है पीर पर्वत–सी पिघलनी चाहिए"
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
आज यह दीवार परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।।

मेरे सीने मे नहीं, तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।।"

मनुष्य के भावी स्वर्णिम भविष्य के लिए, यदि हमें वास्तव में पृथ्वी सहित मानवीय अस्तित्व को बचाने के लिए कुछ करना है, तो वर्तमान समय–खंड, एक परमातिपरम और महान चुनौती भरा क्षण बन कर हमारे सामने आ खड़ा हुआ है। अन्यथा पृथ्वी नामक हमारा यह सुंदर ग्रह मानवीय चैतन्यता के सर्वश्रेष्ठ विकासोन्मुखी अस्तित्व के साथ साथ हमेशा–हमेशा के लिए चूर्ण–चूर्ण हो जाएगा।

डराना मकसद नहीं लेकिन.....

(i) पृथ्वी और पर्यावरण, विश्व की साझी संपदा है। अतः इसके सुख–दुख भी साझा हैं। अतः समस्या अंतरराष्ट्रीय है तो समाधान भी अंतरराष्ट्रीय खोजने होंगे। समस्या समाधान हेतु राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्ररीय स्तर के सरकारी प्रयास के साथ–साथ प्रत्येक देश को सहयोगात्मक रवैया अपनाना ही पड़ेगा।

(ii) संयुक्त राष्ट्र संघ को अपने प्रयासों की अपर्याप्तताएँ एवं असफलताओं को भुलाकर सार्थक प्रयास करने होंगे। कहने को तो संयुक्त राष्ट्र संघ ने वातावरण और विकास पर विश्व आयोग के माध्यम से कागजी प्रयत्न किए थे, लेकिन वे भी अपर्याप्त निकले। इनकी रिपोर्ट चालाकी भरी थी क्योंकि वह इस बारे में कोई चर्चा नहीं करती कि वर्तमान समस्याएँ किसने पैदा कीं।

(iii) विनाश रोकने के बुनियादी उपाय–

1. सीमित संसाधनों के बेहतर इस्तेमाल का तरीका निकालें। आयुध उत्पादन पर ही रोक लगे।
2. परमाण्विक क्षमता का उपयोग केवल मानव हितार्थ हो।
3. प्राकृतिक जीवन की ओर लौटें तभी रुकेगा प्रदूषण।
4. ग्लोबल वार्मिंग रोकने में राई और पहाड़ सभी के प्रयास हों।
5. जल चेतना जगाने का पांचजन्य फूँकने की आवश्यकता है।
6. कचरे को फैलने से रोकने की चुनौती स्वीकारें।
7. विकास की दीर्घकालीन रणनीति बनाएँ।
8. कोयला खदानों के आबंटन को बहुत सावधानीपूर्वक करें।

9. पारदर्शी बनकर आबंटन नीति सुधारें।

10. कच्चे तेल का दोहन सचेत होकर करें।

11. रोकनी होंगी निरंतर फैलती अदृश्य किरण।

12.. विकसित और विकासशील देशों की पर्यावरणिक स्थिति की तुलनात्मक वस्तुस्थिति के अनुरूप द्रुत गति से सुधारात्मक प्रयास किए जाएँ।

आओ.....अब हम लौट चलें –पर्यावरण की प्राकृतिक जड़ों की ओर ।

निवारण हेतु किए जाने वाले सार्थक प्रयास क्या हों ? उन्हें अमली जामा कैसे पहनाएँ? सभी राष्ट्र इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करें।

बस ये अंतिम मौके हैं– चेतने के। अभी नही, तो कभी नहीं। मानवता आज समाप्ति के कगार पर है। वो (प्रतिपक्षी देश) भले युद्ध रचें, हमें (प्रबुद्ध देश) जीवन रचना है। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति यह संकल्प करे कि किन्हीं निहित स्वार्थों के चलते इस ग्रह को नष्ट नहीं होने देंगे। इस पृथ्वी को मनुष्य का सृजन करने में चालीस लाख वर्ष लगे। वह इतना मूल्यवान है और भविष्य कहीं अधिक मूल्यवान है। मनुष्य के भावी स्वर्णिम भविष्य को बचाने के लिए वास्तव में कुछ करना ही होगा। युद्ध, धर्मयुद्ध आदि के नाम पर हमने विगत तीन हजार वर्षों में पाँच हजार युद्ध लड़े हैं मानो लड़ने का नाम ही जीवन है एवं सृजन करना, प्रकृति के उपहारों का उपभोग करना जीवन का हिस्सा है ही नहीं। हजारों वर्षों से मनुष्य मनमाने ढंग और अपनी जीवन शैली से ही जीता आ रहा है और अगली पीढ़ी को उसने मनमाने ढंग से जीने के लिए बाध्य ही किया है। अब यह और आगे संभव नहीं है।

हमें निवारण के लिए एक आमूल छलांग (क्वांटम लीप) लगानी होगी और वर्तमान पीढ़ी के साथ–साथ नई पीढ़ी को भी सिखाना होगा कि हम अभी तक जिस भांति जीते आ रहे हैं, अब उस भांति नहीं जीएँ। केवल तभी भविष्य बदल सकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की वातावरण और विकास पर विश्व आयोग को सौंपी गई रिपोर्ट– 'हमारा

सामूहिक भविष्य' के माध्यम से अपील की गई है कि हमारे ग्रह पृथ्वी को बचाने के लिए एक अविच्छिन्न (सस्टेनेबल) विकास की जरूरत है। जो कुछ करना है अभी करना है, अभी का अभी, इसी समय–यानि भविष्य के साधनों को नष्ट किए बगैर, वर्तमान की जरूरतों को पूरा करना। अन्यथा भविष्य होगा ही नहीं।

एक विहंगम दृष्टिकोणः

आधुनिक वैज्ञानिकों का लक्ष्य समग्रता और पूर्णता के साथ मानवता या सृष्टि का विकास करना नहीं है। प्रत्येक वैज्ञानिक एक निश्चित दृष्टि से (जिस प्रकार घोड़ा अपनी आँख पर कवच या मोहरा लगाकर देखता है) शोध करता है तथा अपने शोध पर आधारित परिणाम प्रस्तुत करता है। स्वार्थी राजनेता, व्यापारी व संस्थाएँ अपने लाभ के आधार पर इन विचारों का प्रचार–प्रसार करती हैं। भारत के गाँव–गाँव तक पैर पसारते घरों में लगने वाले वाटर प्योरीफायर उपकरण इसी व्यापारिक सोच का परिणाम है। ऐसा प्रसारित किया जा रहा है कि जैसे कुएँ, नहर या नल से पानी पीने वाले बीमार पड़ जाएँगे, मर जाएँगे– किसलिए ? हो सकता है किसी नगर या क्षेत्र–विशेष में कोई समस्या हो, तो यह वहाँ की सरकार का दायित्व है कि समस्या का समाधान करे।

पर्यावरण से संबंधित कुछ तथ्य, सूचनाएँ और समाधानादिः

1. वृक्ष कार्बनडाईआक्साइड का अवशोषण कर शुद्ध आक्सीजन उत्सर्जित करते हैं।

2. पेड़–पौधे मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3. 12 फिट लंबे 20 पेड़ों से एक टन कागज तैयार होता है।

4. कम से कम दस वर्षों में जलवायु नियंत्रण हेतु 14 बिलियन वृक्षारोपण (संपूर्ण धरती हेतु) की आवश्यकता है।

5. प्रतिदिन लगभग 20 हजार हेक्टेयर वृक्षों व जंगलों में कटाई जारी है।

अतः समस्त पाठकों से अपील है कि वो पर्यावरण संरक्षण हेतु निम्नलिखित प्रयास करें–

1. अपने नगर को साफ रखने में खुद पहल करें व दूसरों को भी प्रेरित करें।

2. प्लास्टिक की थैली इधर–उधर न फेंकते हुए नियत स्थान पर फेंके तथा प्लास्टिक थैली का इस्तेमाल कम से कम करें।

3. बिजली बचत हेतु माइक्रोवेव का प्रयोग करें। सही बल्ब या ट्यूब लाइट का प्रयोग करें। किसी भी इलैक्ट्रिकल/इलैक्ट्रॉनिक्स संयत्र को साइलेंट मोड पर न छोड़ें। एसी, फ्रिज व जनरेटर का कम से कम इस्तेमाल करें, ताकि ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन से ओजोन परत के नुकसान को कम किया जा सके। एसी के एयर बॉक्स पर धूप न आने दें। बिजली/गैस/ईंधन बचाने के लिए प्रेशर कुकर काम में लें।

4. शहरी व ग्रामीण जगह प्रत्येक घर के सामने एक वृक्ष अवश्य लगाएँ व लगवाने हेतु प्रेरित करें। कहा भी है कि–

''वृक्षारोपण कार्य महान। एक वृक्ष सौ पुत्र समान।।''

5. सरकार सुनिश्चित करे कि प्रत्येक नागरिक वृक्ष लगाए। और ऐसा करने के लिए हम बच्चों को भी प्रेरित करें। एक प्रश्न हमें खुद से भी पूछना चाहिए कि हमने अपने जीवन काल में अब तक पर्यावरण संरक्षण के लिए क्या किया है? क्या हमने हमारी उम्र की संख्या के बराबर वृक्षारोपण किया है? अगर नही ंतो आज और अभी से शुरुआत की जा सकती है।

अब ध्वनि प्रदूषणः

ध्वनि प्रदूषण से कैसे बचें ? क्या उपाय करें आमजन ?

जानलेवा ध्वनि प्रदूषण से बचना है तो जल्दी से जल्दी उसके प्रति जानकारी, सावधानी और जागरूकता को बढ़ावा देना होगा। आखिर इस बात का क्या औचित्य है कि एक तरफ हम कारखानों, तरह–तरह के यंत्रों और यातायात से विकास के सोपानों की ओर दौड़ लगाते रहें, दूसरी तरफ उन्हीं से उत्पन्न ध्वनि जानलेवा बनकर मारती रहे। हमें कल–कारखानों, यातायात के संसाधनों आदि के शोर को भी वांछित सीमा तक नियंत्रित करना होगा। आम आदमी ध्वनि प्रदूषण कम करने के लिए निजी स्तर पर भी प्रयत्न कर सकता है।

जैसे— वाहन चलाते समय हॉर्न तभी बजाए जब वह बहुत जरूरी हो। शादी —विवाह, पर्व—त्योहारों व अन्य उत्सवों में ध्वनि—विस्तार यंत्रों के प्रयोग से बचें। यदि बहुत जरूरी हो तो उन्हें धीमी आवाज में चलाएँ। आतिशबाजी, बैंड आदि से बचें। पाश्चात्य ढंग के संगीत समारोहों आदि के आयोजन या उनमें शिरकत करने से यथासंभव बचें। शोरगुल वाले स्थान पर ज्यादा देर न रूकें। रेडियो, टी वी आदि धीमी आवाज में चलाएँ। अनावश्यक बातचीत से स्वयं बचें और इसके लिए दूसरों को भी प्रेरित करें। सामान्य बातचीत के दौरान जोर से न बोलें। यदि जोर से बोलने की आदत हो तो उसमें बदलाव लाने की कोशिश करें।

विकटासन्न घड़ी में सुखद संकेतः

ऐसी विकटासन्न घड़ी में भी संभवतः हम सब के लिए यह प्रेरणादायी सुखद संकेत है कि पिछले दो वर्षो में ब्राजील ने न केवल अमेजन के जंगलों की कटाई की रफ्तार आधी कर दी है, बल्कि स्वयं को विशालकाय हरियाली वाले क्षेत्र में बदल कर सारे विश्व के लिए एक प्रतिस्पर्धात्मक मिसाल प्रस्तुत की है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि ब्राजील ऊर्जा नवीनीकरण के मामले में शेष विश्व का अग्रणी बन कर उभरा है। यह भी अटल विश्वास किया जाना चाहिए कि नैराश्य के भंवर से उबरने के लिए जया जादवानी की निम्न पंक्तियाँ पर्याप्त से ज्यादा सत्य सिद्ध हों—

''नहीं, यह सबसे कठिन समय नहीं!
अभी भी दबा है चिड़िया की
चोंच में तिनका
और वह उड़ने की तैयारी में है !
अभी भी झरती हुई पत्ती
थामने को बैठा है हाथ एक''

कचरा क्यों करें?

दीपक दीक्षित

भारत में प्रतिदिन लगभग डेढ़ लाख टन से भी अधिक कचरा पैदा किया जाता है। इस तरह हम में से हर व्यक्ति रोज औसतन लगभग पौन किलो कचरा पैदा करता है। और दुर्भाग्य की बात यह है कि जो सज्जन व्यक्ति हमारे द्वारा पैदा किए गए इस कचरे की सफाई में मदद करता है, उसे अकसर 'कचरेवाला' संबोधित करते हुए हीन भाव से देखा जाता है। हमारे देश में कई अन्य विकसित देशों की तरह इस कचरे का ठीक तरह से निपटान करने की क्षमता नहीं है। हमारे प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के स्वच्छ भारत अभियान के रूप में इस समस्या से लड़ने की प्रेरणा मिलती है।

कचरा पैदा करने का काम हम हर जगह करते हैं, फिर वह चाहे घर हो या बाजार या फिर हमारे काम करने की जगह। बाजार और काम करने की जगह से तो हम यह कह कर अपनी जिम्मेदारी से बच सकते हैं कि वहाँ की व्यवस्था तो सरकार या नियोक्ता के हाथों में है, पर अपने घर में जो कचरा हम पैदा करते हैं उसकी मात्रा को तो हम अपने प्रयास से कम कर सकते हैं।

आप चाहे महलों में रहते हों या झोंपड़ी में, घर में रखे कचरे के डिब्बे पर शायद आपकी नज़र कभी न कभी गई होगी। ये इस काम के लिए नफासत से बनाया गया महंगा डिब्बा हो सकता है या फिर कोई भी खाली और बेकार पात्र जो इस काम के लिए इस्तेमाल किया जा रहा हो। घर का कोई एक सदस्य या फिर आपका कोई वेतन भोगी कर्मचारी इस डिब्बे को दिन में एक बार खाली करता होगा जिससे घर का कचरा कहीं बाहर चला जाए और हम इससे निजात

पाएँ। पर हममें से शायद ही किसी को इस कचरे के डिब्बे के बारे में सोचने की फुर्सत मिलती होगी।

एक आम घर के कचरे–दान में अकसर पाई जाने वाली वस्तुएँ निम्न हैं –

1. फल–सब्जियों के छिलके या रसोई से निकला हुआ कचरा।

2.पैकिंग का सामान जो कागज, प्लास्टिक या कपड़ा आदि कुछ भी हो सकता है।

3. टूटे हुए बर्तन, खिलौने, फर्नीचर आदि जो काँच, प्लास्टिक या अन्य किसी चीज के टुकड़े हो सकते हैं ।

4. पुराने अखबार, किताबें, कपड़े, बर्तन या कोई भी ऐसा सामान जो आप समझते हैं कि अब आपके काम का नहीं है।

5. धूल ,मिट्टी और साफ़–सफाई में निकला कचरा।

यह सूची (लिस्ट) इस आधार पर बनाई गई है कि चीजें अनुपयोगी कैसे हो जाती हैं। इस सूची को एक और तरीके से भी बनाया जा सकता है। इस बार हम इसका आधार यह रखते हैं कि इन चीजों का क्या–क्या किया जा सकता है। इस तरह **नई सूची कुछ ऐसे बनेगी**–

1. वानस्पतिक खाद बनाने योग्य वस्तुएँ।

2. ऐसी चीजें जो आपके इस्तेमाल की नहीं रहीं, पर कोई और इन्हें खुशी से इस्तेमाल कर सकता है।

3. ऐसी चीजें जिनका पुनर्चक्रण या री–साइक्लिंग हो सकता हो।

4. ऐसी चीजें जिनका सजावट या हस्तकला में फिर उपयोग किया जा सके।

5. ऐसी चीजें जो अगर उसी रूप में फेंक दी गई हों, तो किसी को नुकसान पहुँचा सकती हैं और जिनका निपटान विशेष विधि द्वारा होना चाहिए।

पर अकसर हम इन पाँचों तरह की वस्तुओं को आपस में मिला कर कचरा मानते हैं। आम तौर पर घर में वानस्पतिक खाद बनाने योग्य वस्तुएँ, पुनर्चक्रण योग्य चीजें और नुकसानदायक चीज़ें सब कुछ खिचड़ी की तरह मिला कर कचरेदान में डाल दिया जाता है, जहाँ वे न तो वानस्पतिक खाद बनाने के योग्य रह जाती हैं और ना ही री–साइक्लिंग(पुनर्चक्रण) के लिए। जहाँ तक दूसरों के इस्तेमाल की चीजों की बात है, अकसर हमें समय पर सुविधानुसार सुपात्र नहीं मिलता और ये चीजें घर में यूँ ही जगह घेरती रहती हैं और आम तौर पर एक समय के बाद जब बिलकुल इस्तेमाल के काबिल नहीं रह जाती तब मजबूरी में घर से बाहर फेंक दी जाती हैं। हस्तकला में उपयोग की चीजें तो कुछ भी हो सकती है, पर आजकल अकसर लोग घर में हाथ से बनाई चीज की बजाए मशीन से बनी चीजें ही इस्तेमाल करना पसंद करते हैं।

अगर हम इन सभी श्रेणियों की चीजों की पहचान में जरा–सा ध्यान और दिमाग लगाएँ और उन्हें एक साथ न मिला कर अलग–अलग जगह पर रख दें तो ये सभी चीजें किसी और को नुकसान पहुँचाने के बजाय उनकी मददगार बन सकती हैं। इस काम को सलीके से अंजाम देने पर यही चीजें आपकी आमदनी का स्रोत भी बन सकती हैं। इस काम से आपके कचरे–दान का भार तो कम होगा ही, आपके घर में अधिक खाली जगह पैदा हो जाएगी जिसे आप अपनी सुविधानुसार उपयोग कर सकते हैं। इसके अलावा इस काम से आपको एक सुकून भी मिलेगा।

हर श्रेणी की चीजों को घर में अलग से रख देने से हम अपने जीने के अंदाज में महत्वपूर्ण बदलाव लाने की पहल कर सकते हैं। अब बस बाकी रह जाता है तो इन सभी चीजों को अपने अंजाम तक पहुँचाने की व्यवस्था करना। इस काम को करने के लिए व्यक्तिगत की बजाय सामूहिक रूप से बेहतर अंजाम दिया जा सकता है। हो सकता है यह व्यवस्था आपके मोहल्ले, इलाके, परिसर या कालोनी में पहले

से ही हो या फिर सबके भले के लिए आप इन्हें अपनी जैसी सोच रखने वाले साथियों की मदद से शुरू कर सकते हैं। समाजसेवी संस्थाएँ या फिर मीडिया इस काम में आपकी मदद कर सकता है।

इन व्यवस्थाओं की हम अब एक–एक करके चर्चा करते हैं–

वानस्पतिक खाद बनानाः

कम्पोस्ट या वानस्पतिक खाद बनाना कोई मुश्किल काम नहीं है। आपके मोहल्ले, इलाके, परिसर या कालोनी में कोई पार्क या मुनासिब जगह देख कर इस काम को अंजाम दिया जा सकता है। इस वानस्पतिक खाद का इस्तेमाल या तो अपने आस–पास के पेड़ पौधों में किया जा सकता है या फिर इसे पैक करके बेचा भी जा सकता है। यही नहीं, अगर आप चाहें तो अपने घर के भीतर ही खुद ही थोड़ी मात्रा में वानस्पतिक खाद बना सकते हैं जिसका इस्तेमाल भी स्वयं आपके द्वारा या आपके मित्रों/पड़ोसियों के द्वारा हो सकता है। इन्टरनेट पर कम्पोस्ट वानस्पतिक खाद बनाने की कई तरह की विधियाँ उपलब्ध हैं। इन्हें देखने के लिए आप गूगल की मदद भी ले सकते हैं।

वानस्पतिक खाद बनाने में सहायक कुछ विशेष बातें हैं:

1. वानस्पतिक खाद को जरूरत के मुताबिक किसी छोटे से डिब्बे में या जमीन में गडढा खोद कर बनाया जा सकता है। इसके लिए कितनी जगह की जरूरत होगी, यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप उसमें कितना सामान डालेंगे। बाजार में भी इस काम के लिए बने बनाए डिब्बे मिलते हैं।

2. इस डिब्बे या गड़ढे में खाद बनाने का सामान डालने के लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि सिर्फ सामान डालते समय खोल कर उसे बाकी समय बंद कर सकें।

3. अगर खाद बनाने का सामान डाल कर कुछ भी न करें तो लगभग 2 साल में वानस्पतिक खाद तैयार हो जाती है, पर अगर हम इसमें आगे बताई हुई कुछ विशेष व्यवस्थाएँ कर लें तो खाद बनाने के समय को कुछ महीनों पर ला सकते हैं।

4. डिब्बे या गड्ढे में हवा जाने के लिए छेदों की व्यवस्था करनी चाहिए।

5. खाद के सामान को चार/छह दिन के अंतराल से उलटने–पलटने की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

6. खाद बनाने के समय को कम करने के लिए कुछ न कुछ तत्व मिलाया जाता है।

7. खाद बनाने के सामान में मांस के अवशेष होने पर मक्खी और कीड़े आदि आने का खतरा रहता है।

8. कंपोस्ट खाद बनाने के स्थान से अकसर दुर्गंध आ सकती है। इसे कम करने के लिए सामान को नियमपूर्वक उलटना–पलटना चाहिए । चूना या बाज़ार में इस कार्य के लिए उपलब्ध कुछ रसायन डाल कर भी इस दुर्गंध को कम किया जा सकता है।

9. खाद बनाने के डिब्बे या गड्ढे का तापमान 55 से 65 °C होने पर खाद जल्दी बनती है।

10. खाद बनाने के लिए मामूली–सी नमी की भी जरूरत होती है।

दूसरों के इस्तेमाल की चीजें :

आम तौर पर हर घर में बहुत–सी चीजें ऐसी निकल जाती हैं जिनका उपयोग दूसरे जरूरतमंद लोगों द्वारा किया जा सकता है। बहुत सी संस्थाएँ इस काम में लोगों की मदद के लिए प्रयासरत रहती भी हैं, पर अकसर या तो लोगों को ऐसे प्रयासों की ठीक से जानकारी नहीं होती या फिर बहुत से लोगों को इस संस्थाओं की विश्वसनीयता पर संदेह होता है जिसके चलते ये इनकी सेवाएँ नहीं लेना चाहते।

हाँ, यह बात सही है कि कुछ स्वार्थी लोग इस तरह की संस्था के नाम पर लोगों की भावनाओं से खेलते हुए उसके सामान/पैसे का दुरुपयोग करते हैं, पर यह बात भी उतनी ही सही है कि अनेक संस्थाओं में भले कार्यकर्ता दिन–रात लग कर बड़ी ईमानदारी से इस काम को अंजाम देते है। अगर आप जरा–सा ध्यान देंगे तो ऐसे कई संस्थान हैं जो आपके इलाके में इस तरह का काम कर रहे होंगे, वे

आपको नज़र आएँगे। समाचार–पत्र, पत्रिकाओं, टीवी चैनल आदि में ऐसी संस्थाओं की जानकारी होती है या फिर इनसे जुड़े लोग आपके जाननेवालों में हो सकते हैं पर शायद आपसे उनकी इस बारे में कभी बात नहीं हुई हो। अपने इलाके में काम कर रही ऐसी कोई ईमानदार संस्था की खोज कोई ज्यादा मुश्किल काम नहीं है। बस, थोड़े से प्रयास की जरूरत है। हाँ, इनकी सेवाएँ लेने से पहले अपने स्तर पर एक बार इनकी गतिविधियों में शामिल होकर और इनके कार्यकर्ताओं से बात करके इनकी विश्वसनीयता सुनिश्चित कर लें।

अगर आपके पास कम्पयूटर या स्मार्टफोन है तो आप olx और quicker जैसी वेबसाइट का इस्तेमाल करते हुए उन चीजों को इनके माध्यम से जरूरतमंदों तक पहुँचा सकते हैं। बस, जहाँ सामान बेचने की कीमत लिखनी है, वहाँ शून्य (जीरो) या एक रुपया लिख दें। जब कोई व्यक्ति उस चीज को लेने के लिए आप से संपर्क करे, तो उससे बातचीत के आधार पर आप यह फैसला ले सकते हैं कि वह वास्तविक जरूरतमंद है या नहीं।

वैसे इस काम को करने का सबसे उत्तम तरीका तो यह है कि आप कभी–कभार जैसे महीने या दो– तीन महीने में एक बार कुछ समय निकलें और फिर या तो स्वयं या फिर मित्रों के साथ आस–पास के किसी अनाथालय, अस्पताल, वृद्धाश्रम आदि में जाएँ और वहीं तक अपनी चीजें पहुचाएँ। आप सीधे तौर पर भी यह कार्य कर सकते हैं। जैसे सर्दी के समय सड़क या खुले में जो लोग कम कपड़ों में सो रहे हैं, उन पर कपड़े डाल दें या फिर रेलवे स्टेशन या मंदिर जैसी जगह पर जा कर लोगों को खाना खिला दें।

पुनःचक्रण की व्यवस्थाः

आम तौर पर ऐसी चीजें कबाड़ी कहे जाने वाले शख्स को दी जाती हैं जो घर–घर घूम कर इन्हें इकट्ठा करता है। इस बारे में नीचे लिखी कुछ बातें इस प्रक्रिया को आसानदेह बना सकती है–

1. जो चीजें एक साथ री–साइक्लिंग(पुनर्चक्रण) होती है, उन्हें अलग–अलग ढेर में रखें– जैसे गत्ते/कागज, लोहा, प्लास्टिक,

बोतल, पीतल आदि को अलग–अलग जमा करें और उससे संबंधित व्यक्ति को बेच दें। शुरू से ही हर तरह की चीज अलग रखने से बार–बार छँटाई में होने वाले समय की बचत होती है।

2. जो चीजें पुनःचक्रित (रिसाईकिल) नहीं हो सकतीं, उन्हें अलग कर दें।

3. जो चीज आप बेचने जा रहे हैं उसका सही बाजार भाव मालूम कर लें।

4. तौलने के लिए इस्तेमाल होने वाले तराजू या मशीन की एक बार जांच कर लें। तराजू में बाँट और वजन की जाने वाली चीज के पलड़े बदल कर देख लें और मशीन का बिना–वजन के शून्य अंक की रीडिंग देख लें या फिर किसी ज्ञात वजन की वस्तु को तौल कर देख लें।

हस्तकला में उपयोग की चीजें:

घर में काम आने वाली या सजावट की बहुत सी चीजों को पुरानी और इस्तेमाल लायक न रह चुकी चीजों के हिस्सों को जोड़ कर बनाया जा सकता है। इसके लिए कोई नियम या तरीका नहीं है, बस मन में कल्पना की उड़ान से आप इस काम को अंजाम दे सकते हैं। अगर आपको इस बात पर संदेह है, तो चंडीगढ़ स्थित 'रॉक–गार्डन' को एक बार जरूर देखें या उसकी जानकारी लें जहाँ श्री नेकचंद जी ने टनों कचरे के ढेर से कई एकड़ में फैला खूबसूरत गार्डन बना डाला।

नुकसानदायक चीजें:

जो चीजें किसी दूसरे को नुकसान पहुँचा सकती हैं, उनको हमें अपने घर से बाहर ऐसे ही नहीं फेंक देना चाहिए जैसे एक्सपायर हो चुकी दवाई, पेंट या प्लास्टिक आदि। वैसे तो पहली कोशिश यह रहनी चाहिए कि हम इस तरह की चीजों का उपयोग कम से कम करें जैसे पॉलिथीन–बैग की जगह कपड़े के थैले (बैग) का इस्तेमाल करें। अगर किसी वजह से इस तरह की चीजें हमें कचरे के रूप में देनी भी पड़

रही हैं, तो इस बात की तरफ ध्यान दें कि जो कचरा आपके यहाँ से जा रहा है उसका सही रूप से निपटान किया जाएगा या नहीं। मैं मानता हूँ बहुत सी चीजें आपके बस में नहीं होंगी, पर आप एक पहल तो कर सकते हैं।

किसका काम?

इन बातों को पढ़ कर कई लोगों के मन में इस तरह के सवाल आना स्वाभाविक है—

मैं ये सब क्यों करूँ?

क्या ये मेरा काम है भी ?

इस काम के लिए तो सरकार /नगरपालिका /सोसाइटी आदि हैं, जिन्हें हम टैक्स /शुल्क भी देते हैं।

हाँ, ये बात सही है कि कचरे को आपके घर से ले जाकर उसका उचित इंतजाम करने की जिम्मेदारी किसी न किसी संस्था की होगी जिसे आप कुछ पैसे भी सीधे तौर पर या परोक्ष रूप से देते होंगे, पर क्या इसी बात से आपको इस बात का अधिकार मिल जाता है कि आप ढेर सारा कचरा रोज घर से बाहर निकालने के लिए तैयार कर दें?

जिम्मेदार नागरिकः—

यहाँ बताई छोटी—छोटी बातों का ध्यान रखने से आपके घर से निकलने वाले कचरे की मात्रा काफी कम हो जाएगी। अगर एक सौ तीस करोड़ भारतीय रोज आधा किलो कचरा कम पैदा करें तो एक दिन में हमारे देश में छह लाख पचास हज़ार टन और साल में चौबीस करोड़ टन कचरा कम पैदा होगा और इस पर होने वाला खर्च भी बचेगा। शायद ये पैसा किसी और काम में आ जाए। हम कितना कचरा अपने कचरे—दान में डालते हैं यह हमारा अपना व्यक्तिगत फैसला है। एक जिम्मेदार नागरिक की तरह हम इसकी मात्रा कम करके देश की तरक्की में योगदान कर सकते हैं।

पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान : एक विमर्श

राहुल शर्मा 'अस्त्र'

"प्रकृति परमात्मा की उत्कृष्ट कृति है और प्रकृति की अनुपम देन है पर्यावरण"

वर्तमान समय में जब संपूर्ण विश्व में पर्यावरण की वर्तमान एवं भविष्य की चिंताओं पर विमर्श हो रहा है तो इसी क्रम में भारतीय सनातन संस्कृति में पर्यावरण चेतना को समझने का प्रयास प्रासंगिक होगा क्योंकि समृद्ध भारतीय अतीत की विशेषताएँ पर्यावरणीय समस्याओं का हल प्रस्तुत करने में सर्वदा समर्थ हैं।

विडंबना यह है कि पिछले लगभग सौ–डेढ़ सौ वर्षों से ही विभिन्न वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों तथा राजनेताओं का ध्यान पर्यावरण विमर्श पर गया है। जबकि भारतीय वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में प्रकृति, पर्यावरण, जल, वृक्ष एवं वनस्पति आदि को संरक्षित करने की बातें स्पष्ट रूप से कही गई हैं। जीवन और पर्यावरण का अनन्य संबंध है। भारत सरकार के पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 (1986 का अधिनियम संख्यांक 29) के अनुसार– 'पर्यावरण' के अंतर्गत जल, वायु और भूमि हैं और वह अंतर्संबंध है जो जल, वायु और भूमि तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और सूक्ष्मजीव और संपत्ति के बीच विद्यमान है। पर्यावरण संरक्षण की दिशा में इस अधिनियम के उपबंध भारतीय पर्यावरण चिंतनधारा से प्रेरित तथा समीचीन है। वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति और जगत् का विकास ही पर्यावरण का प्रादुर्भाव है। सृष्टि तथा पर्यावरण का प्रयोजन एक ही है। इसीलिए वैदिक काल से ही मानव पर्यावरण के प्रति जागरूक रहा है ताकि मानव दीर्घायु, सुस्वास्थ्य, जीवन–शक्ति, पशु, कीर्ति, धन एवं विज्ञान को प्राप्त कर सके। पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही

सुख शांति का आधार है। इस प्रकार पर्यावरण के हर घटक के शांत एवं सौम्य रहने पर ही विश्व–शांति की कामना वैदिक ऋषियों ने की है। उन्होंने अत्यंत गहनता से विचार कर पर्यावरण को मानव जीवन में विराट स्वरूप प्रदान किया है। पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान् योगदान एवं भूमिका को स्वीकार करते हुए मुनियों ने बृहत् चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में उनके महत्व एवं माहात्म्य को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्रः। दशह्रद समः पुत्रो, दशपुत्रो समो द्रुमः। अर्थात् दस कुंओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।

पृथ्वी पर जीवन तथा पर्यावरण अन्योन्याश्रित हैं। आज हमारे आसन्न पर्यावरण संकट स्पष्ट रूप से मानव की आसुरी प्रवृत्तियों का सीधा परिणाम है। पर्यावरण संकट के मूल में कुछ लोगों तथा देशों की आधिपत्य जमाने की होड़ तथा भोगविलासी जीवनशैली ही है। आज उत्पादन से लेकर उपभोग तक, भोजन से लेकर परिधान तक, सम्मान से लेकर ज्ञान–विज्ञान तक, विकास से लेकर विनाश तक और समझने से लेकर विचारने तक सभी कुछ तथाकथित पाश्चात्य संस्कृति से ग्रसित है। मनुष्य जब पाप की ओर प्रवृत्त होता है तब उसका पतन और पर्यावरणीय विनाश प्रारंभ हो जाता है। विश्व एक व्यवस्था में बंधा हुआ है और यह व्यवस्था सदैव बनी रहनी चाहिए। पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार भी प्रागैतिहासिक मानव वन परंपरा में प्राकृतिक संसाधनों एवं परिवेश में अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। आखेटक, खाद्य संग्राहक एवं उत्पादक होने तक उसका साथ प्रकृति के साथ बना रहा। पाषाणयुगीन मानव ने उन्मुक्त एवं जल स्रोत के सन्निकट स्थित प्राकृतिक शिलाश्रयों को अपना आवास गृह बनाया। वह वन्योत्पादों का संग्रह कर अपना जीवन–यापन करता था। तापमान वृद्धि के परिणामस्वरूप मध्य पाषाण काल में हिमनदों के पिघलने से नदियों के जलस्तर में वृद्धि के कारण जल

स्रोत एवं वनस्पतियों के द्वारा मानव जीवन में नूतन संभावनाओं तथा चुनौतियों का प्रादुर्भाव हुआ। नवपाषाण काल तक वह संग्राहक से उत्पादक बन गया। इस स्थिति में मानव कृषि में संलग्न होकर जलवायु एवं पर्यावरण का ज्ञान प्राप्त कर पूर्व की अपेक्षा अधिक संवेदनशील एवं विवेकशील हो गया।

भारतीय संस्कृति पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण तथा सकारात्मक भूमिका रखती है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही पर्यावरण के साथ जीवन–यापन की परंपरा रही है। संस्कृति तथा विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ संस्कृति मानव–हृदय को परोपकार, समाज सेवा, सहयोग, सहानुभूति आदि गुण प्रदान करती है, वहीं विज्ञान मानव को शारीरिक और मानसिक रूप से सुदृढ़ करता है। भारतीय शास्त्रों में पेड़–पौधों, पुष्पों, पर्वतों, झरनों, मृदा तथा पाषाणों को भी पूज्य बताया गया है और उनके प्रति स्नेह तथा सम्मान की बात कही गई है। भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन हेतु त्यागमयी प्रवृत्ति को आवश्यक कहा गया है।

भारतीय संस्कृति पर्यावरण–संरक्षण संबंधी चुनौतियों के सटीक समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम है। वैदिक समाज में पर्यावरण के विभिन्न पक्षों पर सूक्ष्म दृष्टि रही है तथा उसकी रक्षा और महत्व को स्पष्ट भी किया गया है। भारतीय ऋषियों ने पृथ्वी एवं प्रकृति के माता रूप को प्रतिपादित किया – 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या।' भारतीय संस्कृति में वृक्षों को भी देवता के समान माना गया तथा पीपल, नीम, तुलसी आदि के वृक्ष को पर्यावरण को संरक्षण एवं संवर्धन हेतु उपयोगी बताया गया है। उनके काटने पर नैतिक प्रतिबंध लगाए गए और उन्हें "सर्वकाम फलाः वृक्षाः" कहा गया। वहीं वृक्षों को काटना अपराध मानकर इसके लिए दंड विधान भी किया गया। जल संरक्षण हेतु नदियों को देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर उन्हें मुक्तिप्रदाता कहा गया है। ऊँ ईशा वास्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।। अर्थात् संपूर्ण जगत के कण–कण में ईश्वर विद्यमान हैं। सभी कुछ ईश्वर के द्वारा बनाया गया है। इससे

उसका उपयोग त्याग की भावना से करें। ईश्वर रूपी भाव होने से संपूर्ण सृष्टि पूज्य है। वेदों में पर्यावरण संरक्षण के अंतर्गत वायु, जल, ध्वनि, वृक्ष, पशु–पक्षी आदि के संरक्षण के लिए विशेष बल दिया गया है। प्राणी जगत के लिए पर्यावरण रक्षा हेतु वायु की स्वच्छता का स्थान प्रथम है। प्राण वायु के अभाव में जीवन असंभव है, यजुर्वेद के अनुसार शुद्ध वायु भेषज गुणों से युक्त है, जो समस्त प्रकार की व्याधियों को दूर करती है। शुद्ध जल दीर्घायुष्य प्रदाता, प्राणों का रक्षक तथा कल्याणकारी है। जल मुखमंडल के लिए सौंदर्य, कोमलता एवं कांतिवर्धक औषधि है।

भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथों जैसे रामायण, महाभारत आदि में भी पर्यावरण अत्यंत सरल और जीवंत रूप में दृष्टिगोचर होता है। ऋषि मुनियों के आश्रम में रहने वालों का जीवन वास्तव में 'वसुधैव कुटुंबकम्' के सिद्धांत से संचालित होता है। वैदिक मनुष्य समस्त प्राकृतिक शक्तियों को साक्षात देवता या देव–प्रतिनिधि मानकर उनकी उपासना करते रहे हैं। सनातन संस्कृति के अधिकांश तीर्थ स्थल नदियों के तटों, वन–पर्वतों आदि पर स्थित हैं। सनातन तीर्थों का आध्यात्मिक के साथ–साथ पर्यावरणीय महत्व है तथा इनमें गहन संबंध है। सनातन संस्कृति के अनुसार, जीवन पाँच तत्त्वों– पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु से मिलकर बना है। सनातन संस्कृति में पृथ्वी देवी रूप में पूजित है तथा इसके विभिन्न अवयवों अर्थात् – पर्वत, नदी, जंगल, तालाब, वृक्ष, पशु–पक्षी आदि सभी को दैवीय कथाओं व ऐतिहासिक ग्रंथों में उचित स्थान दिया गया है।

सनातन संस्कृति में कर्म की प्रधानता पर बल दिया जाता है और व्यक्ति के कर्मों का प्रभाव प्रकृति पर भी पड़ता है। अतः मानव जाति को प्रकृति तथा उसके विभिन्न जीवों की रक्षा करनी चाहिए। सनातन संस्कृति के पुनर्जन्म सिद्धांत के अनुसार, मृत्यु के उपरांत कोई व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार पृथ्वी पर किसी भी जीव के रूप में उत्पन्न हो सकता है। अतः सभी प्रकार की वनस्पति तथा जीवों के प्रति अहिंसा

का भाव सर्वोपरि तथा अनिवार्य है। भगवद् गीता में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कहा गया है "अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव च।" अर्थात् अहिंसा मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है– और धर्म रक्षार्थ हिंसा भी उसी प्रकार श्रेष्ठ है।

सनातन संस्कृति के साहित्य में प्रकृति संरक्षण से संबंधित अनेकों विषयों पर गहन चिंतन किया गया है। जैसे– वर्षा को ध्यान में रखकर कृषक को उचित समय पर कृषि करनी चाहिए। भारतीय साहित्य में जल संरक्षण पर भी विचार किया गया है। महर्षि वेदव्यास द्वारा जल के महत्व के साथ–साथ जल संरक्षण और जल संचयन का उल्लेख किया गया है। जल ही जीवन का आधार है। अतः मनुष्य को चाहिए कि पोखरा नहर आदि खुदवा कर उसमें वर्षा का जल संग्रहित करे, नदियों जलाशयों में कचरा न फंके और इन्हें संदूषित व विषैला न करे। आज विश्व के सभी देश प्रकृति संरक्षण करने की बात कहते हैं और अपने देशों में इससे संबंधित विधिक व्यवस्था बनाते हैं। वर्तमान समय में यदि प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण न किया गया तो पृथ्वी पर जीवन ही समाप्त हो सकता है। आज के समय में भारत ही नहीं, विश्व के कई देशों में पेय जल संकट रूपी विकट समस्या है। भूमिगत जल स्तर बहुत नीचे जा रहा है तथा नदियों का संदूषित जल पीने योग्य नहीं है। 'दूषित जल से स्नान करना, कपड़े धोना, बर्तन धोना, आदि वर्जित है।' जैसे धार्मिक निर्देश वर्तमान समय में भी अत्यंत सार्थक हैं। आज इन कथनों का अनुपालन करते हुए भारत सरकार द्वारा नदियों के पुनरुद्धार, जल संरक्षण, कचरा प्रबंधन, शुद्ध पेय जल की उपलब्धता इत्यादि से संबंधित कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं। परंतु प्रत्येक नागरिक के सहयोग के बिना इन सरकारी प्रयासों के बहुत सकारात्मक परिणाम नहीं हो सकते।

वैदिक ऋषियों ने समस्त उपकारक तत्वों को देव कहकर उनके महत्व के साथ–साथ मनुष्य के जीवन में उनकी पर्यावरणीय उपयोगिता को भी प्रतिपादित किया है। इन देवरूपी तत्वों के उपकारों के लिए मनुष्य का जीवन इनका ऋणी है और शास्त्र ने मनुष्य को पितृऋण

और ऋषिऋण के साथ–साथ देवऋण से भी मुक्त होने के लिए प्रेरित किया है। ऋषियों ने मनुष्य जीवन के लिए मर्यादाएँ स्थापित की हैं। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें सूर्य, वायु, वरुण एवं अग्नि आदि देवताओं से रक्षा करने की प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना स्पष्ट रूप से उल्लिखित है।

महाभारत में विभिन्न प्रकार के धान्यों का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है। इस संदर्भ में महर्षि व्यास द्वारा शुकदेव के प्रति वानप्रस्थ आश्रम की महिमा के वर्णन के प्रसंग में धान, जौ, नीवार आदि अन्न का उल्लेख किया गया है। इस संदर्भ में अनुशासन पर्व में राजा कुशिक तथा उनकी पत्नी द्वारा महर्षि च्यवन की सेवा में नाना प्रकार के अन्नों, फलों आदि द्वारा निर्मित व्यंजन लाए जाने का उल्लेख मिलता है। इसी संदर्भ में शांति पर्व में अहिंसा की प्रशंसा करते हुए नारद मुनि द्वारा सांवा चावल, सूर्यपर्णी तथा शाक आदि का उल्लेख किया गया है। महाभारत शांति पर्व में भीष्म द्वारा कहा गया है कि मनुष्य को भोजन के अन्न में से बीज को संरक्षित कर लेना चाहिए, यह आपदा के समय में उबारता है। महर्षि व्यास द्वारा भी कहा गया है कि बीज से बीज की उत्पत्ति होती है। इस समस्त विवरण से पता चलता है कि महाभारत काल में कृषि प्रक्रिया अत्यंत विकसित थी तथा इससे विभिन्न प्रकार के धान्य प्राप्त किए जाते थे।

प्राकृतिक शक्तियों में देवी स्वरूप की अवधारणा यह इंगित करती है कि हम इनकी रक्षा करें, इनसे अनुराग रखें और स्वस्थ, संतुलित जीवन–यापन करते हुए पर्यावरण की यथाशक्ति रक्षा करें। उक्त बिंदुओं को यदि नैतिकता–अनैतिकता की सीमा–रेखा में न भी बांधें तो भी ये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के संवाहक हैं। भारतीय चिंतन–धारा की यही प्रमुख विशेषता है, जो इस प्रदूषण–अभिशप्त समय में उस गौरवशाली अतीत की बार–बार याद दिलाती है। प्राणी जिस पर बसते और जीवन पाते हैं, पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग वह भूमि निश्चय ही अतिशय उपयोगी एवं वंदनीय है।

इसीलिए पृथ्वी को माता कहकर नमन करने का संकेत वेदमंत्रों में है। वेदों में सर्वप्रथम भूमि को संस्कारवान बनाने के लिए कहा गया है। भूमि और अन्न को प्रदूषण रहित रखने के लिए मलिन अथवा विषयुक्त खाद डालकर उसे बिगाड़ने के प्रति निषेध किया गया है। यजुर्वेद में यह कामना करते हुए संदेश दिया गया है कि भूमि को अपने दुष्कर्मों से न बिगाड़ें, उसको प्रदूषित करना उसके प्रति हिंसा है। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि सबका पालन करने वाली भूमि की उपजाऊ शक्ति को नष्ट न होने दें। भूमिसूक्त के ऋषि प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि यज्ञ भूमि में देवताओं के लिए हम अलंकृत हव्य प्रदान करें। वह भूमि हमें वृद्धावस्था तक प्राणप्रद वायु प्रदान करे। पृथ्वी की गोद हमारे लिए निरोगी और सब कष्टों से रहित हो। दीर्घकाल तक जीते हुए हम अपने जीवन को इसकी सेवा में लगाएँ। भूमिसूक्त के ऋषि हमें बताते हैं कि निवास योग्य तथा विभिन्न कार्यों में प्रयोग होने वाली भूमि का संरक्षण करने से वह सुखद होती है। हे भूमि, तुम्हारी पहाड़ियाँ, हिमाच्छादित पर्वत, वन, पुष्टि देने वाली भूरे रंग की मिट्टी, कृषि–योग्य काली मिट्टी, उपजाऊ लाल रंग की मिट्टी, अनेक रूपों वाली, सबका आश्रय स्थान, स्थिर भूमि पर अजेय, अवध्य और अक्षत रहकर हम निवास करें। वेदों में मनुष्य को समृद्ध बनाने वाली उर्वरा भूमि के लिए कृषकों एवं वैज्ञानिकों को प्रेरणा दी गई है कि वे भूमि की उर्वरा–शक्ति बनाए रखने के लिए पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले खाद के स्थान पर, प्राकृतिक खाद प्रयुक्त कर खेती को उत्तम फलवती, मधुर अन्न उत्पन्न करने वाली बनाएं। बार–बार बुआई से भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होने की ओर भी संकेत कर उसके तेज को बढ़ाए जाने के विषय में भी कहा गया है। यजुर्वेद में हल बैलों द्वारा खेतों को जोतकर, उत्तम अन्नों के बीज बोने का निर्देश दिया गया है। खेतों में गोबर–खाद डालें और विष्ठा आदि मलिन पदार्थ न डालने के लिए कहा गया है। बीजों को सुगंध आदि से उपचारित करके बोएँ, ताकि अन्न भी रोगरहित होकर मनुष्य की बुद्धि को बढ़ाए। वहाँ निर्देश दिया गया है कि खेतों को घी, शहद या शक्कर, और जल आदि से

संस्कारित करें। प्रदूषण रहित कृषि ही राष्ट्रनिवासियों को बलवान बनाती है। पर्यावरण तथा प्राणियों की रक्षा पृथ्वी में हरियाली के माध्यम से होती है तथा भूमि भी पेड़–पौधों की हरियाली से सुरक्षित रहती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को भूमि को प्रदूषण से बचाए रखने के लिए हरियाली के प्रभाव को समझकर, सघन वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाकर, पृथ्वी पर हरियाली बढ़ाने का हरसंभव प्रयास करना चाहिए। यही कारण है कि हमारे ज्ञानी मनीषियों ने वृक्षों एवं वनों की रक्षा करने वालों का विशेष सम्मान करने तथा उन्हें सतत् अन्न–धन देते रहने का संदेश दिया है।

उपसंहार :

स्पष्ट रूप से भारतीय संस्कृति में अत्यंत प्राचीन काल से ही मानव के समग्र विकास में पर्यावरण एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्वीकृत रहा है। वैदिक काल से ही मानव के समस्त सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि क्रिया–कलापों में धर्म, नैतिकता एवं पर्यावरण का अनिवार्य स्थान रहा है जिसने मनुष्य को उचित तथा नैतिक जीवन मूल्य एवं जीवन पद्धति प्रदान की है। सनातन धार्मिक ग्रंथ पेड़–पौधों, जीव–जंतुओं पर दया करने की शिक्षा देते हैं। यदि ध्यानपूर्वक इन शास्त्रों के वचनों को समझा जाए तो मानव जीवन से इनका अभिन्न संबंध है। मानसिक तथा शारीरिक सुख–शांति की पूर्ति के समस्त साधन प्रकृति और पर्यावरण में ही निहित है। पर्यावरण के विभिन्न घटकों जैसे वायु, जल, मृदा, वनस्पति, जीव–जंतु आदि के प्रति हमारा व्यवहार ही हमारे जीवन की दिशा निर्धारित करता है।

अतः आज आवश्यकता है कि हमारे पूर्वजों द्वारा प्रदत्त पर्यावरण संबंधी अनुदेशों को सभी लोगों तथा देशों द्वारा अपनाया जाए ताकि पुनः यह जीवनदायिनी वसुंधरा अपने स्वच्छ तथा निर्मल पर्यावरण में पुनः में श्वास ले सके।

गंगा की अविरलता को अवरुद्ध करतीं लुप्त होतीं हिमालय की जलधाराएँ

प्रमोद भार्गव

हिमालय से निकलने वाली 60 प्रतिशत जलधाराएँ सूखने की कगार पर हैं। इनमें गंगा और ब्रह्मपुत्र जैसी बड़ी नदियों की जलधाराएँ भी शामिल हैं। इन और हिमालय से निकलने वाली तमाम नदियों की अविरलता इन्हीं जलधाराओं से प्रवहमान रहती हैं। इन जलधाराओं की स्थिति इस हाल में आ गई है कि अब इनमें केवल बरसाती मौसम में पानी आता है। यह जानकारी नीति आयोग के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा जल–संरक्षण के लिए तैयार की गई एक रिपोर्ट में सामने आई है। रिपोर्ट के मुताबिक भारत के मुकुट कहे जाने वाले हिमालय के अलग–अलग क्षेत्रों से पचास लाख से भी अधिक जलधाराएँ निकलती हैं। इनमें से करीब 30 लाख केवल भारतीय हिमालय क्षेत्र से ही निकलती हैं। हिमालय की इन धाराओं में हिमखंडों के पिघलने, हिमनदों का जल–स्तर बढ़ने और मौसम में होने वाले बदलावों से पानी बना रहता है। यह हाल इसलिए हुआ क्योंकि हम हिमालय में नदियों के मूल स्रोतों को औद्योगिक हित साधने के लिए निचोड़ने में लगे हुए हैं। इन धाराओं को निचोड़ने का काम बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बड़ी मात्रा में कर रही हैं। यदि इन धाराओं के अस्तित्व को पुनर्जीवित करने के ठोस उपाय सामने नहीं आते हैं, तो गंगा और ब्रह्मपुत्र ही नहीं, हिमालय से निकलने वाली उत्तर से लेकर पूर्वोत्तर तक भारत की अनेक नदियों का अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा।

अस्तु, इन जलधाराओं के सिकुड़ने के कारणों में जलवायु परिवर्तन के कारण घटते हिमखंड, पानी की बढ़ती माँग, पेड़ कटने की वजह से पहाड़ी भूमि में हो रहे बदलाव, धरती की अंदरूनी प्लेट्स का खिसकना और जलविद्युत परियोजनाओं के लिए हिमालय में मौजूद

नदियों और जलधाराओं का दोहन करना प्रमुख वजहें हैं। अकेले उत्तराखंड में गंगा की विभिन्न धाराओं पर 1 लाख 30 हजार करोड़ की जलविद्युत परियोजना बनाई जानी प्रस्तावित है। इनमें से अनेक निर्माणाधीन हैं।

यही वजह है कि अब गंगा की सहायक नदी भागीरथी पर निर्माणाधीन लोहारी–नागपाला परियोजना को फिर से शुरू करने की हलचल बढ़ गई है।

जल विद्युत परियोजनाओं के लिए जो विस्फोट किए गए, उनसे जहाँ हिमखंडों से ढकी चट्टानें टूटीं, वहीं ग्लेशियर भी टूटे, उनकी मोटाई भी घटी और ये अपने मूल स्थानों से भी खिसकने लग गए। राष्ट्रीय नदी गंगा के उद्गम स्थल गोमुख के आकार में भी बदलाव देखा गया। हिमालय भू–विज्ञान संस्थान की एक अध्ययन रिपोर्ट के मुताबिक गंगा नदी के पानी का मुख्य स्रोत गंगोत्री हिमखंड तेजी से पीछे खिसक रहा है। पीछे खिसकने की यह दर उत्तराखंड के अन्य ग्लेशियरों की तुलना में दोगुनी है। अन्य ग्लेशियर जहाँ वार्षिक औसतन 10 मीटर की दर से पीछे खिसक रहे हैं, वहीं गंगोत्री हिमखंड की दर 22 मीटर है। इस राज्य में कुल 968 हिमखंड हैं और सभी पीछे खिसक रहे हैं। केदारनाथ त्रासदी का कारण भी गंगोत्री डुकरानी, चौरावाड़ी और दूनागिरी ग्लेशियर बने थे। ये हिमखंड पीछे खिसकने के साथ पतले भी होते जा रहे हैं। इनकी सतह 32 से 80 सेंटीमीटर प्रतिवर्ष की दर से कम हो रही है। हिमनद विशेषज्ञ डॉ. डी.पी. डोभाल के अनुसार हिमनद पीछे खिसकने की रफ्तार जितनी अधिक होगी, इनकी मोटाई भी उसी रफ्तार से घट जाएगी।

यदि इन जलधाराओं के संरक्षण के उपाय समय रहते नहीं किए गए तो 12 राज्यों के पाँच करोड़ लोग प्रभावित होंगे। इन राज्यों में जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, असम, पश्चिम बंगाल, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा शामिल हैं। यहाँ के लोगों को पीने के पानी से लेकर रोजमर्रा

की जरूरतों का पानी भी इन्हीं जलधाराओं से मिलता है। पहाड़ों पर सीढ़ीनुमा खेत बनाकर जो खेती होती है, उनमें सिंचाई का स्रोत भी यही धाराएँ होती हैं। सूखती जलधाराएँ समाज में बढ़ती जटिलताओं और उसके समक्ष भविष्य में आने वाले पर्यावरणीय बदलाव एक चेतावनी हैं। हकीकत तो यह है कि ग्रामीणों की बजाय, विकसित और जटिल होता समाज पर्यावरण को अधिक क्षति पहुँचा रहा है। इस जटिलता के पीछे वह कथित विकास है, जिसके तहत औद्योगिक गतिविधियों को बेलगाम बढ़ावा दिया जा रहा है। साथ ही बढ़ता शहरीकरण और पहाड़ों को पर्यटन के लिए आधुनिक ढंग से विकसित किया जाना भी है। यह विडंबना ही है कि जो मनुष्य प्रकृति का सबसे अधिक विनाश कर रहा है, वही उसे बचाने के लिए सर्वाधिक प्रयास भी कर रहा है। सरकार और समाज के सामने विरोधाभासी पहलू यह है कि उसे ऊर्जा भी चाहिए और नदी एवं पहाड़ भी, उसे वनों से आच्छादित धरती भी चाहिए और उस पर उछलकूद करते वन्य प्राणी भी चाहिए। इनके साथ वे खदानें भी चाहिए जो मनुष्य जीवन को सुख और सुविधा से जोड़ने के साथ भोगी भी बनाती हैं। गोया, प्रकृति और विकास के बीच बढ़ते इस द्वंद्व से समन्वय बिठाने के सार्थक उपाय नहीं होंगे तो पर्यावरणीय क्षतियां रुकने वाली नहीं हैं।

इन पर अंकुश लगे, ऐसा फिलहाल सरकारी स्तर पर दिख नहीं रहा है। जिस नीति आयोग ने इन जलधाराओं के सूखने की रिपोर्ट दी है वह भी तत्काल जल–संरक्षण के ऐसे कोई उपाय नहीं सुझा रहा है, जिससे धाराओं की अविरलता बनी रहे। आयोग का सुझाव है कि इस समस्या से निपटने के लिए पहले तीन चरणों में एक योजना तैयार की जाएगी। इसमें पहली योजना लघु होगी जिसके तहत जलधाराओं की समीक्षा होगी। दूसरी मध्यम योजना होगी जिसके अंतर्गत इनके प्रबंधन की रूपरेखा बनाई जाएगी। तीसरी योजना दीर्घकालिक होगी जिसके तहत जो रूपरेखा बनेगी, उसे मौके पर क्रियान्वित किया जाएगा और परिणाम भी निकलें, ऐसे उपाय किए

जाएँगे। यह साफ है कि निकट भविष्य में केवल कागजी खानापूर्ति की जा रही है जबकि तत्काल धाराओं के संरक्षण के लिए औद्योगिक एवं पर्यटन संबंधी उपायों पर अंकुश लगाने की जरूरत है।

कुछ ऐसे ही कागजी उपायों के चलते आज तक गंगा की सफाई तमाम योजनाएँ लागू करने के बावजूद नहीं हो पाई हैं। गंगा सफाई की पहली बड़ी पहल राजीव गांधी के प्रधानमंत्रित्व कार्यकाल में हुई थी। तब शुरू हुए गंगा स्वच्छता कार्यक्रम पर हजारों करोड़ रुपए पानी में बहा दिए गए, लेकिन गंगा नाममात्र भी शुद्ध नहीं हुई। इसके बाद गंगा को प्रदूषण के अभिशाप से मुक्ति के लिए संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार ने इसे राष्ट्रीय नदी घोषित करते हुए गंगा बेसिन प्राधिकरण का गठन किया, लेकिन हालात जस के तस रहे। भ्रष्टाचार, अनियमितता, अमल में शिथिलता और जवाबदेही की कमी ने इन योजनाओं को दीमक की तरह चट कर दिया।

'नमामि गंगे' की शुरुआत गंगा किनारे वाले पाँच राज्यों में 231 परियोजनाओं की आधारशिला प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 1500 करोड़ के बजट प्रावधान के साथ 104 स्थानों पर 2016 में रखी थी। इतनी बड़ी परियोजना इससे पहले देश या दुनिया में कहीं शुरू हुई हो, इसकी जानकारी मिलना असंभव है। इनमें उत्तराखंड में 47, उत्तर–प्रदेश में 112, बिहार में 26, झारखंड में 19 और पश्चिम बंगाल में 20 परियोजनाएँ क्रियान्वित होनी थीं। हरियाणा व दिल्ली में भी 7 योजनाएं गंगा की सहायक नदियों पर लागू होनी थीं। अभियान में शामिल परियोजनाओं को सरसरी निगाह से दो भागों में बाँट सकते हैं। पहली, गंगा को प्रदूषण मुक्त करने व बचाने की। दूसरी गंगा से जुड़े विकास कार्यों की। गंगा को प्रदूषित करने के कारणों में मुख्य रूप से जल–मल और औद्योगिक ठोस व तरल अपशिष्टों को गिराया जाना है। जल–मल से छुटकारे के लिए अधिकतम क्षमता वाले जगह–जगह सीवेज संयंत्र लगाए जाने थे। गंगा के किनारे आबाद 400 ग्रामों में 'गंगा–ग्राम' नाम से उत्तम प्रबंधन योजनाएँ शुरू होनी थीं। इन सभी गाँवों में गड्ढ़े युक्त शौचालय बनाए जाने थे। सभी

ग्रामों के श्मशान घाटों पर ऐसी व्यवस्था होनी थी जिससे जले या अधजले शवों को गंगा में बहाने से छुटकारा मिले। श्मशान घाटों की मरम्मत के साथ उनका आधुनिकीकरण भी होना था। विद्युत शवदाह गृह बनने थे। इनमें से अभी तक कई कार्य पूरे नहीं हो पाए हैं।

'नमामि गंगे' परियोजना में जिन तमाम मुद्दों को छुआ गया था वे यदि शत–प्रतिशत पूरे हो जाते तो गंगा एक हद तक शुद्ध दिखने लगी होती। हकीकत तो यह है कि जब तक गंगा के तटों पर स्थापित कल–कारखानों को गंगा से कहीं बहुत दूर विस्थापित नहीं किया जाता, गंगा गंदगी से मुक्त होनी वाली नहीं है। जबकि इस योजना में कानपुर की चमड़ा टेनरियों और गंगा किनारे लगे सैकड़ों चीनी व शराब कारखानों को अन्यत्र विस्थापित करने के कोई प्रावधान ही नहीं थे। इनका समूचा विषाक्त कचरा गंगा को जहरीला तो बना ही रहा है, उसकी धारा को भी अवरुद्ध भी कर रहा है। कुछ कारखानों में प्रदूषण–रोधी संयंत्र लगे तो हैं, लेकिन वे कितने चालू रहते हैं, इसकी जवाबदेही सुनिश्चित नहीं है। इन्हें चलाने की बाध्यकारी शर्त की परियोजना में अनदेखी की गई है। हालांकि नमामि गंगे में प्रावधान है कि जगह–जगह 113 'वास्तविक समय जल गुणवत्ता मापक मूल्यांकन केंद्र' बनाए जाएँगे, जो जल की शुद्धता को मापने का काम करेंगे। लेकिन जब गंदगी व प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों को ही नहीं हटाया जाएगा तो भला केंद्र क्या कर लेंगे ? गंगा की धारा के उद्गम स्थलों को जल विद्युत परियोजनाएँ अवरुद्ध कर रही हैं। यदि प्रस्तावित सभी परियोजनाएं वजूद में आ जाती हैं तो गंगा और हिमालय से निकलने वाली गंगा की सहायक नदियों का जल पहाड़ से नीचे उतरने से पहले ही सूख जाएगा। तब गंगा अविरल कैसे बहेगी ? पर्यावरणविद् भी मानते हैं कि गंगा की प्रदूषण मुक्ति को गंगा की अविरलता के तकाजे से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

गंगा अपने उद्गम स्रोत गंगोत्री से ढाई हजार किमी. की यात्रा करती हुई गंगासागर में समाती है। इस बीच करीब एक हजार

छोटी–बड़ी नदियाँ गंगा में विलीन हो जाती हैं। गोया, बनारस आते–आते गंगा इतनी मैली और प्रदूषित हो जाती है कि इसमें विचित्र तत्वों के घालमेल से ऐसे सूक्ष्मजीव पनप जाते हैं, जो मनुष्य के लिए जानलेवा हैं। गंगा का उद्धार कर शुद्धिकरण की अनेक कोशिशें हो चुकी हैं। बनारस व प्रयाग के साधु–संत भी कई मर्तबा हुंकार भर चुके हैं, लेकिन परिणाम ढाक के तीन पात ही रहे। इसी साल जनवरी में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भी पूर्वांचल के जन–समुदाय से जुड़ने के लिए गंगा सफाई की बड़ी योजना बनाई थी जिसके नेतृत्व की जवाबदेही साध्वी उमा भारती को सौंपी गई थी। क्योंकि धर्म, मोक्ष और हिंदू सनातन संस्कृति व सभ्यता की स्थापना व विस्तार का पर्याय रही गंगा जनता से जुड़ाव का महत्वपूर्ण माध्यम है। वैसे भी देश के ऐतिहासिक मंदिर और प्रमुख तीर्थस्थल नदियों के किनारे हैं।

दरअसल नरेंद्र मोदी गुजरात की साबरमती नदी की तर्ज पर गंगा का उद्धार करना चाहते हैं। इस नदी का कायाकल्प नरेंद्र मोदी जी के गुजरात में मुख्यमंत्री रहते हुए संभव हुआ था। इस उद्धार के बाद साबरमती का निखरा स्वरूप वाकई नयनाभिराम है। इस सफलता को अब विकसित देशों की परियोजनाओं के समतुल्य माना जा रहा है। अहमदाबाद आते–आते एक समय साबरमती दम तोड़ देती थी। इसे विलुप्त हो चुकी नदी कहा जाने लगा था, लेकिन अब इसके परिवर्तित रूप की तुलना लंदन की टेम्स नदी से की जा रही है। इस स्वप्न को साकार करने का काम नदी सफाई अभियान के तहत 1152 करोड़ रुपए की लागत से हुआ है। इस महानगर के बीच साढ़े दस किमी. लंबी इस नदी के कायाकल्प का परिणाम है कि नदी लबालब भरी तो रहती ही है, इसका जल स्वच्छ व निर्मल भी है। अब यहाँ सैलानियों को लुभाने के लिए नौकायन की बेहतर आधुनिक सुविधा है। मनोरंजन पार्क, वाटर स्पोर्टस, फ्लोटिंग रेस्तरां, कन्वेंशन सेंटर और पार्किंग की सुविधाएँ भी हैं। जाहिर है, निश्चित रूप से यह एक ऐसी अनूठी योजना है जिसने एक नदी के उद्धार को अंजाम तक पहुँचाया है।

यह कायापलट कोई एकाएक नहीं हो गया था। इसे पूरा करने में नौ साल लगे थे। सबसे पहले नदी के किनारों पर बसी बस्तियों का संतोषजनक पुनर्वास कराया गया। नदी में मल–मूत्र का प्रवाह स्थायी रूप से रोकने के लिए इसके दोनों किनारों पर पाइप लाइनें बिछाई गईं। साथ ही उच्च गुणवत्ता के मल शोधन संयंत्र लगाए गए। सबसे बड़ी चुनौती साबरमती में जल भरने की थी। इस लक्ष्य की पूर्ति नर्मदा नहर और वासणा बाँध से की गई जिससे हर वक्त नदी में उज्ज्वल जल का प्रवाह बना रहे। धन की आपूर्ति अहमदाबाद महानगर पालिका ने ऋण लेकर की थी।

साबरमती की तुलना में गंगा एक बड़ी नदी है। उसमें एक हजार छोटी–बड़ी नदियाँ आकर मिलती हैं। जाहिर है उनकी गंदगी भी गंगा में समाती है। कानपुर के आसपास 400 ऐसे चमड़ा उद्योग हैं जिनके चर्म शोधक संयंत्रों से करोड़ों लीटर दूषित जल गंगा को मैला करने का काम करता है। बनारस आते–आते गंगा में दूसरी बड़ी दूषित नदी यमुना भी विलीन हो जाती है। तय है, बनारस में गंगा गंदगी की चरम स्थिति को प्राप्त हो जाती है। गंगा के अविरल प्रवाह में बड़ी बाधा उत्तराखंड में किया जा रहा वह आधुनिक विकास है जिसने गंगा नदी को यमुना की तरह तिल–तिल मरने को विवश कर दिया है। गोमुख से अवतरित होने के बाद गंगा जल को टिहरी पर ही 75 किमी जलग्रहण क्षेत्र का विशाल बाँध बनाकर अवरुद्ध कर दिया गया है।

अमेरिका की एक राष्ट्रीय खुफिया रिपोर्ट पर गौर करें तो गंगा, सिंधु एवं ब्रह्मपुत्र नदी घाटियों को अगले एक दशक में जल टकरावों के संदर्भ में वैश्विक स्तर पर उभरने वाले दस सबसे बड़े क्षेत्रों में गिना जाएगा। हालांकि रिपोर्ट के मुताबिक पानी को लेकर युद्ध की आशंका बहुत कम है, किंतु पानी की कमी के कारण विश्व खाद्य बाजार में खींचतान हो सकती है। यह वजह कई देशों में परस्पर टकराव का कारण भी बन सकती है। वाराणसी में गंगा का प्रवाह सात

किमी. है। एक समय बृहद् बनारस क्षेत्र में बारहमासी वरणा, असी, किरणा और धूतपापा नदियाँ गंगा में मिलकर इसके जल को प्राकृतिक रूप से प्रांजल बनाए रखने का काम भी करती थीं। इसके अलावा ब्रह्मनाल, मंदाकिनी और मत्स्योदरी बरसाती नदियाँ भी गंगा के जल प्रवाह को गतिशील बनाए रखती थीं किंतु अब ये सब नदियाँ नालों–परनालों में तब्दील होकर अपना अस्तित्व खो चुकी हैं। इनके व अन्य 23 नालों के जरिये ही गंगा में 300 मिलियन लीटर से ज्यादा मल–मूत्र प्रवाहित हो रहा है। इन वजहों से गंगा जल में हानिकारक जीवाणु–विषाणुओं की भरमार हो गई है। पेयजल में बायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमांड का मानक तीन मिलीग्राम प्रति लीटर होना चाहिए, जो बनारस की गंगा में 5 से 8 मिलीग्राम प्रति लीटर है। तय है, गंगा में बड़ी मात्रा में जहर बह रहा है। जाहिर है नदी का इस स्तर पर खराब हुआ स्वास्थ्य मनुष्य जाति को भी स्वस्थ नहीं रहने देगा। यदि हिमालय से निकलने वाली जलधाराएँ अक्षुण्ण रहेंगी, तो गंगा का प्रवाह भी निर्मल और अविरल रहेगा।

मैं शांत होने करने के लिए प्रकृति के पास जाता हूँ।
– जॉन बरोज़

आखिर क्यों पूजते हैं हम जीव–जंतुओं को

पंकज चतुर्वेदी

प्रकृति ने धरती पर इंसान, वनस्पति और जीव–जंतुओं को जीने का समान अधिकार दिया, लेकिन इंसान ने भौतिक सुखों की लिप्सा में खुद को श्रेष्ठ मान लिया और प्रकृति की प्रत्येक देन पर अपना अधिक अधिकार हथिया लिया। यह सही है कि जीव–जंतु या वनस्पति अपने साथ हुए अन्याय का तो प्रतिरोध कर सकते हैं और न ही अपना दर्द कह पाते हैं। परंतु इस भेदभाव का बदला खुद प्रकृति ने लेना शुरू कर दिया। आज पर्यावरण संकट का जो चरम रूप सामने दिख रहा है, उसका मूल कारण इंसान द्वारा नैसर्गिकता में उपजाया गया असमान संतुलन ही है। परिणाम सामने है कि अब धरती पर अस्तित्व का संकट है। समझना जरूरी है कि जिस दिन खाद्य श्रृंखला टूट जाएगी, धरती से जीवन की डोर भी टूट जाएगी। समूची खाद्य श्रृंखला का उत्पादन व उपभोग बेहद नियोजित प्रक्रिया है। जंगल बहुत विशाल तो उससे मिलने वाली हरियाली पर जीवन–यापन करने वाले उससे कम तो हरियाली खाने वाले जानवरों को मारकर खाने वाले उससे भी कम। हमारा आदि समाज इस चक्र से भलीभाँति परिचित था तभी वह प्रत्येक जीव को पूजता था, उसके अस्तित्व की कामना करता था।

जैव विविधता का संबंध पशुओं और पेड़–पौधों की प्रजातियों से है। ये अलग एवं अनूठी विचित्रता और विशेषता ही हमें जीवन जीने के योग्य बनाती है। जैव विविधता से हमारा तात्पर्य विभिन्न प्रकार के जीव–जंतु और वनस्पति से है जो संसार में या किसी विशेष क्षेत्र में एक साथ रहते हैं। जैव विविधता को बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि हम अपनी धरती के पर्यावरण को बनाए रखें। जैव विविधता का संबंध मुख्य रूप से अलग–अलग तरह के पेड़–पौधों और

पशु पक्षियों का धरती पर एक साथ अपने अस्तित्व को बनाए रखने से है। यह बहुत जरूरी है कि उच्चस्तर की जैव विविधता को बनाए रखने के लिए हम अपने प्राकृतिक परिवेश को समुचित और अच्छे ढंग से बनाकर रखें तभी धरती पर मानव जीवन सुरक्षित हो सकेगा।

भारत में संसार का केवल 2.4 प्रतिशत भू–भाग है जिसके 7 से 8 प्रतिशत भू–भाग पर भिन्न प्रजातियाँ पाई जाती हैं। प्रजातियों की संवृद्धि के मामले में भारत स्तनधारियों में 7वें, पक्षियों में 9वें और सरीसृप में 5वें स्थान पर है। विश्व के 11 प्रतिशत के मुकाबले भारत में 44 प्रतिशत भू–भाग पर फसलें बोई जाती हैं। भारत के 23.39 प्रतिशत भू–भाग पर पेड़ और जंगल फैले हुए हैं। दुनिया भर की 34 चिह्नित जगहों में से भारत में जैवविविधता के तीन हॉटस्पॉट हैं जैसे हिमालय, भारत–बर्मा, श्रीलंका और पश्चिमी घाट। ये वनस्पति और जीव जंतुओं के मामले में बहुत समृद्ध हैं और जैव विविधता के संरक्षण का कार्य करते हैं। पर्यावरण के अहम मुद्दों में से आज जैव–विविधता का संरक्षण एक अहम मसला है।

कितना सधा हुआ खेल है प्रकृति का ! मानव जीवन के लिए जल जरूरी है तो जल को संरक्षित करने के लिए नदी तालाब। नदी–तालाब में जल को स्वच्छ रखने के लिए मछली, कछुए और मेंढक अनिवार्य हैं। मछली उदर पूर्ति के लिए तो मेंढक ज्यादा उत्पात न करें इसके लिए साँप अनिवार्य है और साँप जब संकट बने तो उनके लिए मोर या नेवला। कायनात ने एक शानदार सहअस्तित्व और संतुलन का चक्र बनाया। हमारे पूर्वज यूँ ही साँप या बैल या सिंह या मयूर की पूजा नहीं करते थे, जंगल के विकास के लिए छोटे छोटे अदृश्य कीट भी उतने ही अनिवार्य हैं जितने इंसान। विडंबना है कि अधिक फसल के लालच में हम केंचुए और कई अन्य कृषिमित्र कीट को मार रहे हैं।

गिद्ध के चेहरे पर ना जाएँ, तनिक उसके गुणों को देखें

अब गिद्ध को ही लें। प्राचीन ग्रंथों में गरुड़ का महत्व सर्वव्याप्त

है। गरुड़ पुराण इंसान के जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र को समझाता है। गिद्ध गरुड़ का ही रूप है। धरती पर सबसे अधिक उम्र तक जीने वाले प्राणियों में से एक। भले ही इसकी शक्ल सूरत अच्छी न हो, लेकिन हमारे पारिस्थितिकी तंत्र के लिए एक अनिवार्य पक्षी। 90 के दशक के शुरुआत में भारतीय उपमहाद्वीप में करोड़ों की संख्या में गिद्ध थे लेकिन अब उनमें से कुछ लाख ही बचे हैं। विशेषज्ञ बताते हैं कि उनकी संख्या हर साल आधी के दर से कम होती जा रही है। इसकी संख्या घटने लगी तो सरकार भी सतर्क हो गई– चंडीगढ़ के पास पिंजौर, बुंदेलखंड में ओरछा सहित देश के दर्जनों स्थानों पर अब गिद्ध संरक्षण की बड़ी–बड़ी परियोजनाएँ चल रही हैं।

जान लें कि मरे पशु को खाकर अपने परिवेश को स्वच्छ करने के कार्य में गिद्ध का कोई विकल्प उपलब्ध नहीं है। हुआ यूं कि इंसान ने अपने लालच के चलते पालतू मवेशियों को दूध के लिए रासायनिक इंजेक्शन देना शुरू कर दिया। वहीं मवेशी के भोजन में खेती में इस्तेमाल कीटनाशकों व रासायनिक दवाओं का प्रभाव बढ़ गया। अब गिद्ध अपने स्वभाव के अनुसार जब ऐसे मरे हुए जानवरों को खाने आया तो वह खुद ही असामयिक काल के गाल में समा गया।

गिद्ध भारतीय समाज में एक उपेक्षित सा पक्षी है लेकिन साफ़–सफ़ाई में इसका सामाजिक योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। गिद्ध दुनियाभर में सबसे ऊँची उड़ान भरने वाला नभचर है। जहाँ 37 हजार फुट ऊँचाई पर अन्य पक्षियों का जीना असंभव होता है, गिद्ध इतनी ऊँचाई पर भी शान से उड़ता रहा है। इसकी पुष्टि रूपेल्स वेंचर ने 1973 में आइवरी कोस्ट में की थी। यही नहीं, इसकी दृष्टि भी बेहद तीक्ष्ण होती है और बहुत ऊँचाई से भी अपने भोजन को देख लेता है। गिद्ध की यह भी खासियत है कि इसका हाजमा बेहद मजबूत है– चाहे जितना भी बदबूदार, मरा हुआ जानवर हो, पलक झपकते ही इनका झुंड उसे चट कर देता है। याद रहे, यह कार्य इंसान या अन्य किसी जानवर के लिए बेहद दूभर गिद्ध का है। चूंकि ये बहुत लंबी

दूरी तक उड़ते हैं अतः अपने सफाई के कार्य में इन्हें किसी भी तरह की सरहद की परवाह नहीं होती।

तुर्की के गिद्ध विचित्र होते हैं— अपने पैरों पर ही पेशाब कर लेते हैं। वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि असल में वे ऐसा कर अपने पैरों को विभिन्न किस्म के संक्रमणों से बचाते हैं। असल में उनके मूत्र में एक अम्ल होता है जो कि सड़े हुए मांस पर खड़े होने के कारण गिद्धों के पैरों में लगी गंदगी के चलते उपजे कीटाणुओं से उन्हें निरापद रखता है।

आधुनिकता ने अकेले गिद्ध को ही नहीं, घर में मिलने वाली गौरेया से लेकर बाज, कठफोड़वा व कई अन्य पंक्षियों के अस्तित्व पर संकट खड़ा कर दिया है। वास्तव में ये पक्षी जमीन पर मिलने वाले ऐसे कीड़ों व कीटों को अपना भोजन बनाते हैं जो खेती के लिए नुकसानदेह होते हैं। कौवा, मोर, टिटहरी, उकाब व बगुला सहित कई पक्षी जहाँ पर्यावरण को शुद्ध रखने में अहम भूमिका निभाते हैं वहीं मानव जीवन के उपयोग में भी इनकी अहम भूमिका है।

जमीन की मिट्टी को उपजाऊ बनाने व सड़े—गले पत्ते खाकर शानदार मिट्टी उगलने वाले केंचुए की संख्या धरती के अस्तित्व के लिए संकट है। प्रकृति के बिगड़ते संतुलन के पीछे अधिकतर लोग अंधाधुंध कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग मान रहे हैं। कीड़े—मकोड़े व मक्खियों की बढ़ रही आबादी के चलते इन मांसाहारी पक्षियों की मानव जीवन में बहुत कमी खल रही है। यदि इसी प्रकार पक्षियों की संख्या घटती गई तो आने वाले समय में मनुष्य को भारी परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं।

इस समय दुनिया में पक्षियों की करीब 9900 ज्ञात प्रजातियाँ हैं। विभिन्न कारणों से पक्षियों की प्रजातियों का विलुप्त होना जारी है और सन् 1500 से लेकर अब तक 'भगवान के डाकिए' कहे जाने वाले इन खूबसूरत जीवों की 128 प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। जलवायु परिवर्तन और नैसर्गिक पर्यावास के साथ छेड़छाड़ के चलते अनुमान

है कि आने वाले 100 साल में पक्षियों की 1183 प्रजातियाँ विलुप्त हो सकती हैं।

मोर हमारा राष्ट्रीय पक्षी है। यह साँप सहित कई जनघातक कीट–पतंगों की संख्या को नियंत्रित करने में प्रकृति का अनिवार्य तत्व है। ये खेतों में बोए गए बीजों को खाते हैं। चूंकि बीजों को रासायनिक दवाओं में भिगोया जा रहा है, सो इनकी मृत्यु हो जाती है। यही नहीं, दानेदार फसलों को सूंडी से बचाने के लिए किसान उस पर कीटनाशक छिड़कता है और जैसे ही मोर या अन्य पक्षी ने उसे चुगा, वह मारा जाता है।

साँप बचेगा तो धरती बचेगी

साँप को ही लें, साल में एक बार नागपंचमी को लोग उसे जबरदस्ती दूध पिलाते हैं, जबकि वैज्ञानिक बता चुके हैं कि ना तो साँप दूध पीता है और ना ही बीन की धुन पर नाचता है। नागपंचमी पर जबरदस्ती दूध के बर्तन में मुँह देने से उसके फेंफड़ों में दूध चला जाता है जो उसकी मृत्यु का कारण बनता है। वहीं कई बार साँप को लगाए गए सिंदूर या कुमकुम से उनकी आँख फूट जाती है। असल में हमारे पूर्वजों ने साँप को प्रति सम्मान या जागरूकता के लिए नागपंचमी का पर्व प्रारंभ किया था। आज हम साँप के प्राकृतिक पर्यावास में अपना घर बना चुके हैं, सो वह बस्तियों में आ जाता है। असल में हमने उनके घर पर अपनी बस्ती बनाई है। वास्तव में साँप उन चूहों व कीटों को चट कर जाता है जो कि किसान की मेहनत की बीस फीसदी तक फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। साँप को किसान का मित्र कहा जाता है। साँप संकेतक प्रजाति है, इसका मतलब यह है कि आबोहवा बदलने पर सबसे पहले वही प्रभावित होते हैं। इस लिहाज से उनकी मौजूदगी हमारी मौजूदगी को सुनिश्चित करती है। हम साँपों के महत्व को कम महसूस करते हैं और उसे डरावना प्राणी मानते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि उनके बगैर हम कीटों और चूहों से परेशान हो जाएँगे। यह भी जान लें कि 'साँप तभी आक्रामक होते हैं, जब उनके

साथ छेड़छाड़ की जाए या हमला किया जाए। वे हमेशा आक्रमण करने की जगह भागने की कोशिश करते हैं।'

मेंढकों का इतनी तेजी से सफाया करने के बहुत भयंकर परिणाम सामने आए हैं। मेंढक पानी व दलदल में रहने वाला जीव है। इसकी खुराक हैं वे कीड़े–मकोड़े, मच्छर तथा पतंगे, जो हमारी फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। अब हुआ यह कि मेंढकों की संख्या बेहद घट जाने से प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया। पहले मेंढक बहुत से कीड़ों को खा जाया करते थे, किंतु अब कीट–पतंगों की संख्या बढ़ गई और वे फसलों को भारी नुकसान पहुँचाने लगे।

दूसरी ओर साँपों के लिए भी कठिनाई उत्पन्न हो गई। साँपों का मुख्य भोजन हैं मेंढक और चूहे। मेंढक समाप्त होने से साँपों का भोजन कम हो गया तो साँप भी कम हो गए। साँप कम होने का परिणाम यह निकला कि चूहों की संख्या में वृद्धि हो गई। वे चूहे अनाज की फसलों को चट करने लगे। इस तरह मेंढकों को मारने से फसलों को कीड़ों और चूहों से पहुँचने वाली हानि बहुत बढ़ गई। मेंढक कम होने पर वे मक्खी–मच्छर भी बढ़ गए, जो पानी वाली जगहों में पैदा होते हैं और मनुष्यों को काटते हैं या बीमारियाँ फैलाते हैं।

आम धारणा है कि कीड़े मकोड़े इंसान के दुश्मन हैं और उनसे बीमारियाँ फैलती हैं लेकिन हकीकत यह है कि अधिकतर कीड़े बहुत काम के होते हैं। उनके कारण हमें खाना मिलता है. धरती साफ रहती है और वे हमें खतरे से भी आगाह करते हैं। मकड़ी को ही लें, वह मच्छरों, मक्खियों और खटमलों को खाकर घर को निरापद रखती हैं।

कौए की जरूरत धरती को है

कौआ भारतीय लोक परंपरा में यूं ही आदरणीय नहीं बन गया। हमारे पूर्वज जानते थे कि इंसान की बस्ती में कौए का रहना स्वास्थ्य व अन्य कारणों से कितना महत्वपूर्ण है। कौए अगर विलुप्त हो जाते हैं तो इंसान की जिंदगी पर इसका बुरा असर पड़ेगा क्योंकि कौए इंसान को अनेक बीमारी एवं प्रदूषण से बचाते हैं। टीवी से ग्रस्त रोगी के खखार में टीबी के जीवाणु होते हैं जो रोगी द्वारा बाहर फेंकते ही

कौए उसे तुरंत खा जाते है, जिससे जीवाणु फैल नहीं पाता। ठीक इसी तरह किसी मवेशी के मरने पर उसकी लाश से उत्पन्न कीड़े–मकोड़े को सफाचट कर जाता है। आमलोगों द्वारा शौचालय खुले मैदान में कर दिए जाने पर वह वहाँ भी पहुँच उसे साफ करता है। इंसानी जिंदगी में कौओं के महत्व को हमारे पुरखों ने बहुत पहले ही समझ लिया था। यही वजह थी कि आम आदमी की जिंदगी में तमाम किस्से कौओं से जोड़कर देखे जाते रहे। लेकिन अब इनका कम होती संख्या चिंता का सबब बन रही है। जानकार कहते हैं कि इसके जिम्मेदार कोई और नहीं बल्कि हम खुद ही हैं जो पर्यावरण को प्रदूषित करके कौओं को नुकसान पहुँचा रहे हैं।

प्रकृति में हर एक जीव–जंतु का एक चक्र है। जैसे कि जंगल में यदि हिरण जरूरी है तो शेर भी। यह सच है कि शेर का भोजन हिरण ही है लेकिन प्राकृतिक संतुलन का यही चक्र है। यदि किसी जंगल में हिरण की संख्या बढ़ जाए तो वहाँ अंधाधुंध चराई से हरियाली को संकट खड़ा हो जाएगा, इसीलिए इस संतुलन को बनाए रखने के लिए शेर भी जरूरी है।

बगैर बछड़े के नहीं बचेगा देहात

देश के कई राज्यों में अब सरकारी पशु अस्पतालों में ऐसे सीरम उपलब्ध करवाए जा रहे हैं जिससे केवल बछिया ही पैदा होगी। इसके पीछे कारण बताया गया है कि इससे आवारा पशुओं की समस्या से निजात मिलेगी। कैसी विडंबना है कि जिस देश में मंदिर के बाहर बैठे पाषाण नंदी को पूजने और चढ़ौत के लिए लोग लंबी पंक्तियों में लगते हैं, वहाँ साक्षात नंदी का जन्म ही न हो, इसके लिए सरकार भी वचनबद्ध हो रही है। हालांकि यह भारत में कोई सात साल पुरानी योजना है जिसके तहत गाय का गर्भाधान ऐसे सीरम से करवाया जाता है जिससे केवल मादा ही पैदा हो जो दूध दे सके, लेकिन इसे ज्यादा सफलता नहीं मिली है क्योंकि यह देशी गाय पर कारगर नहीं है। महज संकर गाय ही इस प्रयोग से गाभिन हो रही हैं। चूँकि इस कार्य के लिए बीज का संवर्धन और व्यापार में अमेरिका व कनाड़ा की

कंपनियाँ लगी हैं तो जाहिर है कि आज नहीं तो कल इसका बोलबाला होगा। इस तरह के एक ही लिंग के जानवर पैदा करने की योजना बनाने वालों को प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ने और ताजा–ताजा बीटी कॉटन बीजों की असफलता को भी याद कर लेना चाहिए।

ये कोई ज्यादा पुरानी बात नहीं हैं, बामुश्किल तीन दशक पहले तक गाँव में बछड़ा होना शुभ माना जाता था, दो साल उसकी खिलाई–पिलाई होती और उसके बाद वह पूरे घर के जीवकोपार्जन का आधार होता था। घर के दरवाजे पर बँधी सुंदर बैल की जोड़ी ही उसकी संपन्नता और रुतबे का प्रमाण होती थी। बछड़ा एक महीने का भी हजार रुपए में बिक जाता था, जबकि गैया या बछिया को दान करना पड़ता था। चुपके से खेती के मशीनीकरण का प्रपंच चला। इसमें कुछ मशीन बनाने वाले, कुछ ईंधन बेचने वाले और सबसे ज्यादा बैंकिग को विस्तार देने वाले लोग शामिल थे। दुष्परिणाम सामने हैं कि आबादी के लिहाज से खाद्यान्न की कमी, पहले की तुलना में ज्यादा भंडारण की सुविधा, विपणन के कई विकल्प होने के बावजूद किसान के लिए खेती घाटे का सौदा बन गई है और उसका मूल उसकी लागत बढ़ना है।

विदेश से आयातित डीप फ्रोजन सीमेन यानि डीएफएस को प्रयोगशाला में इस तैयार किया जाता है कि इसमें केवल एक्स क्रोमोजोम ही हों। इसे नाइट्रोजन बर्फ वाली ठंडक में सहेजकर रखा जाता है। फिलहाल यह जर्सी और होरेस्टिक फ्रीजियन नस्ल की गायों में ही सफल है। देशी गाय में इसकी सफलता का प्रतिशत तीस से भी कम है। विदेशी नस्ल की गाय की ज्यादा कीमत, उसका महंगा रखरखाव और इस वैज्ञानिक तरीके से गर्भाधान के बाद चार साल बाद उसके दूध की मात्रा में कमी आने का कटु सत्य सबके सामने है लेकिन उसे छुपाया जाता है। यही नहीं, इस सीमेन के प्रत्यारोपण में पंद्रह सौ रुपए तक का खर्च आता है सो अलग। सबसे बड़ी बात कि किसी भी देश की संपन्नता की बड़ी निशानी माने जाने वाले 'लाइव स्टॉक' या पशुधन की हर साल घटती संख्या से जूझ रहे देश में अपनी

नस्लों का कम होना एक बड़ी चिंता हैं। यह एक भ्रम है कि भारत की गायें कम दूध देती है। पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, बरेली में चार किस्म की भारतीय गायों – सिंघी, थारपारकर, वृंदावनी, साहीवाल पर शोध कर सिद्ध कर दिया है कि इन नस्लों की गायें न केवल हर दिन 22 से 35 लीटर दूध देती हैं, बल्कि ये संकर या विदेशी गायों से अधिक काल तक यानि 8 से 10 साल तक ब्याहती व दूध देती हैं। एनडीआरआई, करनाल की ताजा रिपोर्ट तो और भी चौंकाने वाली है जिसमें कहा गया है कि ग्लोबल वार्मिग के कारण ज्यादा तपने वाले भारत जैसे देशों में अमेरिकी नस्ल की गायें ना तो जी पाएँगी और न ही दूध दे पाएँगी। हमारी देशी गायों के चमड़े की मोटाई के चलते इनमें ज्यादा गर्मी सहने, कम भोजन व रखरखाव में भी जीने की क्षमता है।

यदि बारीकी से देखें तो कुछ ही सालों में हमें इन्हीं देशी गायों की शरण में जाना होगा, लेकिन तब तक हम पूरी तरह विदेशी सीमेंस पर निर्भर होंगे और हो सकता है कि ये ही विदेशी कंपनियाँ हमें अपने ही देशी सांड का बीज बेचें।

अब जरा हमारे तंत्र में बैल की अनुपयोगिता या उसके आवरण होने की हकीकत पर गौर करें तो पाएँगे कि हमने अपनी परंपरा को त्यागकर खेती को न केवल महँगा किया, बल्कि गुणवत्ता, रोजगार, पलायन, अनियोजित शहरीकरण जैसी दिक्कतों का भी बीज बोया। पूरे देश में एक हेक्टेयर से भी कम जोत वाले किसानों की तादाद 61.1 फीसदी है। देश में 1950–51 में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 53.1 फीसदी हुआ करता था। संसद में पेश की गई आर्थिक समीक्षा में अब इसे 13.9 फीसदी बताया गया है। 'नेशनल सैंपल सर्वे' की रिपोर्ट के अनुसार, देश के 40 फीसदी किसानों का कहना है कि वे केवल इसलिए खेती कर रहे हैं क्योंकि उनके पास जीवनयापन का कोई दूसरा विकल्प नहीं बचा है। जरा गौर करें कि जब एक हैक्टेयर से कम रकबे के अधिकांश किसान हैं तो उन्हें ट्रैक्टर की क्या जरूरत थी, उन्हें बिजली से चलने वाले पंप या गहरे ट्यूबवेल की क्या जरूरत थी। उनकी थोड़ी सी फसल के परिवहन के लिए वाहन की जरूरत

ही क्या थी। एक बात जान लें कि ट्रैक्टर ने किसान को सबसे ज्यादा उधार में डुबोया, बैल से चलने वाले रहट की जगह नलकूप व बिजली के पंप ने किसान को पानी की बर्बादी और खेती लागत को विस्तार देने पर मजबूर किया। बैल को घर से दूर रखने के चलते कंपोस्ट की जगह नकली खाद की फिराक में किसान बर्बाद हुआ। सरकार ने खूब कर्जे बांट कर पोस्टर में किसान का मुस्कुराता चेहरा दिखाकर उसका सुख–चैन सब लूट लिया। खेत मजदूर का रोजगार छिना तो वह शहरों की ओर दौड़ा।

1976 में राष्ट्रीय कृषि आयोग की रिपोर्ट में कहा गया था कि गोबर को चूल्हे में जलाया जाना एक अपराध है। ऊर्जा विशेषज्ञ मानते हैं कि हमारे देश में गोबर के जरिए 2000 मेगावाट ऊर्जा उपजाई जा सकती है। यह तथ्य सरकार में बैठे लोग जानते हैं कि भारत में मवेशियों की संख्या कोई तीस करोड़ है। इनसे लगभग 30 लाख टन गोबर हर रोज मिलता है। इसमें से तीस प्रतिशत को कंडा/उपला बनाकर जला दिया जाता है। यह ग्रामीण ऊर्जा की कुल जरूरत का 10 फीसदी भी नहीं है। ब्रिटेन में गोबर गैस से हर साल सोलह लाख यूनिट बिजली का उत्पादन होता है। चीन में डेढ़ करोड़ परिवारों को घरेलू ऊर्जा के लिए गोबर गैस की सप्लाई होती है। यदि गोबर का सही इस्तेमाल हो तो हर साल छह करोड़ टन के लगभग लकड़ी को बचाया जा सकता है। साढ़े तीन करोड़ टन कोयला बच सकता है। इससे कई करोड़ लोगों को रोजगार मिल सकता है। बैल को बेकार या आवारा मानकर बेकार कहने वालों के लिए ये आंकड़े विचारणीय हैं।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम अपनी ताकत को पहचान नहीं रहे और किसान, दुग्ध उत्पादन में वृदधि, बेकार पशुओं के निदान को उन विदेशी विकल्पों में तलाश रहे हैं जो कि ना तो हमारे देश –काल–परिस्थिति के अनुरूप है और ना ही व्यावहारिक। जान लें कि बगैर बैल के ना तो पर्व–त्योहार हो सकेंगे, न ही खेती और न देशी गाय।

पर्यावरण के प्रति आदिवासी दृष्टिकोण

हरिराम मीणा

प्रकृति के प्रति पवित्र भाव ही पारिस्थितिकीय संतुलन का मूल सूत्र है। इसी सूत्र में आदिम दर्शन का सनातन संदेश समाहित है। इसका सीधा संबंध सृष्टि की सर्वोच्च संचालिका–शक्ति 'ऋत' से है जिसे ब्रह्मांडीय अनुशासन कहा जा सकता है। आदिवासी ज्ञान परंपरा एवं जीवन शैली में यह किस रूप में निहित है, इसी सवाल के ज़वाब में यह लेख प्रस्तुत है।

वैदिक दर्शन में स्थापित 'ऋत' की अवधारणा से दर्शन के सभी विद्यार्थी परिचित हैं ऐसा ही एक दार्शनिक सिद्धांत गोंड आदिम समुदाय में प्रचलित है जिसे लोग बहुत कम जानते हैं। गोंडी भाषा का 'पुनेम' शब्द 'पुय' एवं 'नेम' से बना है। पुय का अर्थ है प्रकृति, सृष्टि (पुकराल), सत्य और नेम से तात्पर्य जीवन पथ है। इस तरह पुनेम अर्थात् प्रकृति पर आधारित सत्य के मार्ग पर चलना। यहाँ जिस तत्व पर जोर दिया गया है वह है प्रकृति दर्शन को ग्रहण करना, प्राकृतिक गुणों का अनुसरण करना, सत्य को जीवन में उतारना। यहाँ महत्वपूर्ण है सच्चा और प्राकृतिक होना। सृष्टि की संचालिका–शक्ति के रूप में प्रकृति की प्रतिष्ठा है जिसके सृजनकर्ता 'बड़ादेव' हैं जिसमें गोंडों की आस्था है। ऐसा आदि–दर्शन सृष्टि, प्रकृति, जीवन व ईश्वर जैसी अवधारणाओं की समझ अपनी सहज प्रवृत्ति के आधार पर हजारों सालों से रखता आया है। प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से और न्यूनाधिक मात्रा में दार्शनिक ज्ञान की इस परंपरा को करीब–करीब सभी आदिवासी समुदायों में देखा जा सकता है।

वैदिक साहित्य में 'ऋत' शब्द का प्रयोग सृष्टि की सर्वोच्च संचालक शक्ति के लिए हुआ है। संसार के सभी पदार्थ परिवर्तनशील हैं किंतु परिवर्तन का यह नियम स्वयं अपरिवर्तनीय स्वभाव रखता है। इसी के कारण सूर्य–चंद्र गतिशील हैं। संसार में जो कुछ भी है वह

सब ऋत के नियम से बँधा हुआ है। ऋत को सबके व्यवहार का मूल कारण माना गया है। अतएव ऋग्वेद में मरुत को ऋत से उद्भूत माना गया है। (4.21.3) विष्णु को 'ऋत का गर्भ' माना गया है। द्यौ और पृथ्वी ऋत पर स्थित हैं। (10.121.1) संभव है, ऋत शब्द का प्रयोग पहले भौतिक नियमों के लिए किया गया हो, लेकिन बाद में ऋत के अर्थ में आचरण संबंधी नियमों का भी समावेश हो गया।

ऋत की क्रिया गतिशील है और भाव स्थायी जो आदि काल से अस्तित्व में है जिसकी दशा प्राकृत है। यहाँ 'आदि' और 'प्राकृत' ये दोनों शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। 'आदि' का अर्थ उस आदिमता की ओर संकेत देता है जो सृष्टि के आरंभ से जुड़ी हुई है और 'प्राकृत' शब्द प्राकृतिकता का बोध कराता है जो मानव सभ्यता के क्रमिक अथवा क्रांतिकारी परिवर्तन की कृत्रिमता के विपरीत है। आदि व प्राकृत रूपी ये दोनों ही गुण हमें आदिम समुदायों के जीवन दर्शन में दिखाई देते हैं जिसकी एक मात्र वज़ह है आदिम सरोकारों के संग उनका प्रकृति पर निर्भर जीवन। यह एक अनूठी जीवन शैली है जिसकी तरफ हमें ध्यान देना चाहिए जो हमें भौतिक व नैतिक स्तर पर अनुशासित रहकर प्रकृति से जुड़े रहने का पाठ पढ़ाती है।

मेरे एक मित्र नाईजीरिया में कई वर्षों तक रहने के पश्चात् वापस भारत लौटे। उन्होंने बताया कि जिस इलाके में वे रहे, वहाँ एक आदिम कबीला वास करता है। मैंने उस अंचल में सैकड़ों जंगली गायों को यत्र–तत्र विचरण करते हुए देखकर कबीले के मुखिया को सलाह दी कि 'आपके यहाँ इतनी दुधारू गायें हैं। इनको पालकर दूध का व्यवसाय क्यों नहीं करते ?' मेरी बात सुनकर वह मुखिया आश्चर्यचकित होकर बोला 'आप क्या बात करते हैं, इन गायों के दूध पर इनके बछड़ों का हक़ है, हम कैसे उनके प्राकृतिक अधिकार को छीन सकते हैं?' एक अन्य उदाहरण अंडमान के द्वीपों का है। सन् 2004 में वहाँ भीषण सुनामी आया था। कई महीने द्वीपों पर राहत कार्य के सिलसिले में वहाँ का एक प्रतिनिधिमंडल प्रधानमंत्री से मिलने दिल्ली पहुँचा। संयोग से मैं वहीं था। आदिवासियों के एक संगठन ने उन्हें रात्रिकालीन भोज पर

आमंत्रित किया जिसमें मैं भी शामिल हुआ। चर्चा के दौरान प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों ने हमें बताया कि 'जारवा समुदाय का एक आदिवासी युवक पोर्ट ब्लेयर अस्पताल में इलाज़ करवाने आया था। वह पहली मंज़िल के वार्ड में भर्ती था। उसका अटेंडेंट साथी किसी काम से नीचे गया। उसे कुछ आभास हुआ। उसने तारकोल की पक्की सड़क के किनारे लेटकर कच्ची जमीन से अपना कान सटाया। वह तुरंत अपने साथी के पास गया। उसके कान में कुछ कहा। दोनों वहाँ से भागकर सीधे जंगल में गए जहाँ उनके समूह के लोग पहले से ही ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ चुके थे। इस घटना के ठीक चौबीस घंटे बाद सुनामी का कहर टूट पड़ा। जंगलों में निवास करने वाले अन्य आदिवासियों ने भी इसी तरह से अपना बचाव किया। अंडमान सेक्टर में हताहतों की संख्या अत्यल्प रही। निकोबार के द्वीपों में जानमाल का भयंकर नुकसान हुआ था जिसकी वज़ह यह बताई गई कि वहाँ पहाड़ियों की ऊँचाई अंडमान की तुलना में कम है।' (अंडमानी द्वीप समूह की सर्वोच्च चोटी सेडल है जिसकी ऊँचाई 732 मीटर है जबकि निकोबार द्वीप समूह की सबसे ऊँची चोटी ग्रेट निकोबार में है जो 642 मीटर ऊँची है। उल्लेखनीय यह है कि आदिम समुदायों में प्राकृतिक संकेतों के आधार पर घटनाओं का पूर्वानुमान लगाने की क्षमता है जो उनके 'प्राकृत' जीवन के कारण संभव है। आदिवासी लोग पशु–पक्षियों के व्यवहार से भविष्यवाणी करने का कौशल रखते हैं, वे उनकी आवाजों के संकेतों को समझते हैं, इन लोगों का वनौषध ज्ञान आश्चर्यचकित करने वाला है। दुर्भाग्य यह रहा कि हमने उनके आदिम बोध व परंपरागत ज्ञान कोष को ठीक से नहीं पहचाना और उस धरोहर का विकास नहीं किया।

मनुष्य ने जैसे ही अपने तात्कालिक स्वार्थपूर्ति हेतु प्रकृति से छेड़छाड़ करना प्रारंभ किया, वहीं से बहुत सारी समस्याएँ सामने आने लगी हैं जो अंततः पर्यावरण असंतुलन की उग्रता के साथ 'पृथ्वी के अंत' की दुर्संभावना की ओर इंगित करती हैं। हॉवर्ड से संबद्ध कैंब्रिज हेल्थ अलायंस के जेरियाट्रिक साईकेट्री के निदेशक डॉ. जेसन स्ट्रा

कहते हैं कि किसी भी उम्र के व्यक्ति के समक्ष स्वास्थ्य से जुड़ी समस्या, अपनों को खोने, स्मृति–लोप या फिर रिटायर्मेंट के बाद का बदलाव आदि में से किसी भी कारण से मानसिक असंतुलन की दशा उत्पन्न हो सकती है। ऐसे लोगों को किसी भी मेडिकेशन या थेरेपी की आवश्यकता नहीं है। उन्हें सिर्फ़ स्वयं को प्रकृति के निकट ले आना चाहिए। प्रकृति के सान्निध्य में समय बिताने पर तनाव, चिड़चिड़ापन व अवसाद को नियंत्रित किया जा सकता है। शोध के निष्कर्ष हैं कि प्राकृतिक वातावरण में 90 मिनट पैदल चलने वाले लोगों में प्रिफंटल कोर्टेस्ट की सक्रियता कम पाई गई। प्रिफंटल कोर्टेस्ट मस्तिष्क के अग्र भाग का वह हिस्सा है जिसकी अनपेक्षित सक्रियता व्यक्ति की कार्य–योजना, अभिव्यक्ति, निर्णय–क्षमता व सामाजिक व्यवहार को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। ऐसी प्रवृत्ति वाले लोगों को डॉ. स्ट्रा सलाह देते हैं कि उन्हें सप्ताह में कम से कम तीन दिन करीब आधा घंटा प्राकृतिक वातावरण में पैदल घूमना चाहिए। आदिवासी समाज आज भी ऐसे खतरों को पैदा करने की मानसिकता से भिन्न समझ रखता है। कई दफ़ा यह सवाल उठाना लाजिमी है कि फिर 'क्या हम उसी आदिम युग की ओर लौट चलें जिसे त्यागकर मानव ने प्रगति की दीर्घ यात्रा तय की?' ऐसा कदम न तो संभव है और न ही उचित। बात कुल मिलाकर प्रकृति के साथ उस तालमेल की है जिसके अभाव में प्रकृति और विकास का संतुलन गड़बड़ा रहा है। इस विकल्प को कई लोगों ने 'प्रकृति की ओर लौटना' कहा है जिसके मर्म को इस उत्तराधुनिक हाई–टैक ग्लोबल मनुष्य को समझने की आवश्यकता है।

आज जिन समुदायों को हम आदिवासी लोगों के समाज के नाम से जानते हैं, उनके जीवन में एक ऋत है, एक अनुशासन है, एक संस्कृति है, कुछ संस्कार हैं, एक किस्म का सलीका और तमीज़ हमें दिखाई देती है। जीवन में सामूहिकता बची हुई है। निजी संपत्ति के प्रति मोह नहीं के बराबर है। व्यक्तिवाद और स्वार्थवाद की मनोवृत्ति से यह समाज कोसों दूर है। अपने होने पर इन लोगों को गर्व है। ये

किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते। अपनी धरती से बेहद प्यार करते हैं। उसे माँ का दर्ज़ा देते हैं। आकाश को पिता मानते हैं। हवा को बहन और पानी को भाई कहते हैं। पहाड़ों को दोस्त का दर्ज़ा देते हैं। इन प्रकृति तत्वों को कोई छेड़ता है तो ये उसका वैसा ही विरोध करते हैं जैसे कोई अपने किसी सगे–संगी की सुरक्षा के लिए आगे बढ़ता है। इनके यहाँ सब कुछ सहज होता है। कुछ भी असहज व जटिल नहीं है। सब कुछ प्रिय है, अप्रिय कुछ भी नहीं। सब कुछ सुंदर है, असुंदर कुछ भी नहीं। प्रकृति तत्वों के प्रति आत्मीयता का भाव है इन लोगों के दिलों के भीतर। मानवेतर जीव–जगत के प्रति सहअस्तित्व की भावना इन लोगों के रक्त में रची–बसी हुई होती है। इसीलिए आदिवासी समाज में 'मनुष्य की श्रेष्ठता' का नकार है। वे इस प्रस्थापना को जड़ से अस्वीकार करते हैं कि 'चौरासी लाख योनियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है।' जिस तरह से इस विराट ब्रह्मांड में प्रखर सूर्य जितना महत्वपूर्ण है उससे कम महिमा किसी नन्हें से नक्षत्र की भी नहीं। हमें यह समझना चाहिए कि इस अखिल सृष्टि में 'अनावश्यक' कुछ भी नहीं। आदिवासियों के लिए दुनिया बहुत ख़ूबसूरत होती है। प्रकृति के सौंदर्य को ये लोग पहचानते हैं। इनके हृदय के भीतर एक नैसर्गिक सौंदर्य बोध होता है जिसकी अनौपचारिक शिक्षा इन्हें अपने पुरखों और प्रकृति से मिलती रही है। यही कारण है कि इनके पुरखे ही इनके देवता होते हैं। इनके ईश्वर किसी सातवें आसमान में नहीं रहते। इनके देवता इन्हीं जैसे निवास करते हैं, इन्हीं के जैसा खाते–पीते हैं, इन्हीं के जैसा ओढ़ते–पहनते हैं। भव्य देवालयों, सोलह श्रृंगारों और छप्पन भोगों का ताम–झाम आदिवासी समाज में नहीं दिखाई देता। अपने देव–देवी से ये लोग महाज्ञानी या धनपति अथवा राजा महाराजा बनने की मनौती नहीं माँगते। इनके जंगल, ज़मीन, जल व जीव बचे रहें, बस इतनी सी कामना होती है इनकी। ये ऐसे भले और भोले लोग होते हैं जो छुटपुट विवादों की गाँठ नहीं बाँधते। साँझ को अगर कोई झंझट हुआ तो सुबह भूल जाएँगे। इनके दिलों में ईसामसीह मिलेंगे, सुकरात मिलेंगे, बुद्ध मिलेंगे, महात्मा गांधी मिलेंगे।

'ऋत' के जिस गूढ़ रहस्य और सृष्टि के संचालन के परम तत्व को जानने के लिए वैदिक ऋषियों सहित अन्य ज्ञानी, प्रबुद्ध व बुद्ध विभूतियों ने जितना गहन व लंबा चिंतन, मनन, ध्यान, साधना, तपस्या वगैरह का उपक्रम किया था, उसे अशिक्षित व पिछड़ा कहे जाने वाले आदिम कबीलों ने अपनी पुश्तैनी और नैसर्गिक समझ के आधार पर सहज रूप में प्राप्त कर लिया था तथा अब तक संजोए रखा है। यह दीगर बात है कि उन ज्ञानियों ने उस 'सत्य' के कुछ सिद्धांत गढ़ लिए, उसका शास्त्र रच लिया, उसका दर्शन प्रस्थापित कर दिया, उसके मंत्र–तंत्र–यंत्र विकसित कर दिए, इसलिए 'सत्य' के उस ज्ञान को 'गूढ़' व 'सनातन' होने की बौद्धिक व आध्यात्मिक स्वीकृति मिलती रही और वे उसके खोजी, प्रस्थापक एवं साधक सिद्ध होते रहे। दूसरी तरफ़ इन तत्वों के प्रति पैदा हुई आदिवासी की समझ को नज़रंदाज़ किया जाता रहा। यहाँ मुझे बरबस फक्कड़ संत कबीर याद आते हैं जो कहते हैं कि 'संतों, सहज समाधि भली'। यह सहज होना क्या है जिसके बल पर समाधिस्थ हुआ जा सकता है? इस 'सहज बोध' (रोबस्ट कॉमन सेन्स) को हमें समझने की आवश्यकता है।

ज़रा कल्पना कीजिए कि आप किसी वनांचल में हैं जहाँ नितांत एकांत है। नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उगी हुई हैं। फूल खिले हुए हैं, नदियाँ, झील, झरने, सरोवर यत्र–तत्र दृश्यगत हैं। भोर हो अथवा साँझ, पक्षियों का कलरव सुनाई दे रहा है जिनमें कोयल का पंचम स्वर प्रधान है। मंथर गति में स्वास्थ्यप्रद व सुखद वायु संचरित हो रही है। पृथ्वी प्रदूषणविहीन और आकाश पूर्णतः निर्मल है। जलवायु समशीतोष्ण है। इस वातावरण में कौन होगा जिसका चित्त शांति का अनुभव नहीं करेगा? यह वातावरण 'प्रकृति का संगीत' है जिसके सान्निध्य में आदिम समुदाय रहते हैं। यह एक बड़ी वज़ह है जिसके प्रभाव में आदिवासी नैसर्गिक उल्लास की अनुभूति करता रहा है। इसीलिए पुनः यह रेखांकित किया जाता है कि 'आदिवासी की गति में नृत्य और वाणी में गीत का प्रस्फुटन सहज रूप में होता रहा है। यही आदिवासियों की वह 'मस्ती' है जिसके रहते वे सैकड़ों किस्म के

भौतिक अभावों के बावजूद ज़िंदगी से कभी नहीं हारते। इस अल्हड़ मस्ती में एक अनुशासन (ऋत) है। इस अल्हड़ मस्ती में एक संगीत है। आदिवासी समाज में अल्हड़ मस्ती का अर्थ 'उच्छृंखलता' नहीं होती, बल्कि एकल अथवा सामूहिक स्तर पर मनाए जाने वाला एक प्रकार का उत्सव होता है, जिसके आयोजन में अनेक प्रकृति तत्व प्रेरणा व आलंबन की भूमिका निभाते हैं। इसीलिए जंगल व पहाड़ों के बगैर आदिवासी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।

अब मैं पुनः अंडमान के ही आदिवासियों की जीवन–दृष्टि का दृष्टांत यहाँ दे रहा हूँ जो उनकी पारिस्थितिकीय सजगता को बताता है। अंडमान के टापुओं में जंगली सूअर काफ़ी हैं। आदिवासी लोग उनका शिकार करते हैं। वहाँ हिरण कम हैं। वे लोग हिरणों में अपने मृत बुजुर्गों की आत्मा का वास मानते हैं। वहाँ के जंगलों में तीतर व बटेर काफ़ी हैं, उन्हें वहाँ के आदिवासी खाते हैं, मगर हरा कबूतर यानी कि हरियल पक्षी कम पाए जाते हैं। अतः उनमें अपने होने वाले शिशुओं की आत्मा का वास मानते हैं। इसलिए उन्हें वे पवित्र मानते हैं। 'सी फूड' अकूत है, वे खाने में खूब उपयोग में लेते हैं। नीले रंग की स्टार फ़िश बहुत कम दिखती है। उसमें ये लोग अपनी आदि–दादी परी का रूप देखते हैं। जारवा स्त्री व पुरुष दोनों यह जानते हैं कि शहद इकट्ठा करते वक्त 'ओयेक्वलिन' जैसे पौधे की पत्तियों को चबाकर मुँह में पैदा किए गए उसके थूक–घोल को मधुमक्खियों के छत्तों पर फ़ैलाने से वे निकट नहीं आतीं। उन पर किए गए एक शोध के निष्कर्ष हैं कि जारवा लोग करीब एक सौ पचास वनस्पतियों तथा तीन सौ पचास वन्य प्राणियों के विषय में विस्तार से जानते हैं। अब कोई बताए कि समझदार कौन है, तथाकथित सभ्य व विकसित लोग या फिर ये आदिम कबीले?

डॉ. हेम्ब्रम का विशेष कार्य होड़ोपेथी पर है। 'होड़ो' मुंडारी भाषा में 'मानव' को कहते हैं और 'पेथी' यूनानी शब्द है, जिसका अर्थ है– 'एहसास' अर्थात् एक किस्म का अनुभवजन्य ज्ञान। सजीव प्रकृति में मानव, मानवेतर जीवजगत और पादप (वनस्पतियाँ) सम्मिलित हैं

जिनके सह–अस्तित्व व परस्पर संतुलन से ही पारिस्थितिकीय संतुलन बना रहता है। इसमें तनिक व्यवधान भी अंततः प्रकृति के लिए खतरनाक सिद्ध होगा। होड़ो जीवन पद्धति इस नैसर्गिक सूत्र को आदिकाल से संभाले हुए है। इस सूत्र की अवहेलना आज का तथाकथित विकसित मनुष्य किए जा रहा है जिससे अनेक प्रकार के संकट उत्पन्न होते जा रहे हैं। होड़ोपेथी की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य अपने से इतर जीव व पादप जगत के व्यवहार, संघर्ष, सुरक्षा, अंतःक्रिया–अंतर्क्रिया, आदान–प्रदान इत्यादि के अनुभव से एक विशिष्ट प्रकार की अंतःप्रज्ञा का विकास करता रहा है जिस पर संपूर्ण आदिम ज्ञान परंपरा आधारित रही है। खासकर प्राकृतिक मानव समाज जिसे आज हम आदिवासी जन के रूप में पहचानते हैं, उसमें यह धरोहर कमोबेश सुरक्षित है। इस संरक्षण परंपरा में 'बाबा' हेम्ब्रम जैसी विभूतियाँ लिविंग लीजेंड के रूप में हमारे सामने हैं।

प्रत्येक आदिम समुदाय का कोई न कोई गणचिह्न होता है जिसमें वे विश्वास करते हैं। उस गणचिह्न को वे अपने उद्भव से जोड़कर देखते हैं। आदिम समुदाय विशेष की कुल परंपरा से गणचिह्नों का गहरा रिश्ता होता है। वह गणचिह्न कोई प्रकृति तत्व अथवा मानवेतर प्राणी हो सकता है। ऐसा कोई आदिम गणचिह्न नहीं पाया जाता जो अमूर्त, वायवीय अथवा अलौकिक हो। भीलों में महुआ का वृक्ष, नागों में नाग, मीणा समुदाय में मत्स्य, उराँव की विभिन्न खांपों में जंगली सूअर, कछुआ, कौआ, धान व खड़िया लोगों में बाघ आदि के उदाहरण लिए जा सकते हैं। गणचिह्नों की यह विशेषता है कि समुदाय विशेष अपने गणचिह्न को एक साथ संरक्षित भी करता है और उसका उपभोग भी। कई गणचिह्न जीवनयापन का आधार बनते हैं जैसे भील समुदाय के लिए महुआ का वृक्ष कल्पतरु से कम नहीं। खाना, शराब, चारा, छाया सब कुछ वह देता है और उसे पूजा भी जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिंदु यह उभरकर सामने आता है कि इन आदिम गणचिह्नों के रूप में जितने भी पशु–पक्षी स्थापित हुए हैं उन सबके

प्रति आदिवासी समाज में आस्था का पूज्य भाव निहित है। मनुष्य और जीव–जगत के संबंधों पर आदिम समाज और तथाकथित सभ्य समाज के दृष्टिकोण की परख करते हैं तो यह तथ्य स्पष्ट होता है कि जहाँ आदिम समाज में इन प्राणियों के प्रति आस्था का पूजनीय भाव है। वहीं सभ्य समाजों में इनके प्रति हीनता का बोध दृष्टिगत होता है। हिंदू मिथकों में देव–देवियों के वाहन पशु–पक्षी हैं, जिसका सीधा–सा अर्थ है कि मनुष्य द्वारा सृजित देव–देवियों को ढ़ोते रहने की सेवा की भूमिका इन्हें सौंपी गई। इसके पीछे जो दृष्टि रही वह उस मानसिकता की उपज है जिसके अंतर्गत चौरासी लाख योनियों में मनुष्य की श्रेष्ठता स्थापित की गई। जब मानवेतर प्राणियों से मनुष्य श्रेष्ठ है तो उसके ईश्वरों के सामने इन प्राणियों का दर्ज़ा सेवादारों का ही होगा। पशु–पक्षियों अथवा अन्य प्रकृति तत्वों के गणचिह्नीकरण और उनके प्रति पूज्य–भाव की स्थापना मूलतः मनुष्य की आदिम मानसिकता द्वारा की गई है। मनुष्य की श्रेष्ठता का दंभ सभ्यता के विकास के साथ उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है किंतु जब दुनिया की समूची मानवता आदिम दशा में थी तब स्थिति सर्वथा भिन्न रही होगी। चूँकि तब जीवजगत के प्रति भी मनुष्य का दृष्टिकोण समानता का रहा होगा जैसा कि हमें आदिवासी समाज में अभी भी दिखाई देता है।

ज्ञान व विज्ञान दोनों की भूमिका जीवन में प्रसन्नता देना है ताकि वह सुंदर बन सके। सन् 2012 से संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व के खुशहाल देशों का चयन करना आरंभ किया। शुरुआती वर्षों में भूटान सर्वाधिक प्रसन्न राष्ट्र माना गया। अब गत तीन सालों से फिनलैंड दुनिया का सबसे खुशहाल देश चल रहा है। ध्यातव्य है कि इन राष्ट्रों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। अमरीका भले ही भौतिक दृष्टि से दुनिया का समृद्धतम देश हो, किंतु प्रसन्न देशों की सूची में उसका स्थान 18–20 के नीचे आता है। कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि यह कहा जाए कि पूंजी के रथ पर सवार जिस भू–मंडलीकृत हाई–टेक आधुनिकता को आज राष्ट्रीय सरकारों ने विकास के सर्वमान्य ढाँचे की तरह से स्वीकार कर लिया है वह

मानवीय सभ्यता व संस्कृति के लिए अंधी दौड़ सिद्ध होती जा रही है। इस तथाकथित विकास के दुष्परिणामों का परिदृश्य इस कथन को सिद्ध करता है। प्रतिवर्ष प्राकृतिक संसाधनों का 50 अरब टन से अधिक दोहन नहीं होना चाहिए जबकि किया जा रहा है 88 अरब टन का। पृथ्वी पर जितना भी जल है उसका 97.5 समुद्रों में और 1.5 बर्फ के रूप में है जो पीने लायक नहीं है। शेष मात्र एक सतह अथवा भू–गर्भ में है जिसे उपयोग में लिया जा सकता है। यदि विवेकसम्मत जल प्रबंधन नहीं किया गया तो सन् 2025 तक भारत की आधी और विश्व की करीब 1.8 अरब आबादी को पीने का जल उपलब्ध नहीं होगा। भारत में प्रति हजार लोग 420 लीटर पेट्रोल का उपभोग कर रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति 15 लीटर प्रति माह तेल की खपत कर रहा है। धरती के पास अब सिर्फ़ 53 साल का तेल रिजर्व ही बचा है। प्राकृतिक गैस का इस्तेमाल दुनिया भर में बहुत तेजी से हो रहा है। यही रफ़्तार रही तो पृथ्वी का शेष गैस भंडारण सन् 52 में समाप्त हो जाएगा! फॉसिल फ्यूल में सर्वाधिक भंडार कोयले का है। विकसित देश इसका बहुत तेजी के साथ दोहन व उपभोग कर रहे हैं। यही हालात रहे तो दुनिया से कोयला 114 सालों में ख़त्म हो जाएगा! अन्न, दाल, फल व सब्जियाँ संसार भर में जमीन से मिलती हैं। मिट्‌टी की उर्वरता नष्ट होती जा रही है। गत 40 वर्षों में 33 फीसदी कृषि योग्य भूमि नष्ट हो चुकी है। गत 20 वर्षों में दुनिया भर में कृषि उत्पादकता 20% ही कम हुई है। कीटनाशक व रासायनिक खाद के प्रयोग के कारण भारत में हर साल 5334 लाख टन कृषि योग्य भूमि अनुपयोगी हो रही है। रेत व बजरी के खनन ने इस संकट को और बढ़ा दिया है। भारत में प्रति वर्ष 1.3 करोड़ एकड़ वन काटे जा रहे हैं। यह दशा भीषण मानव निर्मित प्राकृतिक आपदाओं का कारण बनेगी! ध्यातव्य है कि संपूर्ण पृथ्वी के कुल जैवभार (biomass) का 82% वनस्पतियाँ, 12.99% बैक्टीरिया एवं 5% अन्य हैं। मानव प्रजाति का बायोमास मात्र 0.01 फीसदी है जबकि पृथ्वी को सबसे अधिक हानि यही मनुष्य पहुँचा रहा है।

सवाल यह उठता है कि प्राकृतिक संपदा का महाविनाश करने वाला मनुष्य स्वयं को सभ्य, सुसंस्कृत, विकसित, ज्ञानी–विज्ञानी और चौरासी योनियों में सर्वश्रेष्ठ घोषित करने का दंभ भरता है। सभ्यता, शिक्षा व ज्ञान का सीधा संबंध समझदारी से होता है। सृष्टि, प्रकृति, पृथ्वी और मानवता के सनातन सरोकारों को ध्यान में रखकर जीने वाला संसार भर में फैला हुआ आदिवासी समाज है जिसे हम जंगली, बर्बर, असभ्य, गंवार, उजड्ड और वर्तमान में विकास–विरोधी तक कहे जा रहे हैं। उसकी एक ठोस ज्ञान परंपरा रही है। उस समाज ने हजारों वर्षों से ट्रस्टी अथवा कस्टोडियन की हैसियत से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण किया है। एक तरफ प्रकृति और पृथ्वी के विध्वंसकों की बर्बर सेना है तो दूसरी ओर प्रकृति व पृथ्वी के पक्ष में उसकी आदि–संतानें हैं।

पर्यावरण का स्वरूपगत विवेचन एवं पुहकर कृत 'रसरतन' में प्रकृति

दुर्गा प्रसाद

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं चेतना में पर्यावरण का महत्त्व निर्विवाद रूप से स्थापित है। परिवेश एवं परिवेशजन्य अनुभूति के आधार पर पर्यावरण का अध्ययन–विवेचन अपेक्षित माना जाता है। सामान्य रूप से इस प्रकार के अध्ययन के माध्यम से प्राप्त विश्लेषण को सुसंगत माना जा सकता है। पर्यावरण देश–काल–वातावरण का संयोज्य परिणाम है। प्रत्येक जीव–जंतु, वनस्पति देश–काल–वातावरण से बिना प्रभावित हुए अस्तित्व में उपस्थित नहीं रह सकते हैं। पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, वायु, जल जैसे– महत्त्वपूर्ण तत्त्व पर्यावरण के घटक हैं। विदित है कि जल–जंगल–जमीन के संरक्षणार्थ सभी संवेदनशील नर–नारी अपने–अपने स्तर पर प्रयत्न करते हैं। पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के लिए जनता द्वारा निर्वाचित सरकारें भी प्रयत्नशील हैं। सरकार जागरूकता के प्रचार–प्रसार के माध्यम से पर्यावरण के बचाव के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन भी करती रहती है। किंतु इन सभी प्रयासों के बावजूद हमारे समाज या इसे इस प्रकार भी कहा जाए तो उपयुक्त ही प्रतीत होगा कि समूची दुनिया में पर्यावरण प्रदूषण को लेकर गंभीर चर्चा–परिचर्चा का दौर चल रहा है। भूमंडलीकरण की वर्तमान परिस्थिति में पर्यावरण संकट से विमुख नहीं हुआ जा सकता। भौतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण आज पर्यावरण सुरक्षा अत्यंत गहनतर चिंता के केंद्र में आ गई है।

पर्यावरण से आशय यह भी होता है कि मानव जीवन एवं प्रकृति के विकासोन्मुख वृद्धि को महत्वपूर्ण मानते हुए उसके साथ सामंजस्य स्थापित करे। समावेशी विकास ही मनुष्य द्वारा किए गए सत्कार्य को प्रतिबिंबित करता है। चेतन पदार्थों के साथ–साथ जड़ पदार्थों के प्रति

मानवीय दृष्टिकोण सदाशयता के साथ दृष्टिगोचर होना चाहिए। जैविक एवं भौतिक घटकों की पृथ्वी पर जो अंतःक्रियाएँ होती हैं वे पारस्परिक अंतःक्रियाएँ होती हैं। पर्यावरण के स्वरूपगत विवेचन के विषय में उद्धृत अंश निम्नलिखित है– "पर्यावरण का तात्पर्य उस समूची भौतिक एवं जैविक व्यवस्था से है जिसमें जीवधारी रहते हैं, बढ़ते हैं, पनपते हैं और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते हैं।"

स्पष्टरूपेण कहा जा सकता है कि पर्यावरण का संबंध भौतिक तथा जैविक दोनों व्यवस्थाओं एवं प्रवृत्तियों से है। पर्यावरण का आशय हमारे आस–पास के वातावरण से है जिन्हें हम प्रभावित करते हैं और जो हमें प्रभावित करते हैं। "पर्यावरण हमारे आसपास का वातावरण है जिसमें हम कार्य करते हैं और इसमें वायु, जल, भूमि, प्राकृतिक संसाधन, पेड़–पौधे, जीव–जंतु तथा संपूर्ण मानव–जाति तथा इन सभी के आपसी संबंध शामिल हैं। पर्यावरण का विस्तार हमारे आस–पास के वातावरण से लेकर भूमंडलीय तंत्र तक हो सकता है।" इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि अनेक प्राकृतिक तत्वों अथवा घटकों का समन्वय पर्यावरण है।

पर्यावरण के द्वारा जीवन का संपूर्ण अंश किसी–न–किसी रूप में प्रभावित होता ही है। तात्पर्य है कि प्रत्येक वस्तु, दूसरी वस्तु को पर्यावरण के दृष्टिकोण से अवश्यमेव प्रभावित करती है। मानवीय संसाधन पर्यावरण पर निर्भर होते हैं। मानव पर्यावरण का सहचर है। पुरा प्राचीन समय से मनुष्य का पर्यावरण के साथ सघन साहचर्य संबंध है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि मनुष्य ने प्रकृति के साथ जो संबंध स्थापित किया एवं उसका निर्वहन किया, वह किसी अन्य स्रोत के माध्यम से न होकर सीधे संबंध का परिणाम है।

प्राचीन काल से ही प्रकृति के प्रति हमारी संस्कृति एवं हमारे समाज में प्रेम दिखाई देता है। प्रकृति एवं मानव–जीवन एक–दूसरे से अनुस्यूत हैं। प्रकृति, समाज द्वारा सादर पूज्या इसलिए रही है कि हम उस पर निर्भर हैं।

जिस प्रकार जीवन में पर्यावरण की उपस्थिति होती है उसी प्रकार साहित्य में पर्यावरण की सघन उपस्थिति विद्यमान है। पर्यावरण के प्रति भारतीय प्राचीन संस्कृति में गहरा प्रेम दिखाई देता है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मानव प्रकृति की ही इकाई या प्रकृति का ही घटक अथवा अंश है। प्राचीन समय में प्रकृति के घटकों को देवता मानकर उनका ससम्मान पूजन किया जाता था। उदाहरणस्वरूप, 'सूर्य' की पूजा करके ऊर्जा प्राप्त की जाती है। यह धारणा अति प्राचीनकाल से विद्यमान है। 'ऊँ विश्वानिदेव सवितदुर्रितानि परासुव यद्भद्रंतन्नासुव।। 'स्पष्ट है कि सूर्य देव को सुबह प्रणाम करके दिन की शुरुआत करते हैं जिससे कि ऊर्जा हमारे मन–मस्तिष्क में अविचल भाव से बनी रहे। सूर्य की किरणों से ऊर्जा प्राप्त कर जीव–वनस्पतियाँ अपना आहार तैयार कर स्वयं को हृष्ट–पुष्ट रखती हैं। सूर्य के प्रकाश के महत्व को तो प्राचीन काल से ही स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार वायु, जल, अग्नि भी प्रकृति के महत्वपूर्ण अंश हैं, इनकी भी सादर पूजा होती रही है। तात्पर्य है कि ये सभी तत्व प्रकृति में ही विद्यमान हैं और इनका अस्तित्व हमारे पर्यावरण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मध्यकाल के संत–कवियों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति हेतु पर्यावरण के उपादानों को उपयोग में लाया गया है। कबीरदास जब यह कहते हैं–

'वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर।।'

तो इससे स्पष्ट होता है कि कबीर प्रकृति को परोपकारी बताते हैं।

पुहकर कवि ने 'रसरतन' की रचना में प्रकृति का अत्यंत मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया है। प्रकृति के सौंदर्य के प्रति सभी लोग आसक्त रहते हैं; उसे देखने अर्थात् निहारने की चेष्टा करते हैं किंतु कवि प्रकृति को और भी अधिक निकटता के साथ देख पाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं कि– "हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों और व्यापारों को भावना के सामने लाकर कविता बाह्य प्रकृति के साथ

मनुष्य की अंतः प्रकृति का सामंजस्य घटित करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता के प्रयास का प्रसार करती है।"

'रसरतन' में कवि पुहकर ने प्रकृति–वर्णन के अंतर्गत स्वीकृत होने वाली परिस्थितियों का ही अधिक वर्णन किया है। फिर भी यह कहने में आश्चर्य नहीं होता कि उनकी सहज सहृदयता प्रकृति के आह्लादकारी रूप पर भी टिकी हुई है। वन, सरोवर, चाँदनी रात, नदी, पहाड़, नवल वसंत आदि का वर्णन उनकी कवित्व शक्ति का परिचय सहज ही देता है। कवि पुहकर ने 'अप्सरा खंड' के अंतर्गत शांत मान सरोवर और किनारे–किनारे पर छाई हुई हरियाली का जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह द्रष्टव्य है–

"निर्मल नील गगन मनु मोहै।
इतहि नील काननु अति सोहै।।
सरवर नील नील मनि झाईं।
तरवर तीर बिंब सुख दाई।।"

कवि पुहकर ने प्रकृति की मनोहर शोभा का जिस प्रकार वर्णन प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है। नभ में श्वेत नक्षत्र, कानन में मालती, बेला तथा कुंद के श्वेत पुष्प और इनसे आच्छादित वृक्षों का प्रतिबिंब जो सरोवर में प्रतिबिंबित होता है मानो दो भुजाएँ फैली हुई हों जो छाया की हों–

"सोइ सोभा गगन अवनि पुनि सोइ सोभा,
तैसिये पताल सोभा एक उनहारि है।
पुहुकर कहै कछु बरनी न जाति मो पै
मेरे मन आई सोई कही मैं विचारि है।
मानसर तीर तरु फूले हैं अनेक फूल,
ताकौ प्रतिबिंब रहौ भुजा सी पसारि है।
नागलोक माझ अध ऊरध अमरलोक
तीनों लोक मानौ तिनि नैन त्रिपुरारि है।।"

सरोवर के चारों तरफ चाँदनी रात में वृक्ष जो पुष्पाच्छादित हैं वह मानो एक छायालोक है। इसलिए कवि पुहुकर द्वारा चाँदनी जो कि जल में प्रतिबिंब के रूप में है; स्नातवृक्ष, लतादि, नक्षत्र से भरा–पूरा

आकाश– तीनों को उनहारि बताया गया है। कवि की प्रकृति के प्रति अनुरक्ति की शक्ति का पता इस बात से भी लगाया जा सकता है कि कवि ने किनारों के प्रतिबिंब को भुजाओं के समान बताया है। यह कवि द्वारा किए गए सूक्ष्म निरीक्षण का परिणाम है।

प्रकृति परिवर्तनशीला है। इससे नित–नव–नूतन छवि हमारे मन–मस्तिष्क में दिन–प्रतिदिन गहरी होती चली जाती है। परिणामस्वरूप हम प्रकृति के सौंदर्य से आह्लादित होते हैं।

प्रकृति के अभिन्न अंग के रूप में 'ऋतुएँ' एवं 'मास' के योगदान का 'अल्प' में आकलन नहीं किया जा सकता है। 'रसरतन' के 'युद्धखंड' में नायक सूरसेन वन के मार्ग से अपनी सेना के साथ गुजरता है तो उस समय कवि ने वसंत के मनोहर रूप का अंकन इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"सोभित विपन बसंत अनूपा।
कूजित बिहंग बिबिध बिधिरूपा।।
नवल वसंत नवल पिक जोरी।
नवल संग गुन आगर गोरी।।
सहचरि नवल नवल सब संगी।
नाइक नवल नवल नवरंगी।।
पेषत वन अद्भुत असथाना।
रंभावति मन आनंद माना।।"

नवल वसंत में कोमल किसलय कोपलों की कूक अर्थात् आवाज, नए हरे पल्लव तथा रस से भरे फूलों एवं फलों का विविध रंगों के साथ जो वर्णन 'रसरतन' में है वह अद्वितीय है–

"सहचर कहैं कुंवर सौ बाता।
देखौ आजु सकल बन राता।।
कोमल किसल नवल रंग राते।
तह कोकिल गुंजहिं उनमाते।।
बौहुर होहिं नव पल्लव हरे।
फूलहिं फलहि सकल रस भरे।।
बहुरि पीत ह्वै हैं रँग पाके।

तब फिर काम न आवहिं ताके।।"

मध्यकाल में न केवल पुहकर अपितु संतकाव्यों में भी पर्यावरण का चित्रण प्राप्त होता है। रामकाव्य में साधारणजन से संबंधित मनोहर स्थलों का भी दृश्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मध्यकाल के काव्यों में भौरों का गुंजन, तोता, मयूर के सुंदर दृश्य एवं उनकी आवाजों का भी जो वर्णन प्राप्त होता है वह बहुत अधिक रमणीय है। इसमें पर्यावरण के जो कोमल रूप हैं वे तो मन को आकर्षित करते ही हैं, साथ ही जो विकराल रूप है वह भी मनोहारी है जैसे– बादल का गरजना, बिजली का चमकना आदि।

मध्यकाल के काव्य में पर्यावरण चित्रण की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। इस काल की काव्य–कृतियों में मानव एवं पर्यावरण के संबंध अटूट एवं गहरे हैं। मध्यकालीन कृतियों में पर्यावरण एवं मानव दोनों के साहचर्य से सृष्टि के विकास को गति मिलती है।

निष्कर्षतः सभी लोगों के प्रति सुखी होने के भाव की सबसे प्राचीन अभिव्यक्ति भारत की चिंतन–पद्धति में मिलती है। 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत्।' की संकल्पना के माध्यम से भारत के पर्यावरण एवं प्रकृति संबंधी अवदान को समझा एवं देखा जा सकता है। प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में पर्यावरण एवं प्राकृतिक उपादानों से औषधियों के प्रयोग की जानकारी उपलब्ध होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि औषधियाँ तभी प्रयोग में लाई जाती हैं जब पर्यावरण के दृष्टिकोण से प्राकृतिक तत्व प्रदूषण–मुक्त हों। यदि प्रदूषित प्राकृतिक उपादानों से औषधि उपयोग में लाई जाती है तो वह और भी अधिक भयंकर परिणाम देगी। इसलिए पर्यावरण के प्रति भारतवर्ष प्राचीन समय से ही कर्तव्यबोध से संपृक्त रहा है। पर्यावरण शुद्ध हो; इसके लिए प्रकृति एवं मानव दोनों में संयुक्त साम्यता का वैचारिक भाव एवं व्यावहारिक प्रयोग आवश्यक है।

पारिस्थितिकी विमर्श और 'झूठी है तेतरी दादी'

डॉ. अंबिली टी.

हमारे चारों ओर जो सजीव एवं निर्जीव वस्तुएँ हैं, वे सभी पारिस्थितिकी के अंतर्गत आती हैं। आज पर्यावरण संकट एक गंभीर समस्या बन चुका है। पारिस्थितिक सजगता रखने वाले कहानीकारों में संजीव जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 'झूठी है तेतरी दादी' उनका सन् 2012 में प्रकाशित कहानी संकलन है। इसमें उन्होंने परिस्थिति संबंधी अनेक प्रश्नों को उठाया है। परिस्थितिकी विनाश के विरुद्ध उन्होंने अपना आक्रोश भी प्रकट किया है।

परिस्थिति अर्थात् जीवजंतु एवं प्रकृति के अन्य तत्वों से युक्त व्यवस्था अर्थात् हमारे चारों ओर जो सजीव एवं निर्जीव वस्तुएँ हैं, वे सभी परिस्थिति के अंतर्गत आती हैं। इस विश्व का संतुलन ही मनुष्य और प्रकृति के बीच की इस पारस्परिकता पर निर्भर है। भारतीय संस्कृति में मनुष्य और प्रकृति के बीच की इस पारस्परिकता को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। सृष्टि के आरंभ से ही प्रकृति एवं मानव का गहरा संबंध रहा है। पृथ्वी, नदी, आकाश, चंद्र, सूर्य, वन्य जंतु आदि को देवता मानकर उनकी पूजा की जाती थी। प्रकृति मानव के लिए वरदायिनी थी। भगवद्गीता के अनुसार प्रकृति के हर तत्व में दैवीयता है अथवा प्रकृति का सूक्ष्मांश है ईश्वर। प्रकृति से मानव का अलग अस्तित्व नहीं है। पर दुर्भाग्य की बात यह है कि औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण के चंगुल में पड़कर प्रकृति का दम घुट रहा है। आधुनिकता के हस्तक्षेप ने प्रकृति और मनुष्य को अलग कर दिया है। आज वन, पेड़, जानवर नदी आदि सब विनाश की स्थिति में है। वायु, मिट्टी, जल आदि का प्रदूषण ज़ोरों पर है। नदी सूख रही है। मिट्टी की उर्वरता नष्ट होती जा रही है। खेती का विनाश, सूखा, नए रोगों का उदय आदि हो रहा

है। धनलोलुप एवं लालची मनुष्य, विकास के नाम पर प्रकृति का विध्वंस कर रहा है। मनुष्य की इस दोहन प्रक्रिया के कारण अनेक पारिस्थितिकीय समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। साथ ही मानव निर्मित पारिस्थितिकीय समस्याएँ तो उससे अधिक मात्रा में हैं।

आज पर्यावरण संकट एक गंभीर समस्या बन चुका है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सभी क्षेत्रों में प्रयत्न हो रहे हैं। आज के साहित्यकार भी इनके प्रति अत्यंत जागरूक हैं। सभी भाषाओं के साहित्यकार इसकी भीषणता से पाठकों को अवगत कराने के प्रयत्न में हैं। हिंदी साहित्यकार भी इस पारिस्थितिक संवेदना को पाठकों तक पहुँचाकर उन्हें जागरूक करने में सक्षम हो रहे हैं। इस संदर्भ में हिंदी कथाकारों ने भी उल्लेखनीय कार्य किया है। उपन्यास के समान कहानी में भी जनता को जागरूक करने का सफल प्रयास हो रहा है। हिंदी कहानी अपने समय की गंभीर चिंताओं, समस्याओं एवं ज्वलंत प्रश्नों को तत्काल उत्कृष्टता से ग्रहण कर उन पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत करती है। अन्य विषयों के समान परिस्थिति संकट भी गंभीर विषय बन गया है। आज कहानी की सबसे बड़ी चिंता इसी संकट से उबरने की है। पारिस्थितिक सजगता रखने वाले कहानीकारों में संजीव का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सन् 1980 के दशक के हिंदी कथाकारों में प्रेमचंद की यथार्थवादी धारा को वर्तमान तक लाने वाले कथाकारों में संजीव का नाम अग्रणी है। वे उन कथाकारों में हैं जिनके नाम के साथ अंग्रेज़ी का 'प्रोलिफिक' विशेषण बेहिचक जोड़ा जा सकता है। संजीव की विशेषता यह है कि उनकी कहानी का विषय या मुख्य थीम कुछ और होते हुए भी वे अवसर निकालकर इस ज्वलंत समस्या पर अपनी सोच प्रकट करते हैं। उनकी कहानियाँ लोक–संस्कृति एवं शहरी–संस्कृति के द्वंद्व को पैनी दृष्टि से उभारती हैं। भूमंडलीकरण, बाज़ारी अर्थनीति और विकास की चर्चा भी इन कहानियों में है। निस्संदेह, इस युग में संजीव का नाम इसलिए महत्वपूर्ण है कि उन्होंने अपनी कहानियों में जनतंत्र का ढोंग और उसकी स्थिति पर खुलकर बहस की है। उनकी कहानियों में एक विशेष प्रकार का आक्रोश है,

विशेष प्रकार की प्रतिबद्धता है। वे मज़दूरों के बीच के रचनाकार हैं। उन्होंने प्रकृति और जीव जंतुओं के अनुचित शोषण पर आवाज़ उठाई है। प्रकृति के प्रति आत्मीयता उनकी विशेषता है।

संजीव ने पारिस्थितिकी संबंधी अनेक उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं। इनके प्रमुख कहानी संकलन हैं 'तीस साल का सफरनामा', 'आप यहाँ हैं', 'भूमिका और अन्य कहानियाँ', 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', 'प्रेतमुक्ति', 'ब्लैकहोल', 'खोज', 'गति का पहला सिद्धांत', 'गुफा का आदमी', 'आरोहण', 'दस कहानियाँ' और 'गली के मोड़ पर सूना सा एक दरवाज़ा'। 'झूठी है तेतरी दादी', संजीव का चर्चित कहानी संकलन है, जिसका प्रकाशन सन् 2012 में हुआ है।

प्रस्तुत कहानी संकलन में ग्यारह कहानियाँ हैं– 'मौसम', 'लाज लिहाज', 'सौ टके की टीचर', 'अभिनय', 'हत्यारा', 'हत्यारे', 'नायक खलनायक', 'झूठी है तेतरी दादी' 'फूटे कांच का चश्मा' और 'खबर'।

'झूठी है तेतरी दादी' में पारिस्थितिकी संबंधी अनेक प्रश्नों को उठाया गया है। संजीव जी को मशीनी सभ्यता से सख्त घृणा है। इसने सूचना और प्रौद्योगिकी के जगत में क्रांति मचा दी है। इसका उपयोग हमारे जीवन को सारहीन बना देता है। लेकिन भूमंडलीकरण एवं व्यावसायीकरण के नाम पर मनुष्य ई–धंधे की ओर आकृष्ट होकर अपना स्वत्व नष्ट कर रहा है। पशुपालन जैसे गाँव के धंधे उसके लिए हितकर नहीं। ई– धंधे से आकृष्ट 'मौसम' कहानी का नौजवान विजय प्रताप सिंह गाँव छोड़कर अत्याधुनिकता के पीछे दौड़ता है। तब विजय के पिता फतेसिंह उपदेश देते है– "बच्चा, हाथी– घोड़ा पाल लो, गाय भैंस पाल लो, भीख माँग लो, चाहे चोर डाकू बन जाओ, लेकिन ई–धंधा मत करो।"

खेती, पशुपालन आदि भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ हैं। एक समय ऐसा था, जब हम जानवरों की पूजा करते थे। अब हम जानवरों से युक्त प्रकृति की निंदा करके नई टेक्नोलॉजी के पीछे दौड़ना चाहते हैं। फतेसिंह का परिवार तो प्रतिष्ठित था। फतेसिंह तक आते आते परिवार हाथी से उतरकर भैंस बन गया। वह डरता है कि अपने पुत्र

बिजई के राज में तो भैंस से उतरकर और कोई बन जाएगा। फतेसिंह के पास आठ बैलों की खेती हुआ करती थी। अब बँटते–बिकते उनके हिस्से में पड़ी है सिर्फ दो बीघे ज़मीन। हमारे देश की खेती की हालत पहचानकर कहानीकार स्वयं दुखी है। पुत्र बिजई तो अनेक नगरों में जाकर तरह–तरह के धंधे अपनाते हैं पर किसी में भी बरकत नहीं होती है।

चूँकि संजीव जी पारिस्थितिक प्रतिबद्धता से युक्त कहानीकार हैं, इसलिए वे प्रकृति से अलग नहीं रह सकते। 'मौसम' कहानी के आरंभ में गड़ही उलीचकर मछली पकड़ने वाले लड़कों का चित्रण अत्यंत आकर्षक बन पड़ा है। गाँव के ऐसे चित्र अब न के बराबर हैं। गाँव के प्रति संजीव जी का लगाव हमारे राष्ट्रपिता गांधी जी की उक्ति 'भारत की आत्मा गाँवों में बसती है' की याद दिलाता है। कहानीकार प्रकृति में इतने रम गए हैं कि कुछ कहिए मत। उन्होंने प्रकृति का ऐसा मानवीकरण किया है जो अत्यंत आकर्षक बन पड़ा है। यथा– "इस आह्लाद में पेड़ों के किसलय तालियाँ बजा रहे थे। सरसों के दाने के बराबर टिकोरी की आँखों से आम ताकने लगे थे। महुए अपने कौंचों की बंद आँखें खोलने को कसमसा रहे थे। कोयल कूक रही थी। कुहू–कुहू! मटर की एक सूखी फली तड़ककर दांत निकाले हँस रही थी।" बिजई तो प्रकृति की इन विकृतियों का आस्वादन कर उसमें तल्लीन हो रहा था। यहाँ प्रकृति और मनुष्य की पारस्परिकता का आभास मिलता है।

प्रकृति के प्रति लगाव अनेक कहानियों में देखा जा सकता है। 'झूठी है तेतरी दादी' कहानी का यह प्रकृति चित्रण भी अत्यंत सुंदर बन पड़ा है– "आगे कोहरा था। पीछे धूल का गुब्बार। बहुत याद करने पर ठीक ठीक कुछ याद नहीं आ रहा था और उसके बगल में कुइयाँ (कमलिनी) से भरा पोखरा, जिसमें नागपंचमी को बैर के डंडे से पीट पीटकर लत्ते की गुड़िया सिरायी जाती थी।" कहानीकार को बार–बार गाँव की याद आती है, जो प्रकृति के प्रति उनके लगाव को सूचित

करता है– "गाँव घर की याद आती, बाग, सरपताही, गड़ही, नहर, चौरास्ता सब कुछ याद आता है।"

नदी तो हमारी जीवन रेखा है, हमारा वरदान है। यह मछलियों एवं अन्य कई प्राणियों का आवास स्थान है। यह हमें पीने एवं खेती के लिए पानी देती है। यह अपने आसपास के खेतों को हरा–भरा रखती है और हमें शीतलता भी देती है। पर उद्योग की बढ़ती माँग और देश में बढ़ रही बेरोज़गारी के कारण लोग खनन के धंधे को स्वीकार करने के लिए मजबूर होते हैं जो हमारे पर्यावरण के लिए हानिकारक है। 'हत्यारे' कहानी में कुकिंग कोल के खनन के लिए नदी की गति को बदलने का प्रयास चलता है। बिसुनपुर से चलनेवाली नदी है रतना। इस नदी के संरक्षण एवं सर्वस्तरीय विकास के लिए सरकार की बूट योजना के तहत अधिगृहीत कर पाँच साल के लिए रतनलाल गोयनका को सौंप दिया गया। ऐसी योजनाओं के कारण समाज के निम्न स्तर के लोग भूमिहीन बन जाते हैं और पूंजीपति लोगों को इससे फायदा मिलता है। प्रस्तुत कहानी में सरकार के चार आदमी–सिन्हा, अग्रवाल, प्रसाद एवं गोयनका रतना नदी की गति को बदलने की योजना बना रहे हैं। आधुनिकीकरण एवं भूमंडलीकरण से प्रभावित मनुष्य अपनी सुविधा के लिए प्रकृति से क्रूर विनोद करता है। वह प्रकृति को अपने वश में करना चाहता है। नक्शे में रतना नदी थी। गोयनका नदी की डोर को उठाकर दोस्तों को दिखाता है। उसके बाद वह अपने बैग से एक कैंची और फिर जेब में पड़ी नदी को निकालकर कहता है– "ये रही नदी, चलो ऐसा करते हैं, नदी के दो टुकड़े कर आपस में बाँट लेते हैं। ये रहा पहला टुकडा, लाल गाँठ माने नदी के नीचे का कोयला, ये रहा अग्रवाल साहब का। तीसरा टुकड़ा हीरा, प्रसाद जी पकड़िए, हीरा बहुत कड़ा होता है और बाकी बचा पानी हम उसी में संतोष कर लेते हैं।" वहीं कहानी का दूसरा पात्र अग्रवाल कहता है– "तीन हज़ार करोड़ टन कोकिंग कोल का सवाल है।" यह है पूंजीवाद से उत्पन्न प्राकृतिक नाश। पूंजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन द्वारा ही इससे मुक्ति संभव है। यहाँ इको– मार्क्सियन विचार प्रतिबिंबित है। नदी के प्रति

मनुष्य की इस अमानवीयता से कहानीकार अत्यंत चिंतित है। एक स्थान पर सिन्हाजी शंका प्रकट करते हैं– "क्या करते हैं, क्या इधर से हज़ारों एकड़ उपजाऊ खेत नदी के पेट में समा जाएंगे?" यही नहीं, हंसाटांड, सगौना, बिसुनपुर के सारे गाँव विशेषकर हरिजन और ट्राइबल वालों के क्षेत्र उजड़ जाएँगे। इससे पहाड़ों का भी नाश होता है। सिन्हाजी कहते हैं– "है न ! सत्तर चूहे खाकर बिल्ली चली हज को। आप तो अमेरिका की तरह बोलने लगे।" खुद पर्यावरण का नाश करके उसके महत्व पर बढ़ा –चढ़ाकर कहनेवालों की हँसी यहाँ उड़ाई गई है। यदि नदी की गति को बदलकर कोयला खोद लें तो भूमि का संतुलन बिगड़ जाता है। खनन से भूमि और वायु प्रभावित होती है। भूमिगत खुदाई का असर प्राकृतिक जलस्रोत पर भी पडता है। यह भूक्षरण का कारण बन जाता है। खनिज पदार्थों के निकाल लेने के बाद वह प्रदेश अनेक वर्षों तक ऊसर बना रहता है। हमें भूगर्भ जल भी नहीं मिलता। खुदाई के कारण धूल उड़ जाती है जिससे वातावरण भी प्रदूषित हो जाता है। कुकिंग कोल के जलाने पर अंतरिक्ष में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है, जो श्वासकोश संबंधी रोगों का कारण बन जाता है। प्रस्तुत कहानी में लोग बूट योजना के तहत प्रकृति के नाश द्वारा विकास कार्य करने जा रहे हैं। वास्तव में ये इको आतंकवादी हैं। कहानीकार रतना नदी को बचाने के अत्यंत आग्रही हैं। प्रसादजी के इन शब्दों में यह आग्रह प्रकट है– "अच्छा अगर नदी को बिसुनपुर से पार निकाल दें तो? गाँव भी बच जाएँगे। कोयला भी निकल आएगा। प्रस्तुत कहानी का सिन्हाजी, प्रसाद को ढांढस बँधाकर कहता है– "आप तो नाहक घबरा रहे हैं। मुआवजा मिलेगा इतना कि उससे कई गुना अच्छे खेत खरीद लेंगे।"

यह सुनकर प्रसाद आक्रोश में आ जाता है– "हम अपनी ज़मीन का मुआवजा काहे लेंगे? समूची ज़मीन लेंगे और ज़मीन के नीचे जो कुछ है, वह सब भी। आप सरकार के मंत्री हैं, अन्याय मत कीजिए।"

सरकार द्वारा गाँववालों पर जो अत्याचार हो रहा है, उसका उदाहरण 'हत्यारा' कहानी में है। सुबह मछली पकड़ने के लिए

मछुआरों ने नाव उतारी ही थी कि एक मोटर बोट ने उन्हें खदेड़ दिया। पचासेक पंप और उनसे जुड़े होस पाइप्स जब्त किए गए थे। इसी तरह सैकड़ों दूसरी चीज़ें। पशु पानी पीने गए तो पकड़ लिए गए। पाखाना करने के बाद रोज़ की तरह पानी छूने नदी तट पर गए बूढ़े–बच्चे समेत बारह जन पकड़ लिए गए। पशुओं की तरह उन्हें घेरकर रखा गया था। नहाने के लिए नदी में उतरी औरतों को रोककर साइनबोर्ड दिखा दिया– सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि आज दिनांक 10 जून से रतना नदी को इसके सर्वस्तरीय विकास के लिए सरकार की बूट योजना के तहत अधिकतर पाँच साल के लिए रतनलाल गोयनका को सौंप दिया गया है। नदी के जल या नदी की किसी भी संपत्ति का बिना अनुमति के उपयोग नहीं किया जा सकता। ऐसा करने वाले दंडित होंगे। इस सूचना से गाँववालों को धक्का लगा क्योंकि वे सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि कल तक जो नदी माँ की तरह उनकी अपनी थी, वे और उनके जानवर, पंछी, फसलें, जिसका पानी पीने आते थे, उसकी मिट्टी बालू से उनके आश्रय बने थे, जिसकी मछलियों से उनके भोजन में स्वाद आता था, वह नदी हठात् पराई हो जाएगी। उस पर बिंदु मात्र अधिकार नहीं रह जाएगा। जगधर की माई अपनी एक भैंस, एक गाय और एक पाड़ा लेकर जंगल की ओर चराने निकली थी कि पाड़ा अचानक मचलकर नदी की ओर भागा और मुँह लगाकर पानी पीने लगा। सरकारी सिपाहियों ने उसे घेर लिया और पीटने लगे। जानवर घुटनों के बल गिर पड़ा ऊँचे नीचे तट पर। तब तक जगधर की माई आ पहुँची। वह कातर स्वर में फरियाद करने लगी कि अरे बेटा मत मारो, मर जाएगा। यह गहन परिस्थिति बताती है कि मनुष्य के समान ही प्रकृति के तत्वों का अपना मूल्य है, अपना अधिकार है।

प्रकृति से मनुष्य को इतना लेना चाहिए जो अपनी ज़रूरतों को निभा सके। आज पशु–पक्षियों का अधिकार छिनता जा रहा है। मनुष्य प्रकृति के साथ ऐसा व्यवहार करता है, मानो उन्हें जीने का कोई

अधिकार ही नहीं है। जगधर की माई तो सिपाहियों द्वारा अपमानित हुई। उसकी रुलाई पर दोपहर तक पुलिस के कुछ जवान पसीजे और कहा– आज नदी से पानी भर लो। मगर याद रहे कोई नदी को गंदा नहीं करेगा। कल से अपना इंतज़ाम कर लो। रतना के पानी को छोड़ दें तो बिसुनपुर गाँव में बचते थे नौ कुएँ, तेरह सूखे हैंड पंप, एक पोखर, जो गर्मियों में सूखा रहता और अभी चढ़ती गर्मियों के दिन थे। नहाने की तो दूर, पीने के पानी का भी संकट आ खड़ा हुआ।

पूंजीवादी लोगों के प्रकृति शोषण से कहानीकार अत्यंत विक्षुब्ध है। प्रकृति को माध्यम बनाकर वह अपनी विक्षुब्धता प्रकट करता है। यथा– "गुस्सा चमक रहा था रतना की चिलकती लहरों पर। गुस्सा भभक रहा था दोनों किनारों के पेड़–पौधे, घास–फूल और तृण से। गुस्सा रिस रहा था मंदिरों मस्जिदों की काई लगी ईंटों से, गुस्सा चू रहा था ऊँघते मकानों से, इसका क्या मतलब हुआ कि अभी तक जिस नदी, पहाड़, जंगल को अपना समझ रहे थे, वे अपने नहीं हैं, ज़मीन अपनी नहीं, पैसा अपना नहीं– कल तक जिन्हें हम अपना समझ रहे थे, कुछ भी हमारे अपने नहीं।"

रतना नदी की स्थिति का निरीक्षण करने के लिए अखबारवाले, टी.वी वाले, नेता लोग, सामाजिक कार्यकर्ता, मास्टर, छात्र सभी आए। फिर भी शासक वर्ग चुप रहे। किसी ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। चौथे दिन भूख हड़ताल का निश्चय हुआ। रतना नदी के संरक्षण के लिए सब लोग एक साथ खड़े हो गए। वे एक स्वर में बोले– भाइयों बहनों, रतना हमारी माँ हैं, हम सब उसके बच्चे। कुछ मुनाफाखोर देश की पूरी संपत्ति को औने–पौने दाम में बेचकर अपनी जेब भरना चाहते हैं। उनकी नज़र रतना पर है। वे माँ को उसके बच्चों से छीन लेना चाहते हैं। उनकी लार टपक रही है, कहते हैं रतना रतन की खान है। इसके नीचे कोयले हैं, सोना है, हीरा है। हमें न ही कोयला चाहिए, न हीरा, न सोना, वह सब अगर है तो पूरे देश की संपत्ति है, हमें तो सिर्फ रतना का पानी चाहिए पानी।"

सरकार की बूट योजना पर जनता के आक्रोश का स्वर हम अनेक स्थानों पर सुन सकते हैं, हत्यारा कहानी का जगधर तो सरकार के शोषण का समर्थक है। लेकिन उसकी माँ इसका सख्त विरोध करती है। उसका आक्रोश देखिए– "जब तक इन लुटेरों से छीनकर हमारी नदी हमको वापस नहीं कर दी जाती, तब तक हम मर जाएँगे। लेकिन नदी के नज़दीक नहीं जाएँगे नदी हमारी है, हम सबकी है, इसका सौदा करने वाले बीच में कहाँ से पैदा हो गए भड़वे?" इस पूंजीवादी व्यवस्था में पुरुषों द्वारा स्त्री और प्रकृति का समान रूप से शोषण हो रहा है। जगधर की माँ पुरुषों के हाथों से प्रकृति को बचाना चाहती है। यहाँ कहानीकार ने इको– फेमिनिज्म या पारिस्थितिक स्त्रीवाद का समर्थन किया है। पुरुषों द्वारा शोषित औरत का चित्र 'लाज–लिहाज' कहानी में देखा जा सकता है, यथा– "खेत बिकते जा रहे थे, दारु का हिसाब बढ़ता जा रहा था, औरत की तलब बढ़ती जा रही थी। हमारा हाल तो ये था सब कि कोई गई गुज़री औरत भी उधर से गुज़रती तो चोरी–चोरी हम तीनों ही उसे ताकने लगते। औरत हमारे लिए दुनिया की सबसे बड़ी नियामत थी।"

प्रस्तुत संकलन की 'झूठी है तेतरी दादी' कहानी में भी स्त्री शक्ति का संघर्ष स्वर गूंजता है। यथा :– सदियों, सहस्राब्दियों का दमित नारी–मन आवरण के हटते ही पातालतोड़ कुएँ की तरह बल लगाकर फूट निकलता है– "गाज, फेन और फुत्कार के साथ विकार बहता, बिलबिलाता हुआ हर तरफ, हर ओर। और वह था भी रात को डोमकच के मंच पर।" प्रस्तुत कहानी द्वारा संजीव जी यह बताना चाहते हैं कि प्रकृति को शोषण से मुक्त करने के लिए स्त्री को कमर बाँधकर आगे आना चाहिए, नहीं तो इस पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व ही न बचेगा।

आधुनिक मनुष्य सुख सुविधाओं के पीछे दौड़नेवाला है। इसलिए वह अपनी अमूल्य धरती को बेचकर पैसा कमाना चाहता है। 'लाज लिहाज' कहानी में ज़मीन को बेचने के विरुद्ध आवाज़ उठाई गई है। कहानीकार लोगों को धरती के महत्व को पहचानने एवं उसमें समा

जाने का उपदेश देते हैं। भूमि और मनुष्य का संबंध तो अत्यंत गहरा है। मनुष्य के इस दोहन के कारण भूमि देवी विलाप कर रही है।

'लाज लिहाज' कहानी में मनुष्य और जानवरों की पारस्परिकता पर भी ज़ोर दिया गया है। कहानीकार की राय में गाय–भैंस के समान इंसान भी सस्ते हो गए हैं।

पूंजीवादी सरकार द्वारा गरीब किसानों का शोषण हो रहा है। किसानों की गला काटनेवाली सरकार का विरोध इन शब्दों में है यथा– "कल को सरकार ऐसा कानून ला दे कि खेत न आपके, सारी की सारी ज़मीन सरकार की है। वह आपसे जबरन छीनकर देसी बनिये को बेच दे या विदेशी बनिये को– तब आप क्या कर लेंगे?" कहानीकार आनेवाले कटु सत्य की ओर इशारा करते हैं कि अंत में खेत का अधिकारी किसान न होगा। सोना, कोयला, हीरा आदि को निकालने के लिए मटिया किसान हटाते हैं पर भूगर्भ संपत्ति पर अभी भी सरकार का अधिकार है। सरकार का मतलब है मंत्री और शेख साहब का। वास्तव में किसानों ने अपनी यह राय भी प्रकट की है कि आज का किसान तो पुराने किसान के समान नहीं। आज के किसानों की नज़र फसल पर नहीं, फसल के नीचे जो सब है, उस पर है।

जंगल तो भूमि देवी का परिधान है। भारत में तो जंगल की पूजा करने की परंपरा थी। औद्योगिकीकरण के विकास से जंगल का विनाश हो रहा है। तक्षरा भूमि का जैव संतुलन भी नष्ट होता जा रहा है। जंगल के नाश से फोटोसिंथेसिज्म की प्रक्रिया बिग़ड़ जाती है और अंतरिक्ष का तापमान भी बढ़ जाता है। अंतरिक्ष की आर्द्रता भी नष्ट होती जा रही है। जंगल के विनाश से वर्षा भी कम हो जाती है। जंगल के शोषण से उत्पन्न विपत्ति की ओर कहानीकार का संकेत देखिए– "करोड़ों की वन संपदा नष्ट हो जाएगी। वैसे भी हर लिहाज से जंगल को बचाना हमारा धर्म है।"

जल हमारे लिए अत्यंत अनिवार्य है, उसी प्रकार जल की अधिकता हमारे लिए विनाशकारी भी बन जाती है। अधिक वर्षा के कारण बाँधों में पानी बढ़ जाता है तब बांधों को खोल दिया जाता है।

उस समय निचले इलाकों में बाढ़ आ जाती है। बाढ़ की भीषणता का एक चित्र देखिए– "नदी तभी बांसुकी बन जाती, जिधर किनारे के सैकड़ों गाँव डूबने लगते, तटवासी ऐसे चीखने तड़पने लगते, जैसे अजगर को देखकर चूहे। कभी रस्सा बनाकर मंथन चलने लगता और टेबल पर चौदह रतन खनखनाकर गिरने लगते, कभी वह टग आफ वार का रस्सा बन जाती, दोनों ओर से ज़ोर आजमाइश होने लगती।"[23]

जल विद्युत योजनाओं के लिए सरकार द्वारा बाँधों का निर्माण होता है। गलत निर्माण एवं प्राचीनता के कारण डैम टूट जाता है। यह निचले इलाकों में बाढ़ का कारण बन जाता है। इससे कृषि भूमि पानी में डूब जाती है जिससे अनेक वनस्पतियों एवं जीव जंतुओं का नाश होता है। जीव जंतुओं का वास–स्थान भी पानी में डूब जाता है। 'नायक–खलनायक' कहानी में डैम के टूटने की आशंका का भीषण चित्र है। यथा–"वह प्रलयंकर बारिश थी। डैम लबालब भर गया था। बाँध के फाटक खोले नहीं गए कि कहीं हमारा शहर न बह जाए पूरा का पूरा। रोज़–रोज़ यज्ञ और अनुष्ठान किए जा रहे थे।" डैम के टूटने के भय के साथ लोग दिन काट रहे थे। किसी की समझ में नहीं आया कि क्या करें। ऐसे अवसर पर समाज सुधारक रंजीत, डैम के पासवाले लोगों को आनेवाली भीषणता से बचाने की कोशिश करता है। उसने सबको ललकारकर इकट्ठा किया। रस्से से बस को बाँधा। सातों फाटक खोल दिए गए। थोड़ी देर और होती तो डैम टूट जाता। हज़ारों लोग जल समाधि ले लेते पर सब लोग बच गए। डैम बच गया। शहर बच गया। बच्चे बच गए। इस प्रकार रंजीत की कृपा से सबका जीवन बच गया। दुर्गापुर की स्टील कंपनी के जी.एम ने रंजीत को बुलाकर पर्सोनेल डिपार्टमेंट में स्पोर्ट्स ऑफिसर की नौकरी दे दी।

'झूठी है तेतरी दादी' में पर्यावरण के लिए खतरनाक प्रश्न उठाए गए हैं। हमारी प्रकृति में ऐसे अनेक प्राणी भी हैं जो पर्यावरण के लिए विनाशकारी हैं। हम सब जानते हैं कि रोगों को फैलाने में मच्छर की भूमिका बहुत बड़ी है। कहानीकार मच्छर के निवारण हेतु अपनी राय प्रकट करते है– "लेकिन अब वह एनसेफेलाइटिस से मर रहा था और

यह सच हमें स्वीकार न था। जिस शान से वह जिया, मरना भी उसी शान से चाहिए था, मगर यह मरदूद मच्छर! एनेसफेलाएटिस! कितनी नीच ट्रैज़डी थी वह। दुनिया में हज़ारों, लाखों बल्कि करोड़ों लोग कीड़े मकौड़ों की तरह बिलबिलाते हुए जीते हैं, मर जाते हैं। मुझे ऐसी ज़िंदगी से नफरत है।"

जीयपुर नामक स्थान में एक आई.ए.एस की बारात में डोमकोच शूट करने गई महिला ने देखा कि वहाँ के किसी भी घर में शौचालय की सुविधा नहीं थी। लेकिन मोबाइल हर घर में था। यहाँ प्राथमिक आवश्यकताओं को भूलकर अत्याधुनिकता के पीछे दौड़ने वाले मनुष्यों का चित्र है। ये लोग अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं देते। भूमंडलीकरण ने कितना प्रभावित किया है, मनुष्य के जीवन को!

आधुनिकता से प्रभावित मनुष्य नई–नई सुविधाओं के लिए भोलेपन के प्रतीक गाँव को छोड़कर नगर की कृत्रिमता की ओर आकृष्ट हो जाता है। शहरी लोग तो अत्यंत स्वार्थी हैं। ये वैयक्तिकता को प्रमुखता देने वाले हैं। वे पराये लोगों के साथ सुख–दुख के भागीदार नहीं बनना चाहते। यह मूर्ख मनुष्य नगर में प्राप्त सुख–सुविधाओं को सभ्यता समझकर अपने को सभ्य मानता है। वास्तव में शहर में मूल्यच्युति हो रही है। 'झूठी है तेतरी दादी' में गाँव से नगर बन जाने की स्थिति का एक स्पष्ट चित्र कहानीकार ने खींचा है– "गाँव के बारे में क्या–क्या रोमांटिक कल्पनाएँ हुआ करती थीं हमारी। बाग होंगे, लैंडस्केप होंगे। पर यहाँ न बाग, न बंसवारी, न नदी, न शहर, न मोर। छितराए पेड़, कुछ बबूल और बेहया के झाड़, कुछ कच्चे, कुछ पक्के मकान। जातियों के हिसाब से बँटे टोले। खंभे थे, पर उसमें तार नहीं थे। सड़क गड्ढे में पड़ी कराह रही थी। पोखर के नाम पर एक डबरा, चारों तरफ से बेहया के झाड़ों के बीच घुटने पर पानी जिसमें सुअर लोट रहे थे। शौचालय किसी के घर नहीं था। अलबत्ता डिस्क एंटीना कई घरों पर। जनरेटर से चलता है सबकुछ। पुक पुक करती ट्यूबवेल और आटा चक्की की धुन। एक अजीब–सी उदासी तारी थी कच्चे–पक्के घरौंदों पर।"

लुप्तप्रायः सुकुलपुर गाँव की दशा देखकर कहानीकार स्वयं दुःखी है। उस गाँव का सौंदर्य तो नष्ट हो गया। कहानीकार गाँव की सुंदरता को बार–बार याद करते हैं। 'झूठी है तेतरी दादी' का सकुलाइन कहता है–"याद आवता कुछ? हमरा के चोरा चोरा के आम, अमरूद, कटहल, जामुन लाकर के देते रहलू।" कहानियों में ऐसे अनेक चित्र हम देख सकते हैं जो पारिस्थितिकी के प्रति के आस्था सूचित करते हैं।

वास्तव में भूमि का वास्तविक अधिकारी मनुष्य ही नहीं, सारे चराचर भी हैं। हम पारिस्थितिकी को बिगाड़ने का प्रयास करें तो स्वयं हमारा ही नाश होगा। 'हत्यारे' कहानी में इसका संकेत कहानीकार ने दिया है। नदी को टुकड़े करने की योजना करने वालों को अंत में एहसास होता है–"तभी अरे अरे खून! चारों की उँगलियाँ चारों की ओर उठ गई। चारों की जेब में नदी का एक–एक टुकड़ा था। वे समझ नहीं पा रहे थे कि खून कहाँ से निकल रहा था– जेब में पड़ी नदी से या उनकी देह से।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'झूठी है तेतरी दादी' ऐसा कहानी–संकलन है जिसमें पारिस्थितिकी संबंधी अनेक चर्चाएँ हुई हैं। प्रकृति को बचाने से तात्पर्य मानव जाति को बचाना है। आगामी पीढ़ी को इस महाविपत्ति से बचाने में हमें सतर्क रहना चाहिए। अतः पारिस्थितिकीय विमर्श की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

एक स्वच्छ पर्यावरण हमारे बच्चों का अधिकार है और हमारा दायित्व!

‘आधार–विच्छेद’ का काव्यात्मक अंकन

डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत

‘आधार–विच्छेद’ शब्द का प्रयोग अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त ‘डिसप्लेसमेंट’ के पर्यायवाची शब्द के रूप में नहीं किया जा रहा है। विचार करने पर लगता है कि आधार–विच्छेद शब्द में भौगोलिक संबंध विचलन के अलावा मानव की प्रकृति–अंतर्प्रकृति में होने वाले परिवर्तन– विच्छेद के भाव भी प्रत्यंकित हैं। ‘आधार’ शब्द का प्रयोग यहाँ ‘मानव जीवन और प्रकृति’ की स्थिति–अवस्थिति को रूपायित करने वाले तत्व के रूप में किया जा रहा है जिसके बिना दोनों का नैसर्गिक जीवन संभव नहीं हो पाता। जीवन के व्यापक संदर्भ में जैव–वैविध्य, परंपरा, भाषा–संस्कृति आदि जीवन को बुनने वाले आधारभूत तत्व होते हैं। इन तत्वों से नाता तोड़ना जीवन के साथ नाता तोड़ने के बराबर है। प्रकृति तथा अंतर्प्रकृति की संबंध–विलुप्ति के जीवन–प्रकरण को सूचित करने के लिए हिंदी में बहुत से शब्द प्रचलन में हैं– विस्थापन, प्रवास, स्थानांतरण, स्थान–च्युति, स्थान–विचलन, बेदखली, निष्कासन, निष्क्रमण, उन्मूलन, आधार–विचलन, आधार–हनन, आधार–विलुप्ति, आधार–विच्छेद, पृथक्करण आदि। यदि कोशगत अर्थ लिया जाए तो जितने सारे शब्दों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, उनमें मूल (जन्म) स्थान से हटने का भाव न्यूनाधिक मात्रा में अंतर्भूत है। इतिहास की शक्तियों के घात–प्रतिघात से सत्तात्मक संबंध के तले आधार–विच्छेद की स्थितियाँ कायम होती हैं। आधार–विच्छेद के बाद किसी की ‘यथावत् स्थापना’ नहीं होती है। इस विचलन से बहुत सारी

चीज़ें हमेशा के लिए हमारा साथ छोड़ जाती हैं जो मानव की अंतः प्रकृति की रचना में सहयोग प्रदान करती हैं।

आधार–विच्छेद पर इस वक्त बेहद दुख के साथ मुझे विचार करना पड़ रहा है। अब भी रूस की चढ़ाई यूक्रेन पर हो रही है। समाचार पत्रों में इसकी खबरें आ रही हैं कि तकरीबन पचास लाख से अधिक लोग यूक्रेन से विचलित हो गए हैं और होते जा रहे हैं। मानव के इतिहास में आधार–विच्छेद प्रारंभ से होता चला आ रहा है, पर उस दौर में विच्छेद एक स्वाभाविक प्रवृत्ति जैसा लग रहा था, स्वेच्छा पर निर्भर था। यह इसलिए कहा जा रहा है कि मानव अन्य प्राणियों की तरह अपने नैसर्गिक संवेगों की पूर्ति हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान की तरफ जाया करता था। यहाँ नैसर्गिक संवेगों से मेरा आशय खाद्य पदार्थों की तलाश, मैथुन की तलाश, प्राण को बचा लेने की स्वाभाविक प्रवृत्ति से है। इतिहास में एक ऐसा दौर आ गया है कि जब मानव की आबादी में वृद्धि होने लगी तो अपने लिए आवश्यक खाद्यान्नों की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए खेती करने की आवश्यकता महसूस हुई। खेती के इतिहास के साथ मानव की संस्कृति एवं सभ्यता का भी इतिहास प्रारंभ होता है। 'संस्कृति' का सीधा संबंध मानव जीवन की परिवर्तित स्थिति से है। अपने परिवेश को अपने अनुकूल परिवर्तित करने की कला मानव के पास है। खेती इसका उत्तम उदाहरण है। खेती के विस्तार के साथ मानव के जीवन में विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक संस्थाओं की स्थापना हुई है अर्थात् परिवार, प्रशासन, न्याय–नीति–मूल्य व्यवस्था, कला, साहित्य आदि को इसके विस्तार के रूप में हम देख सकते हैं। ऐसा होते हुए भी युद्ध, आतंक, प्राकृतिक आपदा, पर्यावरणीय परिवर्तन, राजनीतिक, आर्थिक उथल–पुथल आदि अनेकानेक कारणों से आज भी मानव अपने जीवन के आधारों से निष्कासित होता जा रहा है जिसके मूल में अनिच्छा काम करती है। इससे मानव का दिल पीड़ा से आंदोलित हो उठता है, खोखला हो

जाता है, चेतना चूर–चूर हो जाती है। ऐसे में धीरे–धीरे अपनी परंपरा से, अपनी संस्कृति से, अपनी भाषा से, अपने रागारुण संबंधों से, अपने जनों से मानव विच्छेद कर जाता है। इस हटाव–कटाव से जीवन में दुख का काला झंडा फहराने लगता है जिसका विविधात्मक साहित्यिक अंकन वर्तमान में दिखाई देता है।

'आंसू का वजन' शीर्षक केदारनाथ सिंह के काव्य–संकलन में 'दुख दो' नाम से एक छोटी–सी कविता है। इस कविता में दुख की विराटता को इस प्रकार दर्शाया गया है कि जो आधार–विच्छेद के शिकार हुए लोगों की जिंदगी के लिए सौ फीसदी लागू होती है। कविता की पंक्तियाँ हैं– "दुख का कोई पहाड़ नहीं होता/कोई समुद्र नहीं होता दुख का /सिर्फ हाथ होते हैं/ छोटे–छोटे/ जो दिन भर रस्सी की तरह/बुनते रहते हैं दुख को।"[1] आधार के हट जाने से दुख का ढेर जिंदगी में भर जाता है। आधार के छूट जाने की चिंता चिता तक साथ चलती रहती है। चलते रहने के भाव को या अपने को विस्थापित कर देने के जीवन संदर्भ को 'नोमैड' शीर्षक कविता वाणी देती है। अंजू रंजन का कहना है कि "शहर बदल–बदल जाते हैं/ देश बदल जाता है/ धरती आकाश/पेड़–पौधे जीव–जंतु/ यहाँ तक कि बादल/तूफान और मौसम बदल जाते हैं/ पर नहीं बदलते/ मेरे मंजिल के रास्ते। वसुधैव कुटुंबकम्/के मंत्र के साथ/रास्ते मेरे साथ चलते हैं/ एशिया यूरोप और/अफ्रीका ले जाते हैं/मुझे ये रास्ते।"[2] इस कविता में एक शब्द बार–बार आता है, वह हैः 'बदलना'। इसके साथ एक और शब्द मन में रह जाता है– 'रास्ता'। इस प्रसंग में 'बदलना' ज़िंदगी की परिवर्तनशील प्रक्रिया तथा 'रास्ता' जीवन के अग्रगामी सफ़र को सूचित करता है जो जीवन के दुख को हरता है।

भौगोलिक स्तर पर होने वाले विचलन से हमारा बहुत कुछ बहता चला जाता है। नरेश सक्सेना की कविता कहती है कि "अब नहीं मेरे लिए/हल नहीं, बैल नहीं/खेतों की गैल नहीं।/एक हरी बूंद

नहीं / तोते नहीं, ताल नहीं, आर्द्रा नक्षत्र नहीं। / कज़री, मल्हार नहीं मेरे लिए / जिसकी कोई नहीं ज़मीन / उसका नहीं कोई उसका नहीं कोई आसमान।"[3] कवि का आत्मदुख यही है कि अब मेरे लिए कुछ नहीं है, जो मेरे लिए प्यारा था, जो जीवन का आधार था, अब वे मेरे साथ नहीं रहे हैं। इन सबके हनन के कारक कौन–कौन से तत्व हैं, कविता सोचने के लिए पर्याप्त जगह छोड़ती है। खेती एक पेशा नहीं, जीवनचर्या है, जीवन का आधार है। कॉर्पोरेट खेत, एकल खेती के परिव्यापन के संदर्भ में इन पंक्तियों का अलग महत्व है। हरी बूँद का न रहना परिवेश के सूखे हो जाने का संकेत मात्र नहीं दे रहा है, वह तो आंतरिक सूखेपन को सीधा–सीधा व्यक्त करता है। इससे नदी सूख जाती है, आर्द्रा नक्षत्र गायब हो जाता है। कविता अपने कलेवर में निषेधात्मक शब्द का बार–बार प्रयोग करके जीवन के विविधात्मक रंगों के वीरान होते चले जाने के परिवेश को चित्रांकित करती है। तोते, ताल, नदी, नक्षत्र, कज़री आदि नहीं रह गए हैं तो फिर हमारे जीवन में क्या रह गया? उसके जीवन में आसमान (सपना) नहीं रहता है। सपनों से विरत होकर वर्तमान तक सीमित एवं जीवित रहना जानवरों का लक्षण होता है, अतीत–वर्तमान– भविष्य के त्रिकोणों से होकर सपनों का संसार मानव सजा सकता है, पर आधार के बल पर। आधार या टिकाने के निष्कासन से मिट्टी की सोंधी गंध, पानी की तरलता, ओस का प्रकाश, फूलों की रंग–खुशबू सदा के लिए हमारे परिवेश से चले जाते हैं।

आधार–च्युति / विचलन के काल में कविता समसामयिक जीवन के प्रति, उसके अंतर्विरोधों के प्रति उन्मुख रहती है। समकाल का अनुभव यही है कि कविता वर्तमान विकास संबंधी परिकल्पनाओं पर भी सवाल करती है और पहचानती है कि वे मानव की प्रकृति और अंतःप्रकृति को शून्य कर रही है। पूँजीवादी विकास–परिकल्पना संपूर्ण

धरा को मरुस्थल बना देने में मशगूल है, साथ ही वह जीवन में अस्वतंत्रता, असमानता, बंधुत्वहीनता फैलाती है, जीवन में निष्क्रियता विकसित करती है। इस वेला में अशांति, अन्याय, क्रूरता, परतंत्रता, अधिकारहीनता के अंधेरे में मानव जीने के लिए विवश होता है। मानव महसूस करने लगा है कि वह हरदम निर्बल होता जा रहा है। सबलता से मेरा तात्पर्य मानव के अंतस की, जीवन की गुणात्मक वृद्धि से है। न्याय, अधिकार, अवसरों के संरक्षण से है, मानव की अंदरूनी क्षमताओं के बचाव से है। संकायों से संपन्न मानव ही अपने परिवेश को सकारात्मक ढंग से परिवर्तित करने में सफल होता है। वही सच्चे मायने में स्वतंत्र मानव है। अस्वतंत्रता से घिरा मानव दुर्बल है। ऐसे मानव का जीवन असभ्यता या सर्जनहीनता का वाचक बन जाता है। अपनी अंतःप्रकृति की सर्जनात्मकता को बनाए रखने के लिए प्रकृति की वैभवमयता की ज़रूरत है। इसलिए कवि एकांत श्रीवास्तव का कहना है कि "मुझे वसंत की खुशबू भरी/पूरी पृथ्वी दो/कविता लिखने के लिए।"[4] कविता लिखना एक चलता मुहावरा नहीं है, वह मानव की स्वतंत्रता, सर्जनात्मकता, इच्छा के नूतन विस्तार का आक्षरिक प्रयत्न है। लिखना अपने आप में जीवन का विस्तार है, दूसरों से जुड़ना होता है, सामाजिकता की पहल होती है। अपने विस्तार के लिए कवि को चाहिए, वसंतकालीन खुशबू भरी प्रकृति। वसंत काव्यात्मक भाषा में प्रकृति का यौवन है, श्रृंगार है। प्रकृति के समृद्धिपूर्ण सान्निध्य में ही मानव के मन में वसंत का संक्रमण होगा। प्रकृति–मानव दोनों के स्नेहमय पारस्पर्य में ही जीवन की होली–रंगोली–दीपावली है। अमुक कविता में आया 'पृथ्वी' भी अर्थवान् शब्द है जो प्रत्यक्षतः पृथ्वी की व्यापकता को ध्वनित करता है। उसे अपनी संपूर्णता में चाहने वाला कवि–मन प्रकृति के समूचे वैविध्य को भीतर अनुभव करता है यह भी अनुभव करता है कि प्रकृति की अनुपस्थिति में 'अक्षर' 'द्वार है। प्रकृति

का सौंदर्यात्मक विस्तार तथा मानव का सर्जनात्मक विस्तार समानांतर चलने वाला होता है। दोनों की स्नेहमयी संपृक्ति जीवन की सुंदरता के परिपाक की आह्लादात्मक स्थिति कही जाती है। प्रकृति की नैसर्गिक वैभवमयता में आनंद का उत्सव है। प्रकृति आनंद है, सौहार्द है, संतोष है। इसलिए राजेंद्र उपाध्याय हर पेड़ को कविता के रूप में परिभाषित करते हैं और बताते हैं कि हर बच्चे की खुशी में एक 'पका आम' है। उसी में 'रसना' (जिह्वा) की स्वाभाविकता है। यह कृत्रिम उपभोगपरक बाज़ारी माल का प्रतिरोध भी है। कविता जानती है कि मैंगो फ्रूटी में मैंगो (आम) नहीं है, जीवन की रसनीयता नहीं है। कविता की भाषा में 'कुछ फूल पांत', 'कुछ मोर पंख' भी बच्चे के लिए किसी भी दर 'कविता' से कम नहीं, खुशी के रस से कम नहीं।[5] जब मानव अपनी आत्मा की रसनीयता से वंचित रहेगा, तो अपने जीवन के 'आधार' से ही वह खिसक जाएगा। सोमप्रभ इस अंदाज़ में बताते हैं कि "मैं एक विस्थापित/अपनी जगह से/अपनी उमर से/अपनी आत्मा से/बेदखल होता/अपनी ही देह से/फेंक दिया जाता बाहर।"[6] मार्के की बात यह है कि कवि यहाँ देह–आत्मा के स्तर पर विस्थापित हो जाने की बात करता है, आधार से जुड़ने की बलवती इच्छा व्यक्त करता है। अपरिमित क्षमताओं के धनी मानव की आत्मा विस्थापित हो जाने के क्रम में अपनी क्रियाशीलता से, आत्मपरितोष से विलुप्त हो जाता है। शरीर के स्तर पर होने वाला आधार–विच्छेद भौगोलिक स्तर पर भले ही संपन्न होता है, पर मानसिक स्तर पर आदमी अपने सांस्कृतिक परिवेश से दूर चला जाता है। आज का मानव यह अनुभव कर रहा है कि इस स्थानांतरण से भीतर की आदमियत निष्क्रमित होती जा रही है, चारों तरफ निर्जीवता का परिव्यापन हो रहा है, आधार–अधिकार छीने जा रहे हैं। मनोहर बिल्लौरे की कविता 'मिल जुलकर' की पंक्तियों में जीवन के आधार के नष्ट होते जाने का जिक्र

है। "विकास के नाम पर/छीना जा रहा है किसानों से/उनका हक, घर–बार ज़मीन/कार्य, संस्कृति, उनके रिश्ते/जल–जंगल–ज़मीन हवा, पानी/प्रकाश को बेचने, पाने उनपर/आधिपत्य राजधानियों में हो रहे/गहन और गहनतर विचार–विमर्श।"[7] संकेत इस तरफ़ है कि वर्तमान अर्थतंत्र मशीनीकृत अति–उत्पादन के पागलपन का शिकार बनकर जीवन को संकीर्ण कर रहा है। यहाँ उत्पादन उपयोग के लिए नहीं, उपभोग के लिए किया जा रहा है। पेट के खचाखच भर जाने के बाद भी एक आइसक्रीम की चाहत बनी रहती है, तो समझिए कि वह उपभोग के नशे का परिणाम है। आज हम वस्तुओं के लिए जी रहे हैं, वस्तु हमारे लिए नहीं हैं। पहले–पहल मानव–प्रकृति के बीच आदान–प्रदान चलता था, ऐसे सहसंबंध/अंतर्संबंध में प्रकृति की सर्जनशील चाक्रिकता बराबर बरकरार रहती थी, पर आजकल इस कड़ी में उपभोग एक इकाई के रूप में जुड़ गया है जिससे मानव–प्रकृति के बीच का समीकरण गड्डमड्ड हो गया है। उपभोग की संस्कृति ने, बाजार ने मानव को 'हर्ता' का दर्जा दिया है। 'लिखे में दुक्ख' शीर्षक कविता में लीलाधर मंडलोई लिखते हैं– "बाज़ार हिंसा का स्थल/यहाँ से शुरू होता है, आपका वध/आपको अपनी मृत्यु का बोध नहीं होता है।"[8] नीरज नीर 'जंगल में पागल हाथी और ढोल' में कहते हैं कि यह वध किन–किन स्तरों पर संभव होता है। कवि कहते हैं कि "आधुनिकता के नाम पर/छीन ली गई हम से/हमारे हज़ारों साल की सभ्यता/कहाँ हमारी सभ्यता पिछड़ी है/अपनी ज़मीन, धर्म, सभ्यता से हीन/जड़ से उखड़े, हम ताकते हैं, आकाश की ओर।"[9]

हमारे जीवन का स्वाभाविक समीकरण व संतुलन बदल गया है, बिगड़ गया है। प्रकृति के साथ हमारे मन का जो संबंध था, हमारी संस्कृति के साथ जो रिश्ता था, वह आजकल नहीं रहा है। हमारे संबंध प्रकृतिपरक थे, पारिवारिक थे, उसमें प्रेम की गर्मी थी, मन की तरलता

थी, भावों की भंगिमा थी। इसलिए ही वे संबंध ठोस आधार लिए हुए थे। कुमार वीरेंद्र की कविता इसी बात की याद दिलाती है। कविता कहती है कि 'हमारे दादा–दादी, नाना–नानी, काका–काकी यहाँ तक कि माँ–बाप ने ही बताया है कि चाँद मामा है, नदी माँ है, बिल्ली मौसी है, कनखोज़र भाई है।'[10] समकालीन कविता इस प्रकार के भावात्मक संबंधों को बचाने की ज़रूरत को पहचानती है। सबके नष्ट होते जाने के भय के बीच उदयप्रकाश की कविता बचाने की बात करती है– "बचाना चाहिए तो बचाना चाहिए / गाँव में खेत, जंगल में पेड़, शहरों में हवा / पेड़ों में घोंसले, अखबारों में सच्चाई / राजनीति में सिद्धांत, प्रशासन में मनुष्यता / दाल में हल्दी।"[11] कवि मन का सार इतना है कि मानव अपनी 'प्रकृति और अंतः प्रकृति' को बचाए और जीवन को सुंदर बनाए। जिस प्रकार विभिन्न सुरों से, वाद्य–यंत्रों के नाद के सम्यक् मिलन से संगीत सुरभित होता है, उसी प्रकार प्रकृति के वैभव की लय–विलय में ही जीवन की आभा रहती है।

कविता की पहचान है कि जीवन की उन्नति उसे कहा जाएगा, जिससे जीवन की गुणवत्ता का विकास हो, सामाजिक न्याय का उत्थान हो, अधिकारों का संरक्षण हो, जीवन की संभावनाओं का खुलन हो, दक्षता का विकास हो। कविता चाहती है कि इनसे मानव अपने जीवन में स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सके। आधार–विच्छेद से मानव जीवन में अस्वतंत्रता पनपती है, मानव की आत्मनिर्भरता पर कुल्हाड़ी लगती है। साथ ही उसके जीवन में न जाने कैसे स्वास्थ्यहीनता, अधिकारहीनता, अपमान, अहिंसा आदि घुस जाती है। जिन दबावों व तमाम असंगतियों का अनुभव अब का मानव करता है, उनको समकालीन कविता संबोधित करती है क्योंकि कविता अपने समय की साक्षी होती है। वह जीवन की प्रकट–अप्रकट सच्चाइयों का ज्वलंत दस्तावेज़ है। उसमें समय के काले–सफेद अनुभव अंकित होते हैं। वह जीवन के

अभाव, विषमता का बयान होती है। इस बयान के साथ ही वह जीवन को बदरंग करने वाले सभी प्रकार के कुचक्रों की पोल खोल देती है, साथ ही मुहिम का एक नूतन राजमार्ग प्रशस्त करती है।

संदर्भ सूची–

1. सिंह, केदारनाथ, आँसू का वज़न, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2019 पृ. 16 मुद्रित
2. रंजन, अंजू, विस्थापन और यादें, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2021 पृ. 40 मुद्रित
3. सक्सेना, नरेश, सुनो चारुशीला, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2013 पृ. 25 मुद्रित
4. श्रीवास्तव, एकांत, अन्न हैं मेरे शब्द, (कविता की ज़रूरत–1) हरियाणा, आधार प्रकाशन 1994 पृ. 85.86 मुद्रित
5. उपाध्याय, राजेंद्र, "हर पेड़ एक कविता है" वागर्थ (अगस्त 2003) पृ. 97
6. सोमप्रभ "सुनो सुनो", बनासजन (फरवरी–अप्रैल 2012. अंक 2–4) पृ. 220
7. बिल्लौरे, मनोहर, "मिल जुलकर", नया ज्ञानोदय (सितंबर 2015) पृ. 98–9
8. निश्चल, ओम (सं) "हत्यारे उतर चुके हैं क्षीरसागर में" (लीलाधर मंडलोई की कविताएँ), इलाहाबाद साहित्य भंडार, 2014, पृ. 289. मुद्रित
9. नीर, नीरज, "जंगल में पागल हाथी और ढोल"। परिकथा (अंक 54, जनवरी–फरवरी 2015) पृ. 94
10. वीरेंद्र कुमार, "अपना कोई रिश्ता", समकालीन भारतीय साहित्य (अंक–134, नवंबर–दिसंबर 2007), पृ. 107
11. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम (बचाओ), नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2009, पृ. 28–30

जरूरत है पर्यावरण पत्रकारिता पर शोध की

डॉ. रूपचंद गौतम

समाज एक गतिशील एवं सक्रिय संगठन है। यह उन व्यक्तियों का विशिष्ट समूह है जो विशेष रूप से देश, काल, प्रथा, संस्कृति, भाषा तथा धर्म से जुड़े होते हैं। इनके क्रमबद्ध ज्ञान को समाज विज्ञान भी कहते हैं। जब व्यक्ति का बौद्धिक विकास होता है तब उसमें जिज्ञासा की प्रवृत्ति जागृत होती है। वह ज्ञान प्राप्त करता है। इच्छाओं को जन्म देता है। संकल्प करता है। विकल्प तलाशते हुए शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को अपनी मुख्य आवश्यकताएँ बना लेता है। ये आवश्यकताएँ बिना सूचनाओं के संभव नहीं हैं। सूचनाएँ पत्रकारिता के अंतर्गत आती हैं। आधुनिक युग में सूचनाएँ ही व्यक्ति की सबसे बड़ी धरोहर हैं। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि सूचना व समाज एक सिक्के के दो पहलू हैं, तो अतिशयोक्ति न होगी। अर्थात् सूचना के बिना समाज गतिशील नहीं हो सकता और समाज के बिना सूचनाएँ। अतः जानकारी के अभाव में व्यक्ति का जीवन दुष्कर हो जाता है।

पहाड़ों, मैदानों, जंगलों, कारखाने में जब आग लगती है, तब धुआँ तो निकलता ही है, जीव–जंतुओं की हानि भी होती है। प्राणियों को खुली हवा में साँस लेना भी दुर्लभ हो जाता है। महानगरों की सड़कों पर रेंगते ट्रैफिक से न केवल ध्वनि प्रदूषण बढ़ता है बल्कि वायु प्रदूषण भी गति पकड़ लेता है। दिल्ली की हवा न जाने कितनी बार जहरीली घोषित हो चुकी है। दीपावली के अवसर पर वायु प्रदूषण के

सभी मानक ध्वस्त हो जाते हैं। आतिशबाजी के खिलाफ चलाए गए सभी अभियान हर बार बेअसर हुए हैं। एक तरफ महानगरों में मलमूत्र को नदियों में बहाया जा रहा है तो दूसरी तरफ सफाई के नाम पर करोड़ों रुपये बटोरे जाने की योजनाएँ बनती रहीं, फिर भी जल प्रदूषित ही बना रहा। प्रदूषित जल से न जाने कितने प्रकार की बीमारियाँ जन्म लेती हैं। खाद्य पदार्थों में बढ़ते रासायनिक प्रयोगों ने तो कृषि प्रदूषण को मानो शाम का रिश्तेदार ही बना दिया।

हमारे चारों ओर जो कुछ भी उपस्थित है, वह सब कुछ हमारा पर्यावरण है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जिस परिवेश में साँस ले रहे हैं, वह पर्यावरण है। फ्रांसीसी शब्द ऐनेवीरोनर से निकलता अर्थ पारिस्थितिकी अथवा प्रकृति है। इसके अंतर्गत वे सभी परिस्थितियाँ, दशाएँ अथवा प्रभाव जो जैवकीय समूह पर प्रभाव डालते हैं, समावेशित हो जाते हैं। गैर–जीवित वस्तुएँ तथा मिट्टी के प्रकार, क्षेत्र की भूगर्भिक संरचना, जलवायु–जिसमें प्रकाश, ताप, वायुदाब, वर्षा आदि शामिल हैं। समुद्र की निकटता आदि तथा जीवित वस्तुएँ जैसे– पौधे, पशु–पक्षी आदि शामिल हैं। पर्यावरण मनुष्य के क्रियाकलापों का स्थल है जिस पर मानव जीव–जंतु तथा प्राकृतिक तत्वों के साथ संबंध स्थापित कर अपना अस्तित्व बनाए रखता है।

प्रदूषण एक ऐसी अवांछनीय स्थिति है जो पर्यावरण को दूषित करती है। भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परिवर्तनों के द्वारा हवा, जल और धरातल अपनी नैसर्गिक गुणवत्ता खो देते हैं जो जीवधारियों के लिए हानिकारक होते हैं। इससे जीवन प्रक्रिया बाधित होती है एवं सांस्कृतिक जीवन को क्षति पहुँचती है। हिमालय और अंतरिक्ष भी प्रदूषण की चपेट में आ गया है। दिल्ली जैसे महानगर का पर्यावरण तो हर तरह के प्रदूषण से प्रभावित हो रहा है। यहाँ न हवा स्वच्छ बची है और न पानी। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि जब पर्यावरणीय घटकों का अंधा–धुंध दोहन किया जाएगा तो पर्यावरण तो

प्रदूषित होगा ही। वातावरण को प्रदूषण रहित बनाना हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है, पर मनुष्य अपने निजी स्वार्थ में पर्यावरण के साथ हमेशा ही छेड़छाड़ करता रहा है।

पर्यावरण को उन सभी स्थितियों और प्रभावों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो जीव के विकास व जीवन को प्रभावित करता है। पर्यावरण संरक्षण के लिए विभिन्न कानूनों के बावजूद पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास हो रहा है और वन्यजीव नुकसान सह रहे हैं। निरीक्षण मशीनरी प्रभावी होनी चाहिए और कानून परिचालन प्राधिकारियों को अधिक सख्त और चौकन्ना होना चाहिए। पर्यावरण के संरक्षण के लिए एक लंबा रास्ता सभी लोगों को पर्यावरण के दुष्प्रभावों के बारे में जानकारी सुनिश्चित करना हो सकता है। देश के हर व्यक्ति को औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करके बदलती पर्यावरण स्थितियों के बारे में जागरूक बनाया जाना चाहिए।

प्राकृतिक वातावरण के साथ–साथ सामाजिक वातावरण को भी स्वच्छ एवं विकासात्मक बनाए रखना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है। आज समाज में विभिन्न प्रकार के ऐसे सामाजिक मुद्दे हैं जो सामाजिक विकास में रुकावट बने हुए हैं, जबकि उसका कर्त्तव्य आगामी पीढ़ियों के लिए वातावरण को स्वच्छ बनाए रखना है। जनसंख्या वृद्धि ने प्राकृतिक व सामाजिक वातावरण के संतुलन को बिगाड़ दिया है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ एकदम बिखर चुकी हैं। आर्थिक विकास बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है। स्वच्छ पर्यावरण का मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोग है। पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य का गहरा संबंध है, इसमें संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। पर्यावरण अधिकार मानव अधिकारों का एक हिस्सा है।

मानव का अस्तित्व विभिन्न प्रकार की पाई जाने वाली वनस्पतियों एवं जीवों पर निर्भर होता है। इसके अंतर्गत फसलों, जानवरों तथा वन्य

प्राणियों की विभिन्न प्रजातियों एवं विविधताओं को सम्मिलित किया जा सकता है। जैव विविधता हमारे जीवन का एक अंग है। यह पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखता है। इस पर विकास की प्रक्रियाएँ निर्भर हैं। जैव विविधता का अर्थ है– भूमंडल, वायुमंडल एवं जलमंडल में पाए जाने वाले जीवों की विभिन्न जातियों एवं प्रजातियों में विविधता। जैव विविधता का होना मानव के लिए आवश्यक है लेकिन इसके अधिक उपयोग के लिए जैव विविधता का हनन होने लगा है। अतः इसके संरक्षण की आवश्यकता है।

भौतिक प्रदूषण के अंतर्गत स्थल प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, पर्वतीय प्रदूषण, अंतरिक्ष प्रदूषण, सागरीय प्रदूषण आते हैं। जबकि धार्मिक प्रदूषण, जातीय प्रदूषण, लिंगीय प्रदूषण, आर्थिक प्रदूषण, राजनैतिक प्रदूषण, नैतिक प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण– ये सामाजिक प्रदूषण की परिधि में आते हैं। स्रोतों को आधार मानकर प्रदूषण की व्याख्या करें तो औद्योगिक प्रदूषण, वाहन प्रदूषण, कृषि प्रदूषण, महानगरीय प्रदूषण, जनसंख्या प्रदूषण, रासायनिक प्रदूषण, नाभिकीय प्रदूषण और प्लास्टिक प्रदूषण आदि कुछ प्रमुख प्रदूषण है। इनसे जब–जब हमारा पर्यावरण प्रदूषित होता है तब पत्रकारिता अपना बखूबी फर्ज अदा करती रही है। दैनिक समाचार–पत्रों में समय–समय पर पर्यावरण एवं प्रदूषण से संबंधित विद्वान लोगों के आलेख को स्थान मिलता रहा है जिनका समाज पर सकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है। कुरूक्षेत्र जैसी पत्रिकाओं ने भी पर्यावरण व प्रदूषण को लेकर विशेषांक प्रकाशित किए और कुछ पत्रिकाएँ पर्यावरण व प्रदूषण को लेकर विशेष रूप से प्रकाशित हो रही हैं।

जबसे पत्रकारिता विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनी है, तबसे इस पर निश्चित क्षेत्रों में परियोजना की अपेक्षाएँ बढ़ी हैं। अब तक पत्रकारिता के क्षेत्र में विभिन्न रूपों में परियोजना कार्य हुए हैं पर पर्यावरण पत्रकारिता से संबंधित परियोजना कार्य अभी तक किसी

संस्थान से नहीं हुआ है। विश्व में तेजी से औद्योगिक विकास हुआ है पर वे कौन–कौन से कारण रहे जिनसे पर्यावरण प्रदूषित हुआ और मानव से लेकर विभिन्न जीव–जंतुओं तक का जीवन संकट में आ गया है यह चिंतन का विषय है। भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री मोदी जी का स्वच्छता अभियान भी पर्यावरण से जुड़ा है। इन सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए परियोजना संबंधी चर्चा में आवश्यक प्रश्न यह है कि कौन–कौन से पर्यावरण संबंधित मुद्दे रहे जिन पर समाजवैज्ञानिकों, चिंतकों को लिखने की जरूरत महसूस हुई। पर्यावरण के प्रति जागरूक करने वाले वे कौन–कौन लोग रहे जिनसे पर्यावरण पत्रकारिता को गति मिली और समाज पर उनके विचारों का सकारात्मक प्रभाव भी पड़ा। उपर्युक्त सभी तथ्यों पर विचार करते हुए जरूरत है, पर्यावरण पत्रकारिता पर शोध की। शोध परक चिंतन एवं विश्लेषण से पर्यावरण संबंधी नए तथ्य निकलकर आएंगे जिनकी समाज व सरकार को आज बेहद जरूरत है।

वेदों में पर्यावरण–चेतना एवं उसका शाश्वत चिंतन

प्रो. दिनेश चमोला 'शैलेश'

मानव और प्रकृति का साथ युग–युगांतरों से है। मानव ने पहले–पहल जब इस पावन धरा पर अवतरण किया होगा, तब भी प्रथमतः उसने प्रकृति माँ के अनन्य व वात्सल्यपूर्ण अंक में ही सुख, शांति, तपश्चर्या, स्वाध्याय, योग आदि की प्रेरणा अथवा प्राथमिक ज्ञान अर्जित किया होगा, इसीलिए वैदिक काल से ही मानव शांति, दर्शन, आराधना, आध्यात्मिक चिंतन और दर्शन की विलक्षण प्राप्ति के लिए प्रकृति और प्राकृतिक सौंदर्य–स्थलों की शरण अर्थात् ऊँचे–ऊँचे गिरिश्रृंगों, गुफाओं, दुर्गम पहाड़ियों, चट्टानों एवं घाटियों को तलाशता रहा है।

वस्तुतः माँ वसुंधरा और प्रकृति का हरीतिमायुक्त आलोकमय दिव्य–स्थल एक ओर अपार शाश्वत सुख–संपदा, शांति, सृजन व बहु–प्रयोजनी कल्पना के नए–नए गवाक्षों का प्रवेश द्वार है, तो वहीं इस अलौकिकता में पारलौकिकता की अभूतपूर्व सृष्टि का समायोजक भी। मनुष्य को सांसारिक अथवा भौतिक उपलब्धियों में भी वह सुख अथवा यथार्थपरक आनंद प्राप्त नहीं हो पाता जो वह प्रकृति के सान्निध्य में समाधिस्थ होकर अर्जित करता है। कर्म व चिंतन की नित–नूतनता का वह अगोचर लीला–धाम न केवल उनकी कर्मस्थली रही, अपितु तपश्चर्या, अध्यात्म एवं सृजन की विलक्षण त्रिकोणीय कर्मस्थली भी बनी।

इन्हीं दिव्य एवं भव्य तीर्थस्थलों में हमारे महर्षियों ने वेद–ऋचाओं एवं महनीय ग्रंथों का प्रणयन किया। उन्होंने उनमें अपने लिए सुखद जीवन, सुखद भविष्य और सुखद वातावरण की प्रतीति का एक ऐसा शास्त्र रचा जो काल–कालांतरों तक मानव जाति के साथ–साथ जैविक सृष्टि के विन्यास, कल्याण एवं मूल्यवर्धन में भी सदैव सहायक सिद्ध होता रहेगा। दैवज्ञ ऋषियों का वह परमार्थी हित–चिंतन केवल स्वयं के जीवन व जीवन–शैली को सुखद बनाने तक ही परिसीमित नहीं था, अपितु वह सृष्टि के जीवमात्र के कल्याण, अभूतपूर्व भविष्य–दृष्टि (अपवाद) व पर्यावरण चेतना की अक्षुण्णता को बनाए रखने के लिए भी एक अपूर्व व अनुकरणीय कदम था।

इसीलिए प्रकृति के उस वैराट्य व अत्यंत लोकोपकारी स्वरूप के समानांतर ही हमारे ऋषि–मुनियों ने अपने सृजन–चिंतन एवं आचरण के माध्यम से उस समूची लोकोपकारी चेतना को अपने सृजन से प्राण प्रतिष्ठित किया है। ऋषि–मुनि लोक एवं सृष्टि के उन्नायक हैं। वे कोई भी चिंतन, सृजन, अपेक्षा अथवा माँग व्यष्टिपरक नहीं रखते अथवा उठाते, बल्कि उनके सृजन–चिंतन के हर उत्स में मानव कल्याण की ही भावना समाहित होती है। उनका चिंतन कभी भी एकपक्षीय व एककोणीय नहीं रहा। सदैव व्यष्टि से प्रारंभ होकर समष्टिपरक रहा है। उनके समष्टि–चिंतन में जीव स्वयं ही पूर्वपरिभाषित है। प्रभु–प्रदत्त भाव– संपदा की अक्षुण्ण राशि में से वे अक्षरब्रह्म की एक इकाई का भी दुरुपयोग नहीं करते, इसलिए उनकी वाणी से निःसृत वर्ण व शब्द जगती की रुग्ण मानसिकता के निदान का शाश्वत विकल्प सिद्ध होता है। वृक्ष अथवा वानस्पतिक संपदा भगवान शंकर के समान विषपायी है जो स्वयं कार्बन डाइऑक्साइड रूपी विष का पान कर बदले में मनुष्य व जीव सृष्टि को ऑक्सीजन रूपी अमृत का दान करते हैं। ऐसी लोक–हितैषिणी दृष्टि रखने वाली माँ प्रकृति व ऐसे लोकरक्षक वृक्ष एवं वन्य संपदा की आराधना की बात वेदों में प्रायः कही गई है। अतः इनके सामंजस्य की चैतन्यता के प्रति भी वे बार–बार आगाह

करते दिखते हैं। ऐसा न होने की स्थिति में समूची सृष्टि को प्राण–संकट से भी जूझना पड़ सकता है।

'यजुर्वेद' में वृक्षों की इस कल्याणकारी उद्‌भावना का सम्मान कर उनकी पूजा–आराधना करने की बात को बराबर दोहराया गया है। यथा–

याते रुद्र शिवातनुः शिवाव्विश्वस्वाहा भेषजी।
शिवा स्तस्य भेषजी तयानो मृड जीवसे।।[1]

यह उदार वसुंधरा सब जननियों की भी जननी है। जहाँ सांसारिक माताएँ शक्ति और संपन्नता की दृष्टि से स्वयं को असमर्थ पाती हैं तो वहाँ माँ वसुंधरा ही दिव्य शक्ति का पुंज बनकर उनकी ऊर्जा और संवर्धन हेतु आगे आती है। अलौकिक शक्ति–संपन्नता की पर्याय वसुंधरा माँ जितनी करुणामयी व उदार है, समय आने पर उतनी ही प्रचंड व विकराल भी।

यह वसुंधरा उदारता, दया, करुणा की दिव्य मूर्ति है किंतु जब इसके धैर्य, सहनशीलता व क्षमता को कोई उग्रता अथवा उद्‌दंडता के निकष पर कसने का दुस्साहस करता है तो यह रौद्र रूप धारण करके उसे उसके अस्तित्व का बोध कराने में भी पीछे नहीं हटती। अथर्ववेद में औषधियों तथा वनस्पतियों को रौंधने अथवा समाप्त करने वालों को प्रकृति द्वारा निर्ममता से प्रताड़ित और समाप्त किए जाने का प्रमाण भी मिलता है।

वैदिक ऋषि जल को अत्यंत अंतरंगता से परिभाषित करते हैं। वे जल को अत्यंत महत्त्वपूर्ण व वात्सल्यपूर्ण रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे मनुष्य और जल के मध्य माता एवं पुत्र के अंतरंग संबंध को प्रतिबिंबित करते हैं। चराचर जगत को प्राण तत्त्व से संपोषित करने वाले जल को क्षति पहुँचाने का सामर्थ्य भला किसमें हो सकता है?

दैवज्ञ ऋषि जल को महज किसी की तृषा शांति के विकल्प पेय पदार्थ के रूप में ही नहीं मानते अपितु उसमें उन अमृतमयी संजीवनी सदृश जीवन–मूल्यों की उदात्त थाती को भी समाविष्ट मानते हैं जिसमें

अमृत–धारा के साथ–साथ औषधीय गुणधर्मिता के श्रेष्ठतम उत्स भी स्वतः ही समाहित हो जाते हैं। ऋग्वेद में अपनी मनोभावनाओं को मंत्रों के माध्यम से स्पष्ट करते हुए जल की उपादेयता, उत्पादकता एवं संधारणीयता को सिद्ध करने का उल्लेख मिलता है।

जिस प्रकार परिवार के भरण–पोषण के लिए पिता दूर देश जाकर अपने कुटुंबीजनों के भरण–पोषण आदि के लिए मौद्रिक संसाधन इत्यादि का संग्रह कर उनका संरक्षण करता है, उसी प्रकार वायु को भी देवर्षियों ने प्राण–तत्व प्रदाता माना है जो न केवल प्राण–चेतना से परिपूर्ण है, बल्कि उसमें ऐसी प्राण–संजीवनी का अर्थ भी द्योतित होता है जो जीवन व जीवन मूल्यों के लिए अत्यंत सुखद वृत्तांत है। इसके सुंदर अंक में पल्लवित–पुष्पित होने वाली जड़ी–बूटियाँ सबके शोक–हरण में सहभागी बनती हैं। हर उपयोज्य अवयव को उपभोज्य बनकर सुखानुभूति होती है। यही बात स्वयं हवा, पृथ्वी, आकाश भी गंभीरता से महसूस करते हैं, यथा–

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं
तन्माता पृथिवी तत् पितौ द्यौः न
तदग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना
शृणुतं धिष्णया युवम्।।[2]

वेदों ने वायु को केवल प्राण चेतना का स्वामी ही नहीं बताया, अपितु संबंधों की अंतरंगता का पर्याय भी माना है। इसके अभाव में न जड़ का विकास संभव है, न उसका विन्यास ही। इसे पिता, भ्राता व मित्र से अधिक हितचिंतन साधने वाला व आरोग्य हेतु संजीवनी भी बताया है। इसीलिए वायु से दीर्घ जीवन की याचना का उल्लेख प्रायः वैदिक मंत्रों में होता ही है–

उतवातत पितासि न उत भ्रातोद नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि।[3]

माँ वसुंधरा सदैव समूची सृष्टि का ही पल्लवन–पुष्पन कर उन्हें अमित वात्सल्य व यथाशक्ति भरपूर स्नेह–छाया प्रदान करती है। वह

इतिहास व भूगोल के आधार पर किसी से द्वेष व विभेद नहीं करती। जो उसके साथ जिस रूप–व्यवहार में उपस्थित होता है उसे वह उसी रूप में उत्तर देती है। देवर्षियों ने उनके (औषधियों के) औदार्य स्वरूप की कल्पना मातृ–रूप में की है। विशालहृदयी माता जिस प्रकार आत्मजों की सुख–समृद्धि, श्री–वृद्धि, जीवन–वृद्धि व आरोग्यमय भविष्य की हित–चिंता क्षण–क्षण करती है, उसी प्रकार औषधियाँ भी सदैव आत्मीयजन के कल्याण हेतु, उन्हें रोग–व्याधि व पीड़ा आदि से मुक्त करने के लिए सदैव आकुल–व्याकुल व चिंतातुर रहती हैं। उसकी यह विरल चिंता अत्यंत आत्मीयता का ही संप्रतीक है।

'अथर्ववेद' में पृथ्वी को माता के रूप में पूज्यपाद व समान स्थान दिए जाने की संकल्पना की गई है। पुत्र के समेकित व समग्र विकास हेतु जिस प्रकार मातृ–वत्सला भूमि का स्नेह, सान्निध्य एवं संरक्षण प्राप्त होता है, उसी प्रकार वैदिक मंत्रों में पृथ्वी के देव–स्वरूप की संकल्पना की गई है। तभी 'अथर्ववेद' के इस सूक्त में ऋषि पर्जन्य को पिता और पृथ्वी को माता के रूप में कितनी प्रभविष्णुता से व्याख्यायित किया गया है –

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपतु।।'[4]

यही नहीं, यजुर्वेद' में जीव–जगत के कल्याण के लिए समेकित वानस्पतिक प्रचार–प्रसार; संवर्धन–पल्लवन व पुष्पन के लिए शांति की प्रार्थना की गई है। इस विलक्षण प्रार्थना में कहीं न कहीं जैव विविधता के पर्यावरणपरक हित–चिंतन के साथ–साथ जीव व लोक के कल्याण की पवित्र अवधारणाएँ भी समाहित हैं जो परोक्षतः इस समस्त ब्रह्मांड व जीव–जगत के सुखद भविष्य की पर्यावरणीय चिंता और चिंतन के परिमार्जित चित्र को उकेरते हैं। यथा–

ऊँ द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः
पृथिवी शन्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति।
वनस्पतयः .... सा मा शान्तिरेधि।।
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।[5]

वैदिक काल में सर्वत्र, सतत यज्ञ—हवन आदि के आयोजनों से चतुर्दिक वातावरण सुगंधित एवं सुरभित हुआ रहता था। चारों दिशाओं में अमृतमयी प्राण—वायु का संचार, उसके साथ कई प्रकार की जड़ी—बूटियों, पुष्प—पादपों तथा परागयुक्त समीरण से यत्र—तत्र—सर्वत्र पवित्रता का ही साम्राज्य रहता था। शुद्ध वायु का प्रवाह सकल उपवन—जीवन को न केवल संजीवनी शक्ति प्रदान करता था, बल्कि आरोग्यता व दीर्घजीविता में भी अपूर्व भूमिका का निर्वहन करता था। इसलिए वैदिक ऋचाओं व दिव्य मंत्रों में शुद्ध वायु के संरक्षण, इसके मूल्यवर्धन व गुणधर्मिता का वर्णन यत्र—तत्र मिलता है।

सृष्टि की रचना से ही वनों का महत्व जीवन, जीवन—मूल्य व जीवनदायिनी शक्ति के लिए विख्यात है। इन अभूतपूर्व वनों के दिव्यवृक्षों के अंक में बैठकर ही देवर्षियों ने अनेक अमर ग्रंथों का प्रणयन व साधना की उदात्तता के अभिनव दृष्टांत गढ़े। बिना वनों के तो लाभकारी व अप्राप्य औषधियों की कल्पना की जा सकती है, न पुष्प—पादपों की; न जैव—विविधता की..... और न जीवमात्र के कल्याणमय जीवन की अपूर्व—संरचना की ही।

वन सुरक्षित हैं तो उसमें आहार—विहार करने वाले मनुष्य से लेकर जीव—जंतु, पशु—पक्षी, संपूर्ण वानस्पतिक वैविध्य सुरक्षित है। इसलिए प्राचीन ऋषियों ने वन—संरक्षण तथा वानस्पतिक आविर्भाव की संकल्पना सदैव ही की है। वृक्ष परंपरा से ही अत्यंत परोपकारी व संसार के समस्त ताप का निवारण करने वाले हैं। वे अपशिष्टों का विष स्वयं पीकर मनुष्य एवं जीव—जंतु को नवचेतना, ऊर्जा व जीवनी—शक्ति प्रदान करते हैं। इसलिए कालांतर से ही ऋषियों ने उनके परोपकारी गुणधर्मिता के संरक्षण की बात कर उन्हें अत्यंत लोकोपकारी, देवतुल्य एवं जीव—सृष्टि का उन्नायक माना है। 'यजुर्वेद' में उल्लेख मिलता है—

वनानां पतये नमः, औषधीनां पतये नमः। नमो वन्याय च।[6]

बहिर्मुखी पर्यावरण के संरक्षण के लिए अंतर्मुखी पर्यावरण की संकल्पना अतीव आवश्यक है। व्यक्ति जितना मन से पवित्र होगा जितनी उसकी अंतश्चेतना निर्मल होगी, उतना ही वह स्थूल सृष्टि को अपने चिंतन–मनन, आहार–व्यवहार एवं गुणधर्मिता से प्रभावित करने में सफल होगा। हमारे हित–चिंतक ऋषिगण सदैव ही जैव संपदा एवं सृष्टि के कल्याण के लिए न केवल उनके बहिर्मुखी पर्यावरण के हित चिंतन के मार्गों का विशुद्ध निरूपण अपने ग्रंथों में करते हैं बल्कि उसी के चमत्कारी प्रभाव से उनकी अंतश्चेतना में भी आमूलचूल परिवर्तन लाने का संकल्प भी कहीं–न–कहीं उनके मंत्रों की आधारशिला है। इसीलिए वे उस मन को सर्वथा पवित्र बनाने का हरसंभव उपाय करते हैं, जिसमें से काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, ईर्ष्या–द्वेष, बुराइयाँ तथा सामाजिक विद्रूपताओं की यह ऊर्ध्वमुखी अग्नि प्रज्वलित होती है। यदि मन पवित्र होगा तो सामाजिक प्रदूषण की भावना, परस्पर राग–द्वेष की भावना, एक दूसरे से जातिगत मतभेद व चिंतनगत वैमनस्य का निराकरण होता रहे। द्वेषों के निराकरण व समाहार की भावना स्वतः ही विस्तार पाएगी।

इसलिए इन लोकोपकारी चिंतन बिंदुओं का हित– चिंतन भी सुधी ऋषि–मुनि अपने सृजन–प्रणयन में सदैव करते रहे हैं।

स्पष्ट है कि हमारे पौराणिक ग्रंथों में, विशेषकर वेदों में पर्यावरण विषयक चिंतन एवं उसकी व्यावहारिक उपादेयता को सप्रमाण विस्तार से विवेचित–विश्लेषित किया गया है। आदिकाल से आज तक प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण का मूल उद्देश्य मानवीय जीवन में सुख–समृद्धि, आनंद एवं मानवोचित गुणों का विकास करना तथा मानव– मूल्यों को संरक्षित कर इस अक्षुण्ण परंपरा को यथावत बनाए रखना है ताकि इस जीव सृष्टि में विचरण करने वाले जीव एवं मनुष्य सुखपूर्वक अपने जीवन का असली आनंद प्राप्त कर सकें। यह पर्यावरण चिंतन की श्रृंखला सुदृढ़ मानव जीवन के सुखद विन्यास की अटूट श्रृंखला है।

संदर्भः—

1. यजुर्वेद; 16 / 49
2. वही; 1.89.4
3. वही; 10.186.2
4. अथर्ववेद; 12.1.12
5. यजुर्वेद; 36.17. शांति प्रार्थना
6. यजुर्वेद; 36.17

"सौभाग्य से, प्रकृति आश्चर्यजनक रूप से लचीली है। जिन स्थानों को हमने नष्ट कर दिया है, उन्हें समय और सहायता दी जाए तो वे एक बार फिर जीवन का समर्थन कर सकते हैं......हमारे एकमात्र घर, पृथ्वी के अस्तित्व के लिए लड़ रहे हैं। इससे पहले कि बहुत देर हो जाए, हम सभी को उस लड़ाई में शामिल हो जाना चाहिए।"

— जेन गुडॉल (प्रसिद्ध अंग्रेजी प्राइमेटोलॉजिस्ट)

समकालीन कविता में पर्यावरण का संकट

अजित कुमार

कविता गागर में सागर भरने का कार्य करती है। मनुष्य के सभी आयामों को प्रदर्शित करने में कविता अपने आप में सक्षम है। 'समकालीनता' मात्र एक शब्द नहीं, बल्कि यह अपने आप में बहुआयामी और व्यापकता का द्योतक है। अपने समय, समाज और परिवेशगत बोध धारण करने के कारण इसे समकालीन कविता से अभिहित किया गया है। समकालीन कविता में अनेक ज्वलंत, ऐतिहासिक तथा समसामयिक मुद्दे सम्मिलित हैं। इसमें समाहित है– विश्वशांति, पर्यावरण का संकट, प्राकृतिक संपदा–संरक्षण, सांप्रदायिक हिंसा और अहिंसा, शोषण और क्रूरता तथा अमानवीयता आदि। समकालीन कविता में समाज के अनेक प्रश्न मौजूद हैं। इसमें किसी एक पक्ष के प्रति चिंता नहीं है, अपितु समकालीन कविता में विषय की विविधता समाविष्ट है। समकालीन कविता सामाजिक चेतना को धारण किए हुए है। यही कारण है कि शोषण, गरीबी तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असंतुलन पर करारा प्रहार करती नजर आती है। समकालीन कविता के सैद्धांतिक पक्ष को लेकर विचार–विमर्श करने वालों में कुछ महत्त्वपूर्ण विद्वान हुए हैं जिनमें कुछ प्रमुख नाम हैं– डॉ. नामवर सिंह, डॉ. रामविलास शर्मा, परमानंद श्रीवास्तव, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय,

रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. बच्चन सिंह, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, हुकुमचंद राजपाल और कवि एवं आलोचक भरत प्रसाद त्रिपाठी आदि।

पर्यावरण शब्द अपने आप में अर्थ विस्तार लिए हुए है। पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है— 'परि' एवं 'आवरण'। 'परि' का अर्थ चारों ओर तथा 'आवरण का अर्थ घिरा हुआ होता है। अर्थात् सामान्य शब्दों में कहा जाए तो हमारे चारों तरफ जो घिरा हुआ है, वही पर्यावरण है। इस चराचर जगत में जो कुछ विद्यमान है, वह सब पर्यावरण के अंतर्गत आ जाएगा। हर एक के योग से पर्यावरण का निर्माण होता है। किसी एक से इसकी कल्पना करना कठिन सा जान पड़ता है, इसलिए कहा जाता है कि पर्यावरण शब्द वृहत् शब्द है। पर्यावरण को हम दो भागों में रख सकते हैं प्रथम— भौतिक पर्यावरण और दूसरा— जैविक/सांस्कृतिक पर्यावरण। भौतिक पर्यावरण के अंतर्गत स्थानिक संबंध, भूमि के स्वरूप, जलवायु, जल राशियाँ, मिट्टियाँ, प्राकृतिक वनस्पति, पशु—जगत, खनिज आदि आते हैं। जैविक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के क्रम में मानव की जाति—प्रजातियाँ, जनसंख्या, धर्म, भाषा, राजनैतिक प्रणालियाँ, तकनीकी ज्ञान एवं शोध आवास, संचार और परिवहन आदि। ये सभी चीजें पर्यावरण के अर्थ विस्तार को परिभाषित करने में पर्याप्त हैं। मनुष्य के साथ इस जगत में जो भी जीव हैं उनके लिए पर्यावरण का संतुलन होना आवश्यक है। पर्यावरण का संतुलन भी हम सब पर निर्भर करता है। हमारे जीवन—यापन करने का तरीका पर्यावरण पर गहरा प्रभाव छोड़ता है, इसलिए हमें चाहिए कि जो भी करें वो पर्यावरण को ध्यान में रखकर करें। हमारे रहन—सहन का ही परिणाम है कि वर्तमान समय में पर्यावरण जैसे संकट से हम सभी जूझ रहे हैं और यह संकट कम होने की जगह और अधिक बढ़ता जा रहा है। यह संकट और भी विकराल रूप न ले ले, उससे पहले हम सबको

इसे बचाने का प्रयास करना चाहिए। हाँ, एक और बात यहाँ कहना आवश्यक जान पड़ता है, वह यह कि पूर्वोत्तर भारत अभी पर्यावरण संतुलन की अवस्था में तो दिखता है, किंतु खेद यह है कि यहाँ भी अब पहाड़, जंगल काटने के कारण जल्द ही पर्यावरण पर खतरा मंडराने लगा है।

समकालीन कविता की सृजनशीलता और पर्यावरण की प्रासंगिकता आज भी महत्व रखती है। वैसे देखा जाए तो साहित्य में पर्यावरण की चिंता की परंपरा बहुत पहले से रही है। ऐसा नहीं है कि इसका प्रारंभ आधुनिक कविता से दिखाई देता हो। पर्यावरण के प्रति चिंतन–मनन की परंपरा भक्ति एवं संत कवि दोनों में भी परिलक्षित हुई है और यह चिंतन–मनन ऐसा नहीं है कि बहुत हल्का हुआ है। इसकी गहराई तो हमें तब समझ आई जब पूरे विश्व में कोरोना की विभीषिका ने आतंक का माहौल बना दिया। प्रारंभ से ही साहित्य में पर्यावरण की चिंता देखी जा सकती है और सबसे ज्यादा संत एवं भक्ति कवियों की कविताओं को खंगाला गया और उसके प्रति सजग दृष्टि अपनाई गई तथा उसमें उससे निजात पाने की राह ढूँढी गई। इस तथ्य से यह साबित हो जाता है कि पर्यावरण की चिंता साहित्य में बहुत पुरानी है। आधुनिक काल से लेकर समकालीन कविता में पर्यावरण के प्रति सजग दृष्टि दिखाई देती है।

"उसने तय किया कि वह आलू के अंदर/प्रवेश करेगा/वह ज़मीन की महक/दर्जी तक ले जाएगा और कहेगा 'सिलो'/वह उस औरत के पास जाएगा और कहेगा/सब्जी अगर नहीं पकती तो कोई बात नहीं/ज़मीन पक रही है/उसके सामने/घोड़े की पीठ की तरह फैली हुई थी ज़मीन/ज़मीन/सिर्फ जमीन की तरह लग रही थी/सिर्फ ज़मीन थी/और ज़मीन का पकना था जैसे जंगल में गोश्त पक रहा

हो।" केदारनाथ सिंह की कविता समय–समाज और पर्यावरण परिवेश का सजीव चित्रण करती है। केदारनाथ जी की यह तपन सिर्फ उनकी तपन नहीं है। इस तपन को अगर आप महसूस नहीं करते तो समझिए कि आप कहीं न कहीं खुद को उस ताप के हवाले कर देंगे। क्या कभी कोई दर्जी सिल पाएगा जमीन को, जी नहीं। वे संकेत कर रहे हैं कि मनुष्य तुम सचेत हो जाओ नहीं तो यह धरती एक दिन अपनी विनाश लीला अवश्य दिखाएगी। वह भूख की चिंता नहीं करते। उनकी चिंता पहले पक रही जमीन को बचाने को लेकर है क्योंकि भूख को आज नहीं तो कल शांत कर लिया जाएगा, मगर पर्यावरण का यह संकट अगर भयावह रूप धारण कर लेगा तो इसे शांत करना मुश्किल होगा।

"तख्ता पलटने का सिलसिला शुरू हो गया है/कठुआए चेहरे की रौनक वापस लाने के लिए/उठो, हरियाली पर हमला करो/जड़ों से कहो कि अँधेरे में बेहिसाब दौड़ने के बजाय/पेड़ों की तरफ़दारी के लिए/जमीन से बाहर निकल पड़ें/बिना उस डर के कि जंगल/सूख जाएगा।/सही है, नारों को नई शाख नहीं मिलेगी/और न आरा–मशीन को/नींद की फुरसत/ लेकिन यह तुम्हारे हक में है/इससे तो होगा ही कि रुखानी की/मामूली–सी गवाही पर/तुम दरवाजे को दरवाजा/और मेज को/अपनी मेज कह सकोगे।" समकालीन कविता के बहुत ही बेजोड़ कवि हैं धूमिल। बेजोड़ से मेरा तात्पर्य यह है कि उनकी लेखनी की तल्खी ही कुछ ऐसी है कि समाज और पाठक वर्ग को तुरंत अपनी ओर खींच लेती है। उनकी कोई भी कविता आप उठा लें, फिर बिना उससे जुड़े नहीं रह सकते। धूमिल पर्यावरण को लेकर भी बहुत सचेत कवि हैं। उनकी कविता 'सिलसिला' में पर्यावरण संकट का चित्रण बहुत ही बारीक दृष्टि से किया गया है। धूमिल पर्यावरण के सबसे महत्वपूर्ण तथ्य हरियाली के संकट की तरफ हमारा ध्यान

आकृष्ट कराना चाहते हैं। वे उस हरियाली को बचाना चाहते हैं जिससे हमें जीने के लिए साँस मिलती है। पेड़ को बचाने की यह छटपटाहट मनुष्य को पर्यावरण के प्रति अधिक सचेत करती नजर आ रही है। धूमिल उस फाँक को भी परिलक्षित करते हैं जो बताती है कि आप किसको और कैसे पहचान करें।

"नदी मूल में/जहाँ रेंगते हुए साँपों का पहरा रहता है/ क्या तुम फावड़ा लेकर जा सकते हो?/ वहाँ पेड़ों का अंधेरा कुंज है/ और भीतर जाने का कोई प्रवेश द्वार नहीं है/ तुम्हें उलझी हुई डालियों को काट कर/ रास्ता बनाना पड़ेगा/ और भीतर झाँकते ही/ सर उठा कर/ वयस्क भुजंग फुफकारेंगे।/ जब वे तुम्हारी आँखों से आँखें मिला/ तुम्हारी ओर सन्नद्ध प्रश्न मुद्रा में देखेंगे/ तब तुम उनसे क्या कहोगे ?/नदी मूल/ असंख्य झाड़ियों, गिरी हुई पत्तियों/ और केंचुलों के गुज्झर से/ अवरुद्ध हो गया है/और उनके बीच से/ सिर्फ एक पतली छनी हुई धारा/पेड़ों, लताओं को सींचती हुई बहती है।" इतनी गहरी संवेदना बहुत कम कवियों में देखी जाती है जितनी कि विजयदेव नारायण साही में है। क्या मूल है क्या नही, हम इस कविता से समझ सकते हैं। शीर्षक है 'नदी मूल'। असंख्य शब्दों को ये दो शब्द ढाँक देंगे। अगर इस विश्व में कोई चीज मूल है तो उसमें से एक नदी भी है। पहाड़, जंगल, पृथ्वी, वायु–आकाश और नदी, यही हम सबके जीने की मूल है। और वास्तव में यहीं वह मूल है। अगर यह नहीं होती तो शायद हम और आप भी होते या नहीं होते– यह कह पाना मुश्किल है। इस कविता का सार उसकी आखिरी पंक्तियों में दृष्टिगत होता है। नदी से ही सब कुछ संभव है। इसलिए कवि की नजर में वही मूल है।

"पानी नहीं बरसा/फिर भी घन छाए देख, आया मन/ हरसा/काजल के हिले नभ में /दौड़ी द्युति–दामिनी पट गीले में /नया रंग, नई दमक नीले में, पीले में/ मुख से सुख घूंघट खुल /विमला रूप दरसा/गगन मराली, मटियाली धुन/नदिया पे नैया, हियो–हयया सुन /फूलों की खिलखिलाहट, कलियों की हँसी चुन/ लहरों के ताल, पाल–पाल/ पवन परसा/भीजे बिन, भरी दिन दुगने कर/ संध्या तक प्राण पलट आएँ घर/घरनी की आशाओं को पूरा कर/ दोनों कर पाएँ भर/ दरस–परस सरसा/हाय,/ पानी नहीं बरसा।" राजकमल चौधरी वैसे तो कविता के केंद्र में से वैसे नहीं उभरे जैसे कि अन्य। यह उपेक्षा क्यों और किसलिए हुई, यह बता पाना कठिन–सा लगता है। किंतु इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि इनकी कविताओं में गंभीरता वैसे ही विद्यमान है, जैसे कि किसी अन्य कवि में। वे अपने विषय को लेकर बहुत ही गंभीर नजर आते हैं। उनकी यह 'बरखा' शीर्षक कविता उस किसान और गाँव की याद दिला देती है जिससे पूरा शहर बनता है। शहर बनने की प्रक्रिया गाँव और किसान से प्रारंभ होती है। एक किसान के लिए वर्षा का होना और न होना कितना मायने रखता है यह हम सभी भली–भाँति जानते हैं। पानी नहीं बरसा फिर भी उस घनघोर घटा को देख कर किसान का मन हर्ष से भर गया। यह हर्ष उस बादल को देखकर है और उसमें चाह भी है कि शायद वर्षा हो जाए। यह सत्यता, मुझे नहीं लगता, किसी और कवि में मिलती हो। आज आए दिन पानी की कमी के कारण किसान आत्महत्या तक करने को विवश है क्योंकि 'बिन पानी सब सून' पानी नहीं होगा तो फ़सल नहीं होगी और फ़सल नही होगी तो बहुत कुछ नहीं होगा। समय पर बारिश का न होना पर्यावरण में उलट–फेर का ही नतीजा है। इसके प्रति हम सबको ज़िम्मेदार बनना होगा।

"धरती में प्रवेश करती/पानी की प्यास /पाना चाहती जिस गहराई को /वह पहुँच से दूर थी/वहाँ से फिर ऊपर उठ कर /आकाश हो जाने की संभावना/ अभी ओझल थी।/ कई तहों को पार करती/ एक पारदर्शी तरलता को/ मिट्टी के रंध्र/ धीरे–धीरे सोख रहे थे।/देवदार की जड़ों से/अभी और बहुत नीचे तक जाना था पानी को/ कि सहसा खिंच कर/ उसकी जड़ों में समा गया वह/ और तेजी से ऊपर उठने लगा : /जिस शिखर तक पहुँचा/ वह बेशक बादलों को छू रहा था /पार था वह अब भी/ एक वृक्ष का ही शरीर/वही मरमर/ वही हवा में सांस लेने का स्वर/ चिड़ियों का घर/ वही बसंत, वही वर्षा, वही पतझर... /नहीं–उसने सोचा–फिर नहीं लोटना है उसे/ धूल में/ झरते फूल पत्तों के संग !/उसने एक लंबी सांस ली हवा में/ और बादलों के साथ हो लिया।/अद्भुत था पृथ्वी का दृश्य/ उस ऊँचाई से/ अपनी ओर खींचता/ उसका प्रबल आकर्षण,/ उसकी सोंधी उसांस..." कुंवर नारायण की कविताओं में अपने समय–समाज के साथ–साथ पर्यावरण और प्रकृति के प्रति गहरी चिंता अभिव्यक्त हुई है। उनकी कविता 'पानी की प्यास' में पानी के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। वर्तमान समय में जिस तरह पानी का स्रोत बहुत नीचे होता जा रहा है, उसकी एक झलक हम इस कविता में देख सकते हैं। यह भी एक पर्यावरण का गंभीर संकट है।

"पानी पानी /बच्चा बच्चा/ हिंदुस्तानी/ माँग रहा है/ पानी पानी/ जिसको पानी नहीं मिला है/ वह धरती आजाद नहीं /उस पर हिंदुस्तानी बसते हैं/ पर वह आबाद नहीं/ पानी पानी /बच्चा बच्चा/ माँग रहा है/जो पानी के मालिक हैं /भारत पर उनका कब्ज़ा है /जहाँ न दें पानी वहाँ सूखा/ जहाँ दें वहाँ सब्ज़ा है/ अपना पानी/ माँग रहा है/ हिंदुस्तानी/ बरसों पानी को तरसाया/

जीवन से लाचार किया/ बरसों जनता की गंगा पर/ तुमने अत्याचार किया/ हमको अक्षर नहीं दिया है / हमको पानी नहीं दिया/ पानी नहीं दिया तो समझो/ हमको बानी नहीं दिया/ अपना पानी/ अपनी बानी हिंदुस्तानी/ बच्चा बच्चा माँग रहा है /धरती के अंदर का पानी/ हमको बाहर लाने दो/ अपनी धरती अपना पानी /अपनी रोटी खाने दो/ पानी पानी/ पानी पानी /बच्चा बच्चा/ माँग रहा है/ अपनी बानी /पानी पानी /पानी पानी /पानी पानी।" 'पानी पानी' शीर्षक की यह कविता रघुवीर सहाय की प्रासंगिकता को और भी प्रासंगिक बना देती है। पानी पानी माँग रहा है हिंदुस्तान का हर बच्चा बच्चा। जिस धरती को पानी नहीं मिला, वह आजाद नहीं और न ही वह आबाद है। जो पानी के मालिक हैं उनका भारत पर कब्जा है। इस तथ्य से यह समझा जा सकता है कि कुछ लोग पर्यावरण की परवाह किए बिना इससे खेलते हैं जिसका परिणाम होता है पर्यावरण संकट। कवि कहता है पानी नहीं दिया तो समझो हमको बानी नहीं दिया। इतनी गहरी बात इतने कम शब्दों में कवि ने कह दी है। धरती के अंदर से हमको पानी लाने दो और अपनी रोटी खाने दो। फिर उस किसान की याद आ जाती है जिसके परिश्रम के पश्चात् हमें दो जून की रोटी नसीब होती है। यह पानी की माँग सिर्फ एक बच्चे की माँग नहीं है, अपितु पूरे भारत वर्ष की माँग है। जो भी सरकार या कंपनी इससे खेलेगी, इसका परिणाम भयंकर हो सकता है जिसको भुगतने के लिए सबको तैयार रहना होगा।

हिंदी साहित्य में पर्यावरण के प्रति गहरी चिंता अभिव्यक्त हुई है। समकालीन कविता अपने पर्यावरण परिदृश्य के प्रति बहुत ही सजग एवं सतर्क नजर आती है। समकालीन कवियों में पर्यावरण के

प्रति न सिर्फ चिंता व्यक्त हुई है बल्कि उन्होंने एक सुसंगत मार्ग भी प्रशस्त किया है कि हम सबको मिलकर इस संकट से निपटने की जरूरत है। यह संकट न सिर्फ एक से उपजता है और न ही एक से इसका समाधान संभव है।

❑ ❑

"एक ज़बरदस्त संभावित शक्ति जो खुद को अभिव्यक्त करने की कोशिश कर रही है, और परिस्थितियाँ जो इसे रोक रही हैं, वातावरण इसे खुद को अभिव्यक्त करने की अनुमति नहीं दे रहा है। इसलिए, इन वातावरणों से लड़ने के लिए शक्ति बार–बार नए रूप धारण कर रही है।"

– स्वामी विवेकानंद

हिंदी सिनेमा और पर्यावरण

डॉ. प्रणु शुक्ला

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण के संरक्षण को बहुत महत्त्व दिया गया है। यहाँ मानव जीवन को हमेशा मूर्त या अमूर्त रूप में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्र, नदी, वृक्ष एवं पशु–पक्षी आदि के साहचर्य में ही देखा गया है। पर्यावरण शब्द का अर्थ है हमारे चारों ओर का वातावरण। पर्यावरण संरक्षण का तात्पर्य है कि हम अपने चारों ओर के वातावरण को संरक्षित करें तथा उसे जीवन के अनुकूल बनाए रखें। पर्यावरण और प्राणी एक–दूसरे पर आश्रित हैं। यही कारण है कि भारतीय चिंतन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना यहाँ मानव जाति का ज्ञात इतिहास है।[1]

उल्लेखनीय है कि सिनेमा ने शुरू से ही पर्यावरण के संरक्षण को महत्वपूर्ण स्थान दिया। फिल्मों के कथानक व उसकी शूटिंग का अधिकांश जुड़ाव प्रकृति से रहा है जो सिनेमा के प्रकृति जुड़ाव को दर्शाता है। पाथेर पांचाली, मदर इंडिया, हीरा मोती, गोदान, नया दौर, दो बीघा जमीन, उपकार, शोले, मजदूर, पैगाम, धरती कहे पुकार के, राम तेरी गंगा मैली, मोतीबाग, आरोहण, पीपली लाइव, पार, दिशा, काला पत्थर, मंथन, चिरुथा, टार्जन, मोगली, जंगल सफारी, जंगली, प्रोजेक्ट मराठवाड़ा, कदम्बन, चक्रव्यूह, कोयलांचल, देवभूमि, केदारनाथ, देहली सफारी आदि ऐसी फिल्में हैं जिनका मुख्य कथानक भले ही एक

अलग कटेंट चित्रित करता हो, परंतु फिल्मों का देशकाल और वातावरण कहीं–न–कहीं प्रकृति के उन तमाम हिस्सों को प्रदर्शित करता है, जिनमें पर्यावरण की चिंता व संरक्षण दिखलाई पड़ता है। पर्यावरण संरक्षण हमारी संस्कृति का अंग है, परंतु मानव की अपने स्वार्थ के लिए प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की प्रवृत्ति ने पर्यावरण संकट की नई चुनौती को जन्म दिया है। कोविड–19 महामारी ने हमें साफ हवा की कीमत समझा दी है। पर्यावरण संरक्षण के निमित्त आमजन का सहयोग अनिवार्य हो गया है। आज मानव को हरित मानसिकता विकसित करने की आवश्यकता है।

आई.आई.टी गांधीनगर स्थित जल एवं जलवायु प्रयोगशाला द्वारा तैयार किए गए आंकड़े बताते हैं 'देश का लगभग 47 प्रतिशत भाग सूखे का सामना कर रहा है, जिनमें 16 प्रतिशत क्षेत्र सूखे की चरम या असाधारण श्रेणी में पहुँच गया है।'[2] हिंदी फिल्मों में पर्यावरण निम्न रूपों में दृष्टिगत होता है–

1–हिंदी फिल्मों में जल–संकट और उसका संरक्षण

2–जड़, जंगल, जमीन, किसान के आंदोलन

3–आदिवासी, जानवर प्रेमी आदि मुद्दे

4–फिल्मों में प्रकृति–चित्रण

5–प्राकृतिक आपदाओं को दर्शाती फिल्में

आइए बात करते हैं कुछ ऐसी फिल्मों की जिनमें पर्यावरण के विभिन्न रूपों का निदर्शन किया गया है–

(अ)–फिल्मों में जल संरक्षण, जल, जंगल, जमीन, किसान के आंदोलन–वारदात (1981)–

आजकल भारत के किसानों की फसलों में टिड्डी दल का हमला खूब चर्चा में है। इससे किसान बहुत परेशान हैं और घबराए हुए भी हैं।

टिड्डियों का यह झुंड एक ऐसी समस्या है जो जहाँ से गुजरता है, अपने पीछे तबाही और फसलों का सूपड़ा साफ करता हुआ निकलता है। इस फिल्म में भी टिड्डियाँ हमला करती हैं लेकिन वह मानव जनित होती हैं। दरअसल एक रासायनिक परीक्षण असफल हो जाने से टिड्डियाँ पैदा होती हैं और वह फसलों का सर्वनाश करना शुरू कर देती हैं। हालांकि इस फिल्म के हीरो मिथुन चक्रवर्ती गन मास्टर जी बनकर इस घटना का पर्दाफाश करते हैं। इस फिल्म को यू–ट्यूब पर देखा जा सकता है।

उपकार (1967)–

हिंदी फिल्मों के शानदार अभिनेता, निर्देशक और निर्माता मनोज कुमार को जब भारत कुमार का दर्जा मिलने लगा था तो उसका कारण कुछ इस तरह की धरती से जुड़ी फिल्में ही थीं। फिल्म में भारत एक धरती से जुड़ा इंसान है जो खेती–बाड़ी करता है और अपने भाई को शिक्षित करने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है। लेकिन बाद में वही पढ़ा–लिखा भाई लालची निकलता है और पैसा कमाने के लिए गलत रास्ते पर निकल पड़ता है। फिल्म में भारत का धरती प्रेम बहुत ऊँचा है। वह धरती को अपनी माँ समझता है और उसी के गीत गाता है। यह फिल्म यू–ट्यूब पर मुफ्त में उपलब्ध है।

हाथी मेरे साथी (1971)–

हिंदी सिनेमा के पहले सुपरस्टार दिवंगत अभिनेता राजेश खन्ना की यह सुपरहिट फिल्म लोगों को जानवरों से प्यार करना सिखाती है। आजकल जानवरों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर न जाने कितने काम किए जा रहे हैं। कई ऐसी सरकारी और गैरसरकारी संस्थाएँ हैं जो जानवरों के संरक्षण पर जोर देती हैं। पर्यावरण में संतुलन बनाए रखने के लिए जानवरों का होना भी बहुत

जरूरी है। फिल्म में राजेश खन्ना चार हाथियों के बीच पलकर बड़े होते हैं और उनके दोस्त बन जाते हैं। बदले में राजेश की बहुत सी परेशानियों को ये हाथी अपने सिर ले लेते हैं। इस फिल्म को यू–ट्यूब पर देखा जा सकता है।

दिशा–

यह फिल्म सूखे के कारण गाँव के मजदूरों द्वारा अकेले कुआँ खोदने की मार्मिक कहानी को दिखलाती है। परशुराम अपने 12 वर्षों के अथक परिश्रम से कुआँ खोदता है। 'अच्छा वह तुम्हारा भाई है जिसे पूरा गाँव पागल समझता है? नहीं साहब, उनके दिमाग में केवल पानी का फितूर है।'

स्वराज लिटिल रिपब्लिक– तमिलनाडु की एक सच्ची घटना पर आधारित इस फिल्म में गाँव की औरतों ने सूखे की मार को झेलते हुए अपने गाँव को बिना किसी बाहरी मदद से पानी के संकट से मुक्त करवाया।[3]

लगान–

आमिर खान की इस फिल्म का निर्देशन आशुतोष गोवारिकर ने किया था। पिछले साल बारिश बहुत कम हुई थी। इस साल बारिश नहीं हुई है, सूखी आँखें आसमान टटोल रही हैं, यही कि कब पड़ेंगे आकाश में बादलों के धब्बे। अब तो आँखें तरस गईं, बरखा का भी एक महीना निकल गया, एकऊ बूंद ना पड़ी। खेत तो प्यासे हैं, दाने कहाँ से फूटें।[4]

वेलडन अब्बा–

फिल्म में बोमन ईरानी सरकारी योजनाओं का लाभ लेकर एक कुआँ बनवाना चाहता है लेकिन उसे सरकारी ऑफिस से पैसे लेने के लिए इतने लोगों को रिश्वत देनी पड़ती है कि उसके हाथ में चंद पैसे

ही आते हैं और वह कुआँ नहीं बनवा पाता है। फिल्म के अंत में एक ग़ज़ल जल संरक्षण का संदेश देती है–

पानी को तरसते पानी को सिसकते
पानी को लूटते, पानी से खेलते चेहरे
पानी से खेलते खेलते पानी को लूटते चेहरे
पानी के कितने चेहरे।[5]

कौन कितने पानी में–

2015 में रिलीज हुई 'कौन कितने पानी में' का निर्देशन नील माधव पांडा ने किया। फिल्म की कहानी जल संकट पर आधारित है। फिल्म में मुख्य बिंदु पर फोकस किया गया था कि अगर समय रहते पानी के बचाव को लेकर नहीं सोचा गया तो आने वाली पीढ़ी कैसे अस्तित्व को बचाएगी। सौरभ शुक्ला ऐसे जमींदार का रोल करते हैं जिनका खेत खलिहान और पहाड़ों से पैसा कमाना ही मुख्य उद्देश्य रह गया है। 'बात है जीवन की, जीवन चलता है पानी से। बारिश तो अभी भी आती है वैसे ही, पर हम उसका आतिथेय नहीं कर पाते, करते भी कैसे, वही ऊँचे लोग जो अपना पिछवाड़ा भी खुद नहीं धोते, पानी बरसता है वह बहकर चला जाता है।' कच्छ के रण की पृष्ठभूमि पर बनी फिल्म में पानी की कमी होने वाली परेशानी को दिखाया गया है। यहाँ पानी के लिए कोई कुछ भी कर सकता है। यह बात समझ में आ ही गई होगी कि कौन कितने पानी में है।

कड़वी हवा (नील माधव पांडा)–

61वें नेशनल फिल्म अवॉर्ड्स में स्पेशल मेंशन से सम्मानित इस फिल्म में पर्यावरण के असंतुलन को बेहतर ढंग से रेखांकित किया है। जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ता जलस्तर और सूखे की समस्या फिल्म का मुख्य विषय है। एक तरफ बुंदेलखंड का विशाल सूखा

मैदान, खेत बंजर हो चुके हैं तो दूसरी और ओडिशा का बाढ़ग्रस्त इलाका जहाँ समुद्र का पानी, कब इंसानी बस्ती को अपने अंदर समेट लेता है। प्रसिद्ध गीतकार गुलजार साहब की नज़्म भी इसमें है–

'मौसम बेघर होने लगे हैं,
जंगल, पेड़, पहाड़ इंसान सब कुछ काट रहा है।'
छीन छील के खाल जमीन की टुकड़ा टुकड़ा बाँट रहा है
आसमान से उतरे मौसम, सारे बंजर होने लगे हैं
मौसम अब बेघर होने लगे हैं। मौसम बेघर होने लगे है।[6]

कालीचाट–

कहानी में दिखाया गया है कि एक गरीब किसान ट्यूबवेल खरीदने के सपने को लेकर किस तरह प्रशासन और बैंक वालों के बीच पिसता है। अंत में उसका वह सपना तो पूरा नहीं होता और वह मौत को गले लगा लेता है।

हल्का (2018)–

नील माधव पांडा के निर्देशन और निर्माण में बनी यह फिल्म भारत में बड़े पैमाने पर खुले में शौच करने की समस्या पर प्रकाश डालती है। इस फैमिली ड्रामा फिल्म में एक छोटे बच्चे पिचकू की कहानी दिखाई गई है जो दिल्ली के स्लम इलाकों से उठकर अपना खुद का शौचालय बनवाने के लिए मंत्रालय तक पहुँच जाता है जबकि उसके पिता ऐसा नहीं चाहते। इसी बीच उसे सरकारी तंत्र में फैले भ्रष्टाचार का भी सामना करना पड़ता है। इस छोटे बच्चे के संघर्ष की कहानी को नेटफ्लिक्स पर देखा जा सकता है।

प्रोजेक्ट मराठवाड़ा– प्रकाश पटेल की इस फिल्म में महाराष्ट्र के मराठवाड़ा के अति सूखाग्रस्त इलाकों में पानी की किल्लत के लिए

आम किसान, आदमी को जूझते दिखाया गया है। ओमपुरी (तुकाराम) ने ऐसे ही किसान का रोल प्ले किया है।

सूखी है धरती, सूखे खेत खलियान
सूखे सारे सपने सूखे सारे अरमान।
जाऊँ तो कहाँ जाऊँ कुछ भी नहीं मुझे
खाली पिचके पेटों की भूख कैसे बुझे,
कर्ज से बोझिल तकाजों से परेशान
ओ मेरे अन्नदाता त्राहिमाम त्राहिमाम

(ब) फिल्मों में प्रकृति चित्रण–

सुंदर–सुंदर खेत–खलिहान, नदी, लहरें, झरने ऊँचे–ऊँचे पहाड़ या सुदूर रेगिस्तान हर रूप में प्रकृति फिल्मों में उपस्थित रही है। वन क्षेत्र दिनों–दिन घट रहे हैं। हरियाली कम होती जा रही है। शहरीकरण के चलते जंगलों को उजाड़ा जा रहा है। खनिजों की खातिर पहाड़ों को खोदा जा रहा है। मनुष्य की इसी सोच ने प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ा है। एक समाज द्रष्टा की भांति फिल्मकार भी इस वेदना को समझ रहा है और समझता रहेगा।

स्प्रिंग थंडर–

यह एक ऐसी फिल्म है, जो जमीन अधिग्रहण व भू–माफियाओं के जाल में फँसे आदिवासियों की आवाज को बुलंद करती है। वहीं यूरेनियम माफिया के जंगल अतिक्रमण को भी रेखांकित करती है। ठीक उसी प्रकार कोयलांचल कोयला के अति उत्खनन को उल्लेखित करती है। फिल्म में दर्शाया गया है कि कोयला उत्खनन में भले ही सरकार का अधिग्रहण हो गया हो, परंतु अभी भी कोयला निकालने का ठेका स्थानीय बाहुबलियों के पास ही रहता है। सरयूभान सिंह एक ऐसा ही बाहुबली ठेकेदार है जो आदिवासियों की जमीन से कोयला तो

निकालता है परंतु उस धधकती जमीन में रेता नहीं डलवाता जिससे न केवल वायु प्रदूषण बढ़ रहा है, अपितु जमीन भी अनुपजाऊ बनती जा रही है। स्प्रिंग थंडर फिल्म आदिवासियों के जीवन को बहुत ही खूबसूरत तरीके से उठाती है। फिल्म के निर्देशक खुद इस फिल्म में अभिनय करते नजर आते हैं। फ़िल्म की कहानी वन माफियाओं पर आधारित है जो आदिवासियों की जमीनों पर अधिग्रहण कर शहर बसाते हैं। असहाय वनमानुष पेड़ों से चिपक जंगल के पेड़ों की रक्षा करते हैं।

गैंग्स ऑफ वासेपुर–

इसका कथ्य भी कोयले की तस्करी से ही जुड़ा है। झारखंड के धनबाद में कोयला माफिया की गतिविधियों से प्रेरित होकर गैंग्स ऑफ वासेपुर तीन आपराधिक परिवारों के बीच सत्ता संघर्ष और राजनीति को दर्शाता है। गैंग्स ऑफ वासेपुर की पहली किस्त में मनोज वाजपेयी, नवाजुद्दीन सिद्दीकी, ऋचा चड्ढा, हुमा कुरैशी, विनीत कुमार सिंह, तिग्मांशु धूलिया और पंकज त्रिपाठी की मुख्य भूमिका थी।

'इसके अतिरिक्त लोटा, पानी, दुपट्टा, वाटर हंटर, प्याऊ, नौर, लिटिल फ्रेंड, गो ग्रीन, बालेमा, चकाचक, बिन पानी सब सून, गांजे की कली, मुहाय जंगल, निरंग पझरा, मोती बाग (ऑस्कर के लिए नामांकित), कोरा राजी (झारखंड के आदिवासियों के विस्थापन), बिटवीन द ट्रीज गोरखपुर के आदिवासी क्यों बंधुआ मजदूरी के लिए विवश हैं, इन विषयों को उठाती है। पानी पर लिखा (संजय कॉक) आदिवासी के विस्थापन और 'रेड एंट ड्रीम्स' में नियमगिरि व बस्तर के आदिवासी संघर्ष को दर्शाया गया है।'[7]

थोड़ा पीछे जाएँ तो विभाजन पर केंद्रित फिल्म 'गर्म हवा' के चर्चित निर्देशक एम.एस सथ्यु ही सबसे पहले सिनेमा में पारिस्थितिकी की पड़ताल करते पाए जाते हैं। उनकी फिल्म 'सूखा' (1983) एक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में सूखाग्रस्त इलाकों की कहानी सामने लाती है।

कन्नड लेखक यू.आर अनंतमूर्ति की कहानी पर आधारित इस फिल्म में ट्यूबवेल लगाकर सूखाग्रस्त इलाकों में पानी पहुँचाने के हर प्रयास को राजनेता और नौकरशाह नाकाम करने में जुटे हैं।

वसुंधरा–

कुछ साल पहले पूना फिल्म इंस्टीट्यूट से निकले निर्देशक अशोक आहूजा अपनी दूसरी फिल्म 'वसुंधरा' (1988) के जरिए पर्यावरण के मुद्दे को गंभीरता से उठाते हैं। नसीरुद्दीन शाह, नीना गुप्ता, बेंजामिन गिलानी और टॉम ऑल्टर इस फिल्म में मुख्य भूमिकाओं में थे। फिल्म समीक्षक मनमोहन चड्ढा लिखते हैं, "वसुंधरा' को पर्यावरण के विषय को बेहतर ढंग से प्रस्तुत करने वाली फिल्म भी कहा जा सकता है। 'वसुंधरा' अत्यंत जटिल और मूलभूत प्रश्नों से जूझती है। आहूजा विस्तार से तथा एक कथा के माध्यम से बताते हैं कि पृथ्वी की ऊपरी सतह नष्ट हो जाने का क्या अर्थ है। एक पेड़ काटे जाने या पहाड़ों से पत्थर निकालने के लिए एक विस्फोट करने की इस समाज तथा प्रकृति को कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। यह पृथ्वी एक इंच जमीन की उपजाऊ परत बनाने में सैकड़ों बरस लगाती है। उसी उपजाऊ परत को हम लगातार नष्ट कर रहे हैं।"[8]

विशिंग ट्री–विशिंग ट्री भी प्रकृति संरक्षण की एक बेहतरीन अभिव्यक्ति है जिसमें प्रसिद्ध अभिनेत्री शबाना आजमी ने मुख्य भूमिका निभाई है। भारतीय सिनेमा के महानायक अमिताभ बच्चन ने इस फिल्म में अपनी आवाज़ विशिंग ट्री यानी कल्पवृक्ष को दी है। यह फिल्म 6000 साल पुराने कल्पवृक्ष और विशिंग ट्री के चारों ओर घूमती है और इसमें पाँच बच्चों का किरदार किस तरह से इस पेड़ से भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ है और कैसे ये एकजुट होकर अपने जादुई पेड़ को विनाश से बचाते हैं। अंत में वही कल्पवृक्ष दुनिया को

प्रकृति से प्यार करने का संदेश देता है जिसमें प्रकृति संरक्षण का भाव निहित है। मैं ही नहीं, हर वृक्ष कल्पवृक्ष है। उससे प्यार करो। फिर देखो तुम्हारी जिंदगी बदल जाएगी। यह हवा, पहाड़, पंछी, रंग–बिरंगी तितलियाँ और तुम खुद प्रकृति की खूबसूरती के अलग–अलग रंग ही तो हो, जरा सोचो, एक भी रंग अगर मिट जाए या फीका पड़ जाए तो कैसी लगेगी, इन सभी रंगों की चमक बनी रहेगी? कुदरत से प्यार करो, कुदरत से प्यार करो।[9]

कार्यवन– एन. राघवन की कार्यवन फिल्म भी कुछ ऐसी ही सच्चाइयों का जिक्र करती है। इसमें जंगली जानवरों की तस्करी, उनका शिकार, हाथीदाँतों का व्यापार, चंदन के पेड़ों की कटाई आदि का चित्रण समाज और व्यक्ति को सोचने को मजबूर करता है।

कार्बन– जैकी भगनानी की कार्बन फिल्म भी गंभीर पर्यावरणीय मुद्दों जैसे ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन और हमारी दुनिया पर उनके प्रभाव से संबंधित है। इसका कथानक पर्यावरण में घटते ऑक्सीजन स्तर व कार्बन के वृद्धिकरण को चित्रित करता है। कई साल पहले ऑक्सीजन हमारे प्लेनेट पर फ्री अवेलेबल थी, लेकिन आज ऑक्सीजन एक प्रोडक्ट बन गई है। इसे पाने के लिए लोग–बाग मरने–मारने पर उतारू हो जाते हैं। आज ऑक्सीजन अरबों डॉलर का कारोबार है। फ्री है तो केवल कार्बन है। जो ऑक्सीजन की कीमत नहीं समझेगा, वह मरेगा।[10]

यह देखना होगा कि आज जिस कदर मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर प्रकृति व पर्यावरण से, जीव–जंतुओं से, नदी–नालों से, पेड़–पौधों से जिस भी रूप में खिलवाड़ कर रहा है, इसका नतीजा कहीं न कहीं वह और उसकी आने वाली पीढ़ी भुगतेगी। प्राकृतिक आपदाएँ, बिगड़ता मौसमी चक्र, सुनामी, ग्लेशियर का पिघलना, क्लाइमेट का दिनोंदिन

बदलना, बंजर भूमि, बढ़ता समुद्र, घटते पेड़, अम्लीय वर्षा आदि ऐसी ही प्राकृतिक स्थितियाँ हैं जिन पर अभी नियंत्रण नहीं किया गया तो आने वाला वातावरण और भी दूषित व चिंतनीय होगा।

(स) प्राकृतिक आपदाओं को दर्शाती फिल्में

पर्यावरण प्रदूषण के कारण मौसम बदल रहा है। मौसम विभाग द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार 2010–2019 सदी का सबसे गर्म दशक था। पिछले 31 वर्षों में दूसरी बार सबसे अधिक समय तक इतना उच्च तापमान रिकॉर्ड किया गया था। 'इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गेनाइजेशन' के सर्वे में पता चलता है कि कश्मीर में ग्लेशियरों से जमीन में 21 प्रतिशत की कमी आई है।[11]

केदारनाथ– अभिषेक कपूर ने 'केदारनाथ' में बाढ़ की त्रासद घटना को एक प्रेम कहानी के रूप में व्यक्त किया है। फिल्म में दिखाया गया है कि केदारनाथ यात्रा के अति भार, वहाँ बढ़ते होटल–व्यवसाय ने हिमालय की पहाड़ियों को न केवल खोखला किया है अपितु बढ़ते शहरीकरण व बाजारीकरण के कारण देवभूमि में आए दिन प्राकृतिक आपदाओं के प्राकृतिक संकेत दिखलाई पड़ रहे हैं।

देवभूमि– यह फिल्म भी कुछ ऐसा ही भाव व्यक्त करती है। सर्बियाई मूल के अंतरराष्ट्रीय फिल्मकार गौरान पास्कल की फिल्म 'देवभूमि' का कथानक ऐसे ही संदर्भ उपस्थित करता है, जिसमें हिमालय की बाढ़ के कारण गाँव के गाँव बह जाते हैं। आज वही पहाड़ वीरान पड़े हैं। केवल पर्यटन के नाम पर लोग वहाँ आते हैं। इन विषम परिस्थितियों ने ग्रामीणों के विस्थापन को जगह दी है।

तुम मिले– तुम मिले फिल्म 2005 में मुंबई में आई बाढ़ पर बनी थी। फिल्म में दिखाया गया था कि कैसे मुंबई में बाढ़ का असर लोगों पर पड़ा और कैसे लोगों ने खुद को बचाया।

शेरनी– अमित मसुरकर की फिल्म 'शेरनी' के क्लाइमेक्स में हम नायिका विद्या बालन को एक म्यूजियम में देखते हैं जहाँ संरक्षित किए तमाम जीव–जंतुओं के बीच उनकी मौजूदगी उतनी ही बेतुकी लगती है, जितने संरक्षित किए गए जंगली जानवर। 'शेरनी' हाल के दिनों में आई एक महत्त्वपूर्ण फिल्म इसलिए है कि यह बिना किसी घिसे आदर्शवाद का सहारा लिए मनुष्य और वन्य जीवन तथा हमारी सरकारी मशीनरी के अंतर्संबंधों को परत–दर–परत खोलती है।

फिल्म एक नए अर्थ में जेंडर विमर्श को भी सामने लाती है। नायिका विद्या जो एक वन्य अधिकारी है बतौर स्त्री वन्य जीवन के संरक्षण, मनुष्य और जंगल के बीच हो रहे संघर्ष के प्रति चिंतित है। वह साहसी है, तेज है और उसे हालात को काबू में करना आता है। मगर धीरे–धीरे पूरा सिस्टम उसे हाशिये पर धकेलता जाता है और अंत में वह खुद को एक नेचुरल हिस्ट्री के म्यूजियम में देखती है। यह फिल्म बहुत गहरे तक उद्वेलित करती है और सोचने पर विवश करती है।[12]

औद्योगिक प्रदूषण पर दूसरी फिल्म है अपर्णा सिंह की **इरादा** (2017) जो बठिंडा के ताप विद्युत संयंत्रों और कारखानों की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इस फिल्म को एक थ्रिलर की शैली में बनाया गया है। एक पूर्व सेना अधिकारी की बेटी को जानलेवा बीमारी का पता चलता है। धीरे–धीरे यह रहस्योद्घाटन होता है कि यह धरती में मौजूद पानी में रिस रहे रासायनिक तत्वों के कारण है। केमिकल की रिवर्स बोरिंग के कारण पंजाब के उस इलाके का पानी संक्रमित हो चुका है। जमीन जहरीली हो गई है और उस इलाके में कैंसर तेजी से फैला है।

बहरहाल, सिनेमा का पर्यावरण–संरक्षण के प्रति दायित्व अब और बढ़ने लगा है क्योंकि पर्यावरण प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन आने वाले समय के सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे बनेंगे। अतः हमें इस विषय को अधिक जागरूकता के साथ देखना चाहिए। अगर हर मनुष्य अपने

हिस्से का कार्य पूर्ण आस्था, निष्ठा के साथ करे तो धरती और पर्यावरण को संतुलित किया जा सकता है।

संदर्भ–

1. पर्यावरण शब्दकोश, सुधीर कुमार मिश्रा, अनिल कुमार मिश्रा, पृष्ठ–7,संस्करण–2017, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. India.com Hindi NewsDesk, 28 मई 2019 में प्रकाशित, अभिगमन तिथि–17/9/22
3. फिल्म 'दिशा', निर्देशक– सई परांजपे, 1992
4. सिनेमा का समाजशास्त्र, जवरीमल पारिख, 2006, पृ 154, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।
5. फिल्म 'वेलडन अब्बा' –निर्देशक–श्याम बेनेगल, 26 डंतबी 2010।
6. फिल्म 'कड़वी हवा', नील माधव पांडा, 2018।
7. पर्यावरण की पाठशाला बन सकता है सिनेमा–दिनेश श्रीनेत का लेख डाउन टू अर्थ में मंगलवार 30 नवंबर 2021, अभिगमन तिथि–16/9/22
8. हिंदी सिनेमा का इतिहास–मनमोहन चढ्ढा, सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ –73, संस्करण–1991
9. फिल्म विशिंग ट्री, निर्देशक मोनिका शर्मा, 2012।
10. फिल्म कार्बन, निर्देशक जैकी भगनानी, 2019।
11. इंडियन स्पेस रिसर्च आर्गेनाइजेशन के सर्वे से, राजस्थान पत्रिका, 2 अप्रैल 2020, अभिगमन तिथि 17 अगस्त 2022।
12. फिल्म 'शेरनी', निर्देशक अमित मसूरकर, 2022

पृथ्वी पर हमारी जरूरतों के लिए पर्याप्त संसाधन हैं, लेकिन हमारे लालच के लिए नहीं।

– महात्मा गांधी

साहित्य की पारिस्थितिकी

डॉ. के. वनजा

आधुनिकता औद्योगिक संस्कृति का सौंदर्यशास्त्र है पर समकालीनता सांस्कृतिक विमर्श है। इसे आधुनिकता की हार–जीत से उत्पन्न सांस्कृतिक तर्क भी कहा जा सकता है। या यों कहिए कि आधुनिकता का सांस्कृतिक प्रतिरोध है समकालीनता। सहज स्वाभाविक संस्कृति की गरिमा की उद्‌घोषणा है इसमें। आधुनिकता की संस्कृति में मनुष्य की निर्मितियाँ हैं, यानी वह कृत्रिम है। औद्योगिक उपजों की निर्मिति के लिए मनुष्य ने प्रकृति का शोषण किया। वह प्रकृति से अलग होकर एक नवीन संस्कृति का निर्माण करने लगा। इसकी खतरनाक परिणति है– पर्यावरण नाश। इससे जो सामाजिक, सांस्कृतिक, संवेदनात्मक एवं आध्यात्मिक विचलन उत्पन्न हुए, उससे समकालीनता सजग हो उठी है, इसलिए शेष वन्य प्रकृति, मनुष्य और आगामी पीढ़ी को बचाने हेतु जो दर्शन रूपायित हुए, वे सब शुरू में आंदोलनों में प्रकट हुए तो बाद में सर्जनात्मकता से मिलकर उच्च साहित्यिक रचनाओं में। इसलिए अवचेतन में सुप्त पड़ी सहज वासनाएँ, आद्य बिंब–मिथक, लोककथा, लोकगीत, अनुष्ठान आदि से संश्लिष्ट प्रकृतिजन्य संस्कृति की स्मृति दिलाती और जगाती समकालीन साहित्यिक रचनाएँ पर्यावरण विमर्श पर सोचने की प्रेरणा देती हैं।

पारिस्थितिकीः अवधारणा एवं विस्तारः

खेती से उद्योग की ओर मनुष्य का कर्मक्षेत्र जब बदल गया तब पारिस्थितिक दर्शन पर भी बड़े पैमाने पर परिवर्तन आना शुरू हुआ। कृषि बिलकुल प्रकृति के स्पंदन से जुड़ी हुई वृत्ति है। कृषि युग में जलवायु एवं भौगोलिक स्थिति मनुष्य की ज़िंदगी एवं संस्कृति को चालित करती थी। कृषि से मिलकर सामूहिक जीवन का आविर्भाव हुआ। स्वाभाविक रूप से इसके साथ मनुष्य की ज्ञान–वृद्धि भी हुई, चिंतनों एवं दृष्टियों में भी बदलाव आने लगा। मिट्टी को जानने के साथ पर्यावरण को भी जाना गया। मनुष्य के मनोमंडल को हवा, वर्षा, पेड़–पौधे, जीव–जंतु और सूर्य–चंद्र ने प्रदीप्त कर दिया। जहाँ–जहाँ खेती शुरू हुई, वे सारे प्रदेश खेती की उर्वर भूमि बन गए।

मनुष्य, संसार के अन्य जीव–जंतु तथा उनकी परिस्थितियाँ मिलकर उत्पन्न पारिस्थितिक व्यवस्था है– इको सिस्टम। चेतन एवं अचेतन सब इसके हिस्से हैं। 'इकोलॉजी' शब्द का प्रथम प्रयोग जर्मन विद्वान एणेस्ट हैकिल ने किया (Oclologie –1886)। जीव जंतुओं के परस्पर संबंधों पर केंद्रित इस अध्ययन में आज भौतिक, भौतिकेतर संसार, भावलोक एवं मनोलोक भी दर्ज हुए हैं। हमारी सांस्कृतिक व्यवस्था इन सबके मेलमिलाप से निर्मित है। साथ ही देश–देशांतर का भ्रमण करके दीगर भूमियों एवं भूखंडों की विशेषता की जाँच करने वाले यात्रीगण भी आ गए। उनकी खोजों से वे खुद भ्रमित हो गए। धीरे–धीरे यह उपनिवेश के रूपायन की वजह बन गया। परिणामस्वरूप जिन–जिन देशों में संस्कृति निर्मित हुई, वे देश शिकार तथा जिन्होंने उन संस्कृतियों को खोज निकाला, वे शिकारी बन गए। मनुष्य और प्रकृति की अवस्थिति से जब एक संतुलित सात्विकता पैदा हुई। तब मनुष्यता और सहज–स्वाभाविक जो भी है, उन सबको धन से

मापने–नापने की प्रतिसंस्कृति शिकारियों द्वारा निर्मित की गई। इस प्रतिसंस्कृति की सीमातीत घुसपैठ के बीच अपने समृद्ध पारंपरिक संस्कार को बचाए रखने की कोशिश भी ज़ारी रही। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है एक रेड इंडियन का एक अमेरिकन प्रेसिडेंट से अनुरोध कि मिट्टी, वायु और पानी की बिक्री कभी नहीं होनी चाहिए।

पर्यावरण संकटः

दर्शनों एवं आंदोलनों के आगमन के पहले मनुष्य की जीवनचर्या को पर्यावरण से अलग करके देखना नामुमकिन ही था। तब जीवन इतना जटिल तो नहीं था। संस्कृति की यात्रा की रफ्तार बहुत धीमी थी। मनुष्य की संख्या भूमि के लिए बोझ नहीं थी। सुरक्षा और सुख की वृद्धि के साथ मनुष्य की आबादी भी बढ़ गई। आज की बढ़ती जनसंख्या की बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति करने में भूमि नाकाबिल है। बिना किसी नियंत्रण के बढ़ती आबादी भूमि के संतुलन को ही नष्ट करके दूसरे जीवजंतुओं के लिए भी बहुत बड़ा खतरा बन गई है। जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप कई विकास योजनाओं की ज़रूरत आ पड़ी है। आज ज़रूरत से ज्यादा विकास योजनाएँ पूंजीवादी औद्योगिकीकरण से जुड़ी हुई हैं, पर समकालीन दौर के भूमंडलीकरण में नवउपनिवेशी पूंजीवाद का सबसे भयानक रूप दिखाई देने लगा है। इस प्रक्रिया में उच्चवर्ग के साथ मिलकर मध्यवर्ग भी सुख का लालची बनकर पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ने वाली कई विकास योजनाओं का समर्थक बन गया। मध्यवर्गीय लोग भी तात्कालिक प्रयोजन में अंधे हो गए, भविष्य द्रष्टा नहीं रहे।

विकास योजनाओं के आयोजन से मुख्यतः दो प्रकार के पारिस्थितिक संकट पैदा होते हैं। वे हैं– जैव संकट और सामाजिक संकट। जैव संकट पेड़–पौधे, जीव–जंतु, मिट्टी, समुद्र, वायु, जल आदि के शोषण

से उत्पन्न है। सामाजिक संकट में मुख्यतः शहरीकरण के उपलक्ष्य में जो विकास योजनाएँ हो रही हैं जैसे बाँधों का निर्माण, औद्योगिक नगरियों या विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZ) की योजना, एक्सप्रेस हाइवे आदि के निर्माण से जो लोग भूमिहीन बनकर विस्थापित हो जाते हैं, वे सब दरिद्र या समाज के निम्न तबके के हैं। इन योजनाओं से मुनाफा कमाने वाला पूंजीपति वर्ग है। बहुसंख्यकों का विकास अवरुद्ध रह जाता है और वे मानसिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विस्थापित हो जाते हैं।

गांधी जी और पारिस्थितिकी:

गांधी जी दुनिया के सबसे बड़े पर्यावरण चिंतक एवं पर्यावरण मित्र थे। पर्यावरणीय समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से गहरा विश्लेषण विवेचन कर उनका समाधान भी प्रस्तुत करने में वे समर्थ हुए। प्रकृति और मनुष्य के अन्योन्याश्रित जीवन के समग्र दर्शन को संसार के सामने प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अपनी दूरदर्शिता प्रमाणित की। गांधी जी के पर्यावरण संबंधी विचार बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। यूरोपीय देशों में औद्योगिक क्रांति से जो परिवर्तन उभरा, उसने एक नवीन संस्कृति को जन्म दिया। गांधी जी ने उस संस्कृति को फैक्टरी संस्कृति कहकर उसे मनुष्य का हिंसक माना। यह मानवीयता और प्रकृति का शोषण करनेवाला उपभोग संस्कार है। यह यंत्र संस्कार हमेशा आडंबरप्रियता को बढ़ावा देता है और पूंजीवाद को बनाए रखने वाले साम्राज्यवादी संस्कार को मज़बूत भी करता है।

धार्मिकता और आध्यात्मिकता को छोड़कर जो आधुनिक संस्कृति रूपायित हुई है, वह लंबे समय तक नहीं टिकेगी। गांधी जी ने एक समग्र जीवन–दर्शन को हमारे सामने प्रस्तुत किया। वेद और उपनिषदों द्वारा दिये गए भौम सदाचार की व्याख्या है गांधी जी के पारिस्थितिक

दर्शन का मूलाधार। उन्होंने सभी क्षेत्रों में भौतिकता तथा आध्यात्मिकता को समन्वित करने की ज़रूरत पर बल दिया। भूमि और धरती के पोषण को महत्व देने वाले भारतीय दर्शन का निचोड़ भी वही है। 1909 में रचित हिंद स्वराज सचमुच पारिस्थितिक दर्शन का घोषणापत्र माना जा सकता है। उन्होंने उसमें यह जाहिर किया कि भौतिकता पर केंद्रित संस्कृति, औद्योगिक संस्कृति प्राकृतिक संसाधनों के निर्मम नाश एवं लूट तथा सभी ऊर्जा स्रोतों के शोषण की वजह बनेगी। मशीनीकृत प्रौद्योगिकी विद्याएँ बाह्याडंबर एवं उपभोग संस्कार के लिए मार्ग प्रशस्त करने वाले विकास के गलत नमूने हैं। यह गांधी जी की चेतावनी है।

गांधी जी के दर्शन की आधार शिलाएँ हैं– सत्य और अहिंसा। उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों के शोषण को हिंसा माना, इसलिए आडंबरपूर्ण जीवन को उन्होंने हिंसा कहा। मनुष्य की आत्मा के विकास को उन्होंने सही विकास कहा। उन्होंने अपने विचारों से भारतीय संस्कृति को एक नूतन रूप प्रदान करने की कोशिश की। भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण तत्व हैं आत्मनियंत्रण, सादगी, प्रकृति के साथ सहृदयता, स्नेह, सत्य और अहिंसा। गांधी जी द्वारा निर्धारित नवीन संस्कृति के मेरुदंड ही भारतीय संस्कृति के ये तत्व हैं। गांधी जी ने 1909 में जो संवाद 'हिंद स्वराज' के ज़रिये शुरू किया, उसकी प्रासंगिकता आज बढ़ रही है।

मार्क्स और पारिस्थितिक दर्शनः

'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' ही मार्क्सवाद का सिद्धांत है। इसका जैव विकास सिद्धांत है डार्विन का विकासवाद। उसके अनुसार प्रकृति से प्रकृति का ही हिस्सा बनकर रूपायित है मनुष्य। इस प्रकार रूपायित मनुष्य अन्य जीवों से अपने प्रयत्नों के द्वारा भिन्न हो गया और इस संसार का संचालक बन गया। इस विकास यात्रा में मनुष्य द्वारा हासिल की गई कामयाबियाँ हैं– आज की दुनिया, संस्कृति,

प्रगति आदि। मनुष्य द्वारा प्रकृति में जो–जो निर्मितियाँ संपन्न हो रही हैं उन्हें संस्कृति या प्रगति नाम से हम अभिहित करते हैं, लेकिन इनमें हर प्रगति एक प्रकार से, प्रकृति से हमारी दूरी को सूचित करने वाला पड़ाव है। ये निर्मितियाँ मनुष्य को आधुनिक बना देती हैं और मनुष्य की शक्तियों एवं सिद्धियों को सीमातीत भी। यह प्रकृति और मनुष्य के बीच के संतुलन को बनाए रखने में बाधा बन जाती है। इस द्वंद्वात्मकता साम्राज्यवादी पारिवेशिक विकास नीति ने समकालीन पर्यावरण समस्याओं को बहुत मार्मिक बना दिया है। एंगेल्स ने 'प्रकृति की द्वंद्वात्मकता में सूचित किया है कि प्रकृति पर मनुष्य द्वारा अर्जित जीतों पर सीमातीत आत्मप्रशंसा करने की ज़रूरत नहीं है। प्रत्येक जीत के लिए प्रकृति हमसे प्रतिशोध करती है। हर जीत हमें प्रत्याशा देती है तो बार–बार सोच–विचार करने पर वह बिलकुल उल्टे परिणाम पर पहुँचती है। मेसोपोटामिया, ग्रीक, एशियामैनर जैसे प्रदेशों में खेती के लिए जंगलों का नाश किया गया, तब जंगल के साथ जलस्रोतों और जलसंचयों का भी नाश हुआ। यह उन देशों के अनाथत्व का कारण बन गया। इसका तात्पर्य यह है कि एंगेल्स उसी समय से ही प्रकृति के शोषण के प्रति चिंतित थे और इसलिए आज 'Dialects of Nature' बहुत प्रासंगिक नज़र आता है।

भूमि, प्रकृति, व्यक्ति, मनुष्य–समूह, विवेक, शक्ति–सिद्धि आदि को रूपायित करना, अच्छा करना, सबसे श्रेष्ठ बनाकर वापस करना विकास एवं दुनिया की प्रगति संबंधी मार्क्स के दर्शन के मूल तत्त्व हैं। वर्तमान प्रकृति का विनाश किए बिना उसका पोषण करते रहना ही हर परिस्थितिवादी का मुख्य लक्ष्य है, लेकिन कुछ लोगों की मान्यता यह है कि मनुष्य–प्रयत्न और उस पर केंद्रित विकास को मुख्य मकसद मानने वाला मार्क्सवाद मनुष्य केंद्रित है। मार्क्सवाद ऐतिहासिक प्रक्रिया

से प्रकृति और मनुष्य में उत्पन्न विकास का वैज्ञानिक विश्लेषण करके उसकी सफलता एवं असफलता की ओर हमेशा इशारा करता आ रहा है। मनुष्य और प्रकृति इस विश्वसत्ता के दो अभिन्न अंग हैं और प्रकृति से अलग मनुष्य का अस्तित्व संभव नहीं है, मार्क्सवाद यह अच्छी तरह से पहचानता है।

प्राकृतिक नियमों को पहचानकर उन्हें प्रकृति के ऊपर ही प्रयुक्त करके अपनी निर्मितियाँ तैयार करते हुए मनुष्य प्रकृति का मालिक बनता आ रहा है। ये तो मनुष्य और प्रकृति की पुनःसृष्टियाँ हैं। लेकिन ये मनुष्य–निर्मितियाँ और प्रकृति के ऊपर अधिकार ज़माना आदि तात्कालिक स्वार्थ लाभ के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करना ही है। सचमुच मनुष्य की ये वृत्तियाँ संहारात्मक हैं और पर्यावरण–विरुद्ध भी। पूँजीवादी–साम्राज्यवादी दुनिया में ये वृत्तियाँ प्रकृति–शोषण की सीमाओं को पार कर पर्यावरण विनाश में परिणत होने के राजनैतिक एवं प्राकृतिक कारण हैं। समकालीन पारिस्थितिक चिंतन एवं संवाद का परिवेश सचमुच यही है। इसलिए मार्क्सवाद के अनुसार पर्यावरण विनाश को समाप्त करने का व्यावहारिक हल कम्युनिस्ट व्यवस्था ही है। उसमें वैयक्तिक संपत्ति को हासिल करने, बनाए रखने और बढ़ाने का प्रयत्न और पूंजी रूपी औद्योगिक चालक शक्ति की केंद्रीयता आदि से उत्पन्न एक प्रदूषित समूह नहीं होगा। इसलिए मनुष्य और प्रकृति के बीच संपूर्ण ऐक्य इसमें रहेगा।

पारिस्थितिक दर्शनः

1970 से शुरू होकर 1990 तक बिल्कुल नई साहित्यिक दृष्टि बनकर दुनिया भर में विकास प्राप्त एक मानसिकता है– पारिस्थितिक दर्शन। इको–क्रिटिसिज्म (पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र) शब्द का सर्वप्रथम

प्रयोग विलियम रुकेर्ट ने 1978 में प्रकाशित अपने निबंध लिटरेचर एंड इकोलॉजी–एन एक्सपेरिमेंट में किया। साहित्यिक अध्ययन में परिस्थितिशास्त्र और पारिस्थितिक तत्वों के प्रयोग पर विचार करना उस निबंध का लक्ष्य था। यद्यपि विलियम रुकेर्ट ने इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किया तो भी प्रथम साहित्यिक समीक्षात्मक ग्रंथ 1974 में जोसफ मीकर द्वारा लिखित द कॉमेडी ऑफ सर्वाइकलः स्टडीज इन लिटरेरी इकोलॉजी है। साहित्यिक परिस्थितिशास्त्र को मीकर ने साहित्यिक कृतियों में अभिव्यक्त जीवशास्त्रपरक विषय के रूप में देखा। इसके साथ ह्यूमन इकोलॉजी में साहित्य की हिस्सेदारी पर विचार करने की कोशिश भी उसमें की गई है। उनके अनुसार साहित्यिक कृतियों में प्रकृति की प्रक्रियाओं में मनुष्य का विश्वास एवं आधुनिक पर्यावरण संकट के कारणीभूत सांस्कृतिक दर्शन भी प्रकट होते हैं। उन्होंने इस पर बल दिया कि मनुष्य के अस्तित्व एवं ज़िंदगी पर साहित्य के प्रभाव का अध्ययन करने में साहित्यिक परिस्थितिशास्त्र को सक्षम बनाना ज़रूरी है।

1990 के आसपास ही पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र एक नई समीक्षा पद्धति के रूप में संसार भर में उभरकर आने लगा। 1996 में अंग्रेज़ी में 'द इको–क्रिटीसिज़्म रीडर' शीर्षक आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इसकी मुख्य संपादिका हैं शेरिल ग्लोफेलटिया। इस ग्रंथ की भूमिका में शेरिल ग्लोफेलटिया ने इस नई आलोचनात्मक पद्धति की परिभाषा यों दी है – मानव संस्कृति का प्रकृति के साथ अटूट संबंध है। वे परस्पर प्रभावित हैं। यह आलोचना प्रकृति और संस्कृति के बीच के संबंध को ढूँढती है। एक आलोचनात्मक पद्धति के रूप में इसका एक पैर साहित्य में और दूसरा भूमि में है। एक दर्शन के रूप में यह एक साथ मनुष्य और मनुष्येतर सत्ताओं के साथ जुड़ा हुआ है। उनके

अनुसार आधुनिक साहित्य में संसार मनुष्य के सामाजिक संसार में सिमट रहा है। लेकिन इको–क्रिटिसिज्म में संसार व्यापक बनकर मनुष्य की पूरी आवास व्यवस्था को धारण करता है। यही इको–क्रिटिसिज्म को अन्य आलोचना–पद्धतियों से अलगाता है। अथवा यह एक भौम–केंद्रित साहित्यिक अध्ययन है।

प्रसिद्ध पारिस्थितिक चिंतक लोरेस बुवल के अनुसार हम कथापात्र, विषय, कथावस्तु से परिचित हैं। थल संबंधी बोध की उपेक्षा एवं अपमान किया जा रहा है। इस अवस्था को परिवर्तित करना पारिस्थितिक आलोचकों का लक्ष्य है। विविध प्रकार से इस अध्ययन में प्रयुक्त वर्ग, वर्ण, लिंग आदि प्रतिमानों के साथ थल को भी जोड़ने के पक्ष में अनेक नव आलोचक हैं। स्वेन बिरकेट्र्स नामक आलोचक का मानना है कि पारिस्थितिक चिंतन के केंद्र में बाह्य संसार या थल नहीं बल्कि मनुष्य ही है। वे इको–क्रिटिसिज्म को अहंबोध समीक्षा (Ego-Criticism) नाम से अभिहित करना चाहते हैं क्योंकि इसमें मनुष्य की प्रकृति, उसका लालच, अधिकार के प्रति अतिमोह आदि की खोज आवश्यक है।

पाश्चात्य पारिस्थितिक चिंतकों में ज्यादातर लोग इतिहास के बदले प्रकृति को स्थान देने वाले हैं। पर पारिस्थितिक दर्शन इतिहास से मुक्त नहीं है। प्रकृति के संरक्षण का मतलब प्राचीनता का संरक्षण नहीं है। इतिहास की उपेक्षा से काल की गति रुक जाएगी। इसके फलस्वरूप पारिस्थितिक दर्शक किसी प्रागैतिहासिक युग की ओर वापसी और भूतकाल की पुनरावृत्ति बनकर सीमित हो जाएगा। वॉल्टर बेंजामिन और लूयी मनफोड के यंत्रविरुद्ध दर्शन, रैमेंड विलियम्स के समाजवाद, इकोलॉजी और ग्राम–नगर के द्वैत संबंधी चिंतन, अडोणो, हेरबर्ट मर्क्यूस जैसे फ्रैंकफर्ट–स्कूल के चिंतकों की कृतियाँ एवं एगेंल्स के डायलटिक्स ऑफ नेचर के पुनर्पाठ नए पारिस्थितिक मार्क्सवाद के

लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। पारिस्थितिक चिंतक जॉन एल्डर के अनुसार इको–क्रिटिसिज्म की सबसे बड़ी अहमियत इसका अविश्वसनीय वैविध्य है।

परिस्थितिवाद की मुख्य शाखाएँ हैं– गहन परिस्थितिवाद (Deep Ecocriticism), सामाजिक परिस्थितिवाद (Social Eco-Criticism), समाजवादी परिस्थितिवाद (Marxist Eco-Criticism) पारिस्थितिक स्त्रीवाद (Eco-Feminism)

गहन परिस्थितिवादः

1973 में नॉर्वे के चिंतक अर्ननेस ने गहन परिस्थितिवाद नाम से एक नई दर्शन शाखा को जन्म दिया। इसके आधारभूत दो तत्व हैं। पहला है, मनुष्य के समान इस प्रकृति की सभी सत्ताओं का अपना मूल्य है और उन्हें अपने अस्तित्व को खुद ढूँढने का अधिकार है। प्रत्येक सत्ता का मूल्य इस पर केंद्रित नहीं है कि वह मनुष्य के लिए उपयोगी है या नहीं, इसलिए प्रकृति से मनुष्य को अपनी बुनियादी ज़रूरतों से ज्यादा संसाधनों को एकत्रित करने का अधिकार नहीं है। दूसरा है कि दर्शन को मनुष्य–केंद्रित तत्व से जैव–केंद्रित बनाना। तब भूमि में प्रत्येक सत्ता को अपना अस्तित्व प्राप्त हो जाएगा।

मनुष्य का आर्थिक जीवन स्तर लगातार बढ़ता जा रहा है। उसके लिए प्रकृति का अनुचित शोषण करना सही रास्ता नहीं है। उस दौर में मनुष्य की नीति, अर्थशास्त्र, कर्म प्रणाली आदि में परिवर्तन लाना चाहिए। इसके लिए अहिंसा के मार्ग को अपनाना चाहिए। भारतीय दर्शनों में बौद्ध–जैन दर्शन गहन परिस्थितिवाद को बढ़ावा देने वाले हैं। विश्व साहित्य में यह भाव बड़े पैमाने पर प्रयुक्त हो रहा है।

सामाजिक परिस्थितिवादः

पूंजीवाद ने प्रकृति और सामाजिक संरचना को समान रूप से आघात पहुँचाया है, पूंजीवाद के ज़रिए जो प्राकृतिक विनाश हो रहा है उसके संबंध में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से मार्क्सवादी दृष्टिकोण से पीटर क्रोपोरकीन, चार्ल्स फेरियर, विलियम मॉरीस जैसे विद्वानों ने लिखना शुरू किया था। बीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों तक आते–आते पारिस्थितिक दर्शन को नया प्राण मिलने लगा। यह अरुण हरित संगम मुख्यतः दो धाराओं से आगे बढ़ा– Social Ecology और Eco Marxism। इन दोनों की मुख्य समानता यह है कि गहन परिस्थितिवाद से अलग होकर ये पारिस्थितिक संकट के सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारणों पर ध्यान देते हैं। संकट के जैव रूप को दोनों पहचानते हैं।

1962 में रेचल कर्सन ने मौन वसंत (Silent Spring) लिखा। उसी वर्ष मुरे बुक्कच्चिन नामक एक अमेरिकी दार्शनिक ने कृत्रिम परिस्थिति नामक एक रचना की। इस रचना के ज़रिए सामाजिक परिस्थितिवाद को एक सुस्पष्ट परिभाषा एवं दार्शनिक आधार प्राप्त हुआ। बुक्कच्चिन ने कहा कि शून्य डिग्री में मनुष्य ने अन्य मनुष्यों के ऊपर अधिकार जमाने का कार्य किया था। अधीनस्थ बनाना उसकी सहज एवं स्वाभाविक वृत्ति ही है। मनुष्य जब गोत्र बनकर रहने लगा तब वह प्रकृति का अनुसरण करके ही जी रहा था। पर धीरे–धीरे गोत्र में पुरुष का अधिकार बढ़ने लगा। इसे सुदृढ़ रखने के लिए कई अधिकार संबंधी संरचनाएँ की गईं। परिणामस्वरूप पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियों को अधीन कर दिया गया। इस सामाजिक प्रभुत्व का स्वाभाविक परिणाम है प्रकृति पर अधिकार ज़माने की प्रणाली। इस प्रभुत्व को

समाज से दूर करने का प्रयत्न है बुक्कच्चिन का सामाजिक परिस्थितिवाद।

इको–मार्क्सवादः

इको–मार्क्सवाद के समकालीन प्रचारकों में मुख्य हैं जेम्स. ओ. कोणोर। बुक्कच्चिन के सामाजिक परिस्थितिवाद से भिन्न होकर इको–मार्क्सवाद राजनैतिक अर्थशास्त्र का विश्लेषण करता है। इसके अनुसार प्रयत्न, शोषण, उत्पादन, मुनाफे का दर, पूंजी का बँटवारा और केंद्रीकरण जैसे मुख्य मुद्दों के अध्ययन से ही पूंजीवाद के अधीन उत्पन्न होने वाले प्राकृतिक नाश पर विचार किया जा सकता है। पूंजीवादी व्यवस्था के आमूल चूल परिवर्तन से ही पारिस्थितिक संकट का हल संभव होगा। गहन परिस्थितिवादियों और सामाजिक परिस्थितिवादियों के समान ये भी प्रकृति की सत्ता और जैव–वैविध्य को मानने के साथ ही इसको इक्कीसवीं शती के मनुष्य के आधारभूत विज्ञान के रूप में मान्यता भी देते हैं।

इको–फेमिनिज्म

आधुनिक फेमिनिस्टों में सबसे पहले सिमोन द बोउवार ने स्त्री और प्रकृति को साथ रखकर विचार प्रस्तुत किया। पुरुषसत्तात्मक समाज ने स्त्री और प्रकृति की समानता पहचानकर दोनों का वस्तुकरण किया। इसलिए पुरुष ने स्त्री और प्रकृति को अपनी शक्ति के अधीन बनाकर नई संस्कृतियों का निर्माण करना शुरू किया। स्त्री और प्रकृति से भी बढ़कर श्रेष्ठ की सृष्टि करने की व्यग्रता में पुरुष प्रकृति को खोकर औद्योगिक संस्कृति के निर्माण में लग गया है। बोउवार के अनुसार पुरुष द्वारा निर्मित औद्योगिक संस्कृति में आर्थिक पहलू ही नहीं, मनोवैज्ञानिक पहलू भी हैं। विकास का यह पागलपन पुरुष के लिए विस्मृति है, स्त्री और प्रकृति को भूलने और उनसे दूर जाने का

मार्ग भी है। शेरी आटनर नामक अमेरिकी फेमिनिस्ट ने 1971 में यह सवाल उठाया कि क्या संस्कृति के लिए प्रकृति के समान है पुरुष के लिए स्त्री (Is female to man as nature is to culture)। इसका तात्पर्य यह है कि बोउवार के चिंतन एवं शेरी के सवाल में पारिस्थितिक स्त्रीवाद नामक दर्शन का बीजरूप विद्यमान है।

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में नारीवादी आंदोलन को नवीन चेतना प्रदान करते हुए पारिस्थितिक स्त्रीवाद अथवा इको–फेमिनिज्म विकसित हुआ। पारिस्थितिक दर्शन की अन्य शाखाओं से यह विकास प्राप्त करने लगा। इको–फेमिनिज्म नामक संकल्पना की दार्शनिक व्याख्या सबसे पहले फ्रेंच फेमिनिस्ट फ्रान्स्वा द यूबोण ने प्रस्तुत की। 1974 में उनके द्वारा फ्रेंच भाषा में रचित फेमिनिज्म अथवा मृत्यु शीर्षक रचना के इको–फेमिनिज्म का समय (The Time for Eco-feminism) नामक अध्याय में पारिस्थितिक स्त्रीवाद का प्रारंभ देख सकते हैं। फ्रान्स्वा के अनुसार भूमि के नाश का दायित्व पुरुषों पर है। उनके आक्रमणों से भूमि को मनुष्य की भलाई के लिए बचाए रखने में स्त्री समर्थ है। पाँच हज़ार वर्षों पहले खेती स्त्रियों के नियंत्रण में थी। उसे पुरुष ने अपने अधीन कर लिया। मिट्टी की उत्पादन क्षमता के साथ स्त्री की उर्वरता को भी अपने अधीन कर पुरुष ने अपनी सत्ता को आगे बढ़ाया। मिट्टी और स्त्री में बीज बोने का अधिकार पुरुष ने छीन लिया। आज की मुख्य दो समस्याएँ हैं – सीमारहित जनसंख्या वृद्धि और प्राकृतिक संसाधनों का नाश। ये दोनों पुरुष लिंगाधिपत्य की सृष्टियाँ हैं। पूंजीवाद और समाजवाद दोनों समान रूप से पर्यावरण नाश के कारण हैं। यदि पूंजीवाद मुनाफे के नाम पर काम करता है तो समाजवाद प्रगति के नाम पर।

फ्रान्स्वा ने इको–फेमिनिज्म को मानवतावाद के रूप में देखा। इसका लक्ष्य पुरुष के बदले स्त्री को प्रतिष्ठित करना नहीं है। इको–फेमिनिज्म का मकसद अधिकार और उसकी संरचना को शिथिल करना है। इसके साथ अमरीका में Institute of Social Ecology' ने इको–फेमिनिज्म शब्द का अंग्रेज़ी में प्रथम बार प्रयोग किया। इस संस्था ने 1976 में इको–फेमिनिज्म का पाठ्यक्रम चलाया। इको–फेमिनिज्म की मुख्य दार्शनिक नेस्त्रा किंग (Ynestra king) ने इसका दायित्व सँभाला। उन्होंने फेमिनिज्म और प्रकृति की कला शीर्षक प्रामाणिक पुस्तक तैयार की। इसके बीच 1978 में 'मेरी डाली का गौन इकोलॉजी' और सूसन ग्रीफ की 'स्त्री और प्रकृति' शीर्षक रचनाएँ भी प्रकाशित हुईं। 1980 में प्रकाशित करोलिन मरचेंट का ग्रंथ 'प्रकृति की मृत्यु' इको–फेमिनिज्म के प्रचार में बहुत सहायक निकला। बंगारे मथाई जैसी नोबल पुरस्कार प्राप्त महिला भी इसी क्षेत्र में सक्रिय थीं।

भारत में प्रकृति को बचाने में स्त्री हमेशा अगुआ रही है। बिश्नोई आंदोलन में पेड़ काटने के बदले में अमृता देवी ने अपना सिर रख दिया था। वैसे ही चिपको आंदोलन में भी गाँधी जी के विचारों से प्रेरित उनकी शिष्याएँ शुरू में आंदोलन के नेतृत्व में थीं। भारत में सबसे ज्यादा सक्रिय इको–फेमिनिज्म की चिंतक एवं कार्यकर्त्ता वंदना शिवा हैं। उन्होंने इको–फेमिनिज्म पर केंद्रित कई किताबें लिखी हैं। वंदना शिवा के अनुसार पितृसत्तात्मक पूंजीवादी विश्वदृष्टि से इस पृथ्वी के सारे जीवों के विमोचन एवं संरक्षण के लिए स्त्रियों को लड़ना चाहिए। पूँजीवादी संरचना पर आधारित सभी वृत्तियों का विरोध इको–फेमिनिज्म करता है। शिवा की दृष्टि प्रकृतिपरक एवं सिद्धांत भौगोलिक और राजनैतिक है और उसका एक ठोस लक्ष्य भी है। तीसरी दुनिया की

स्त्रियों पर भूमंडलीकरण और उपनिवेशवाद का जो दुष्परिणाम पड़ा, उसकी चर्चा अपनी कई किताबों में उन्होंने बहुत ही संजीदगी से की है। पाश्चात्य देशों में प्रचलित आध्यात्मिक इको–फेमिनिज्म से इको–फेमिनिज्म को अलग करके समाजवाद के परिप्रेक्ष्य में देखने का कार्य भी उन्होंने किया है।

कुल मिलाकर इको–फेमिनिज्म एक अंतर अनुशासनात्मक आंदोलन है जो प्रकृति, राजनीति, स्त्री और आध्यात्मिकता के संबंध में नए ढंग से सोचने के लिए प्रेरित करता है। यह सिद्धांत सभी पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं को नकारता है और पुरुष द्वारा स्त्री का जो शोषण हो रहा है, उससे पर्यावरण शोषण को जोड़ता भी है।

पारिस्थितिकीय भाषाशास्त्र (Eco-linguistics)

पारिस्थितिकीय समीक्षक समाज पर प्रभाव डालने की साहित्य की क्षमता को मानते हैं। उनका मानना है कि जनता को नियंत्रित करने और उनकी दृष्टि को बड़े पैमाने पर प्रभावित करने में साहित्य सफल है। जनसमूह के पर्यावरण संबंधी नज़रिए को सुधारने में साहित्य समर्थ है, अथवा उसको समर्थ होना चाहिए। उसको ध्यान में रखकर रचना करना है– साहित्यकार को। वे संरचनावाद का विरोध करते हैं। संरचना की स्वतंत्र अस्मिता नहीं है, उसका परिस्थिति के साथ संबंध भी नहीं है। साहित्य की संरचना परिस्थितिवाद से उत्पन्न होनी चाहिए। क्रिस्टोफर कुक्किनोस ने कंपोस्ट स्ट्रक्चरलिज़्म (Compost Structuralism) नाम इसी लक्ष्य से स्वीकार किया। यह एक सच्चाई है कि साहित्य की संरचना और भाषा में सुस्पष्ट पारिस्थितिकीय दर्शन होना चाहिए। हर रचना में पारिस्थिति को स्थान देते हुए उसकी समकालीनता पर विचार करना चहिए। रचनाओं की श्रेष्ठता पारिस्थितिक दर्शन से रूपायित होनी चाहिए। पारिस्थितिक दर्शन मनुष्य द्वारा

प्रयुक्त भाषा में कैसे प्रकट है, इसकी खोज करने वाला भाषाध्ययन है– इको–भाषाशास्त्र। इको–भाषावैज्ञानिक द्वारा की गई जाँच से उस काल का परिस्थितिबोध प्राप्त हो जाएगा। यह उदाहरणों के माध्यम से उन्होंने जाहिर किया है।

भाषाविज्ञान ने स्थापित कर दिया कि जनसमूह के द्वारा प्रयुक्त भाषा से उनकी जीवनदृष्टि और जीवन परिस्थितियाँ रेखांकित हो जाती हैं। व्यक्ति के अपनी भाषा में प्रयुक्त शब्दों के ज़रिए उसकी ज़िंदगी की परिस्थितियों की पहचान तथा सांस्कृतिक इतिहास का भी पता मिल जाएगा। इस तरह के रहस्यों की सीपी है– सचमुच प्रत्येक भाषा शब्द। आज यह विचार मज़बूत है कि परिस्थितिवाद की जीवंतता की पहचान भाषा के शब्दों से भी की जा सकती है।

भाषा के अध्ययन में भी पारिस्थितिकी का प्रवेश 1990 में हुआ। आलविन फील के अनुसार 1990 में ए. ऐ. एल. ए. सम्मेलन में मिशेल हॉलिडे द्वारा प्रस्तुत अर्थ के नए रास्ते (न्यू वेज ऑफ मीनिंग) शीर्षक प्रपत्र में सबसे पहले पर्यावरण समस्याओं को अभिव्यक्त करने में भाषा की भूमिका पर विस्तार से विचार किया गया। लेकिन 1960 में एयनर हेगन ने पर्यावरण से मिलाकर भाषा अध्ययन शुरू किया था। उनके द इकोलॉजी ऑफ लैंग्वेज शीर्षक अध्ययन में यह दृष्टि दिखाई देती है। तब भी यह मत प्रचलित था कि इसके पहले भी पर्यावरण से जुड़ा भाषाध्ययन हुआ था। लेकिन नब्बे के दशक के बाद ही यह अध्ययन स्पष्ट रूप धारण कर सामने आया था। भाषा को केवल आशय विनिमय के माध्यम तक सीमित किए बिना पर्यावरण और वैयक्तिक क्षेत्रों में भी भाषा कैसे मिलजुलकर प्रकट होती है, इसकी जाँच करने वाले भाषाविज्ञान के रूप में इको–भाषाविज्ञान सामने आता है।

एयनर हेगन के अनुसार भाषा एवं पर्यावरण के बीच के संबंध का अध्ययन है इको–भाषाविज्ञान। यहाँ पर्यावरण शब्द से भाषा संकेत को प्रयुक्त करने वाले समूह को ही सूचित किया जा रहा है। प्रयोक्ता के मन में है भाषा। वह उन्हें आपस में तथा प्रकृति के साथ मिला देती है। हेगन के अनुसार इस अध्ययन का एक हिस्सा मनोवैज्ञानिक और दूसरा समाजशास्त्रीय है। हेगन ने कहा कि भाषा को सबसे पहले पर्यावरण से वोये जलीस और नोयल डब्ल्यू बूड्स जूनियर ने मिलाया। उन दोनों के अनुसार इको–भाषाविज्ञान किसी एक भाषा का अध्ययन नहीं है, बल्कि एक विशेष प्रदेश की सभी भाषाओं पर केंद्रित है।

सरोज चौला के अनुसार भाषा के अध्ययन से उस भाषा के बोलने वालों के नज़रिए को पहचाना जा सकता है। उनके विचार में भूत–वर्तमान– भविष्य की ऋजुरेखा की काल–संकल्पना विश्वदृष्टि के जोखिम की वजह बन गई। भूतकाल बीत गया, इसलिए वह उपेक्षित है। इस काल–संकल्पना के कारण परंपरा और पारंपरिक विश्वासों को अस्वीकृत कर नए में मात्र भ्रमित होने वाली दृष्टि पर्यावरण समस्याओं में सबसे ज्यादा विचारणीय मुद्दा है। विश्वास एवं पारस्परिक संबंध आदि भूत के साथ जुड़ा हुआ है। भूतकाल को नकारने का मतलब इन मूल्यों को नकारना है। इसका तात्पर्य यह है कि भाषा के प्रयोक्ताओं की जीवन–दृष्टि भाषा के प्रयोग से पहचानी जा सकती है।

पारिस्थितिकीय अवबोध भाषा के शब्दों में रेखांकित होने के कारण प्रांतीय भाषाओं का अस्तित्व बने रहना अत्यंत ज़रूरी है। यह विचार आज बहुत प्रबल दिखाई देता है। खास प्रांतीय शब्द उस प्रदेश के विचारों, रीतिरिवाज़ों, संवेदनाओं को प्रकट करने वाली रहस्य भरी सीपियाँ हैं। टाइम इज मनी और संपत्ति के समय दस पौधे लगा लें

तो गरीबी के समय खूब खा सकते हैं– ये दो लोकोक्तियाँ एक ही आशय को प्रकट करती हैं, लेकिन दो भिन्न जीवन परिस्थितियों को भी उजागर करती हैं। दूसरी लोकोक्ति केरल की एक संस्कृति को प्रकट करती है तो पहला पाश्चात्य देश की औद्योगिक संस्कृति को। संक्षेप में प्रांतीय भाषा उस प्रदेश की संस्कृति को द्योतित करती है, इसलिए ही प्रांतीय भाषाओं के संरक्षण की बात उठती आ रही है। पीटर म्यूलहासलर ने इसीलिए कहा कि प्रांतीय एवं स्थानीय भाषाओं के नाश को रोकना चाहिए।

इको–भाषा वैज्ञानिकों का दावा है कि हर देश का पर्यावरण और संस्कार उस देश की भाषा से खोजे जा सकते हैं। बीथ सूड्स के अनुसार उद्योग के लिए प्रयुक्त भाषा में उसकी विशेषताएँ उपलब्ध हैं। कई स्वतंत्र शब्दों को खास लक्ष्य के साथ प्रयुक्त किया जाता है। 'विकास' (Development) शब्द को उदाहरण रूप में लिया जा सकता है। इसके कई अर्थों में कुछ हैं – "to bring out the capabilities or possibilities of, to build on 'land', to prepare 'Vacant land' for housing by the provision of roads, sewage आदि। ये सारे के सारे अर्थ यह लक्षित करते हैं कि पर्यावरण को हानि पहुँचाए बिना विकास करना है। लेकिन आज जो चल रहा है वह सही विकास नहीं है। इसलिए वंदना शिवा ने "Maldevelopment" शब्द का इस्तेमाल किया। सही develpoment के लिए Sustainable development कहलाने लगा है। इसका तात्पर्य यह है कि औद्योगिक रुचि के लोगों ने Development' शब्द को चुन लिया। परंपरावादी लोग इसलिए Ecologically Sustainable development का प्रयोग करने लगे। षूड्स ने कहा कि कभी भी जो Sustainable नहीं है उसके लिए इस शब्द का इस्तेमाल आज किया जा रहा है। औद्योगिक युग सोच–समझकर कुछ ऐसे पदों का

इस्तेमाल करता है जैसे "Improving on nature, value adding" आदि। अब "fully improved farms" भी हो रहा है। प्राकृतिक पौधों का नाश कर एक खास प्रकार के बीज को बढ़ाने का वातावरण पैदा करने की प्रक्रिया है यह।

संक्षेप में भाषा प्रयोग में निश्चित लक्ष्य दर्ज है। औद्योगिक युग ने पहचान लिया है कि प्रकृति के साथ रिश्ते और परिस्थिति के साथ जुड़े शब्दों के दुरुपयोग करने का कार्य सर्वत्र हो रहा है। जैसे कोई दवा, साबुन अथवा सौंदर्य प्रसाधनों के विज्ञापन में हमेशा यह शब्द प्रयुक्त किया जा रहा है कि आयुर्वेदिक जड़ी–बूटियों से निर्मित। ऐसे श्रमों के खिलाफ चुनौतीपूर्ण कोशिश इको–भाषावैज्ञानिकों के अध्ययन से संभव हो रही है। बदलती दुनिया की गतियों को सूचित करने में भाषा की जो क्षमता है वह इको–भाषावैज्ञानिक ढूँढ निकालते रहे हैं। वे सस्यूर के संरचनावाद से उत्पन्न खतरे की ओर इशारा कर रहे हैं।

गोया कि मनुष्य की वैश्विक दृष्टि में परिस्थितिवाद को मुख्य स्थान प्राप्त है। पर्यावरण से अलग मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। परिस्थितिवाद यह सिखाता है कि इस धरती के समस्त चराचरों के विकास से ही संसार का विकास संभव हो जाता है, मनुष्य मात्र से नहीं। यह विकास सबकी अवस्थिति का परिणाम है। साहित्य सांस्कृतिक अध्ययन है। साहित्य का जन्म, उसकी परिस्थितियाँ, लक्ष्य सब पारिस्थितिकी पर आधारित है। मनुष्य को केंद्र में प्रतिष्ठित करने के बदले प्रकृति के प्रत्येक स्थान को यह दर्शन व्याख्यायित करता है। भारतीय जीवन दर्शन के भौमसदाचार और साकल्यता पारिस्थितिकी का मूलमंत्र है। संसार के विकास, प्रगति और परिवर्तन का विरोध वह नहीं करता है। इतना अवश्य होना चाहिए कि सभी परिवर्तन पारिस्थितिकीय मूल्यों के अनुकूल होने चाहिए। इसके मूल्य सार्वभौमिक

एवं कालातीत हैं, इसलिए मनुष्य के सारे कर्मक्षेत्रों में पारिस्थितिक दर्शन बड़ी ठोस भूमिका निभाता आ रहा है। इस दर्शन का साहित्यिक क्षेत्र में सबसे ज्यादा बोलबाला है। इधर हिंदी साहित्य में भी इसकी लहर उठने लगी है।

सहायक ग्रंथ

1. Silent Spring - Raichel Carson
2. The Second Sex - Simon de Boeuvier
3. The Rights of Nature - Roderick Frazier Nash
4. हिंद स्वराज – महात्मा गाँधी
5. Ecology and the politics of survival - Vandana Siva
6. Dialectics of Nature - Frederic Engels
7. The Eco-Criticism Reader - Cheryll] Glotfelthy and Herold Fromm
8. The Eco-linguistic Reader - Fill, Alwin and Peter Mubihavester
9. Kathayum Paristhithiyum - G- Madhusudanan
10. Jaivamanushyan - Anand

उपलब्धियों से भरे बाघ संरक्षण के 50 वर्ष : दस्तक देतीं चुनौतियाँ

डॉ. समीर कुमार सिन्हा

वाइल्ड लाइफ ट्रस्ट ऑफ़ इंडिया

इसी वर्ष अप्रैल महीने में 'प्रोजेक्ट टाइगर' ने अपनी स्थापना के 50 वर्ष पूरे कर लिए। बाघ संरक्षण केंद्रित इस योजना को लागू करने के पीछे मुख्य कारण था बाघों के अस्तित्व को बचाना। खाल एवं अंगों के लिए अंधाधुंध शिकार ने बाघों को विलुप्ति के कगार पर ला खड़ा किया था। ब्रिटिश नागरिक एडवर्ड प्रिचार्ड जी (ई. पी. जी.) ने 20 वीं सदी की शुरुआत में भारत में 40000 बाघों के होने का अनुमान लगाया था। 1960 में ये घटकर केवल 4000 बचे। बाघ पहले अंग्रेज अफ़सरों, फ़िर स्थानीय जमींदारों और विदेशी शिकारियों के राइफल के निशाने पर थे।

बाघों की गिरती संख्या राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चिंता का कारण बनती जा रही थी। इसी कारण इंटरनेशनल यूनियन फॉर कन्जर्वेशन ऑफ़ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्सेस (आई. यू. सी. एन.) की 1969 की दिल्ली की बैठक में यह मुद्दा जोर–शोर से उछला। भारतीय वन सेवा के अधिकारी एवं बाघ विशेषज्ञ कैलाश सांखला द्वारा भारत में केवल 2500 बाघ होने की जानकारी ने अंतरराष्ट्रीय संरक्षणकर्ताओं एवं सरकार के माथे पर शिकन पैदा कर दी। इस बैठक में पारित बाघों

के शिकार पर रोक के प्रस्ताव के मद्देनजर भारतीय वन्यजीव बोर्ड ने 1970 में देश में बाघों के शिकार पर 5 साल की रोक लगाकर बाघों के संरक्षण की दिशा में पहला कदम बढ़ाया। इसके बाद 1972 में वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम की अधिसूचना ने बाघों के शिकार की पाबंदी पर मुहर लगा दी। इसके पहले 1971 में कैलास सांखला के नेतृत्व में देश में 1827 बाघ होने का आकलन किया गया। भारतीय वन्यजीव बोर्ड ने देश में बाघों को संकट से उबारने हेतु डॉ. करण सिंह की अध्यक्षता में एक टास्क फ़ोर्स का गठन किया। टास्क फ़ोर्स ने बाघों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए 6–वर्षीय 'प्रोजेक्ट टाइगर' योजना को मूर्त रूप दिया और इसकी आधिकारिक शुरुआत 1 अप्रैल 1973 को हुई।

आखिर सवाल यह उठता है कि बाघों के संरक्षण के लिए इतना बड़ा प्रयास क्यों किया गया? क्या सिर्फ बाघों की घटती संख्या को रोकने एवं संवर्धित करने के लिए? शायद नहीं! इसके पीछे एक बड़ी मंशा थी – बाघ अधिवासित क्षेत्रों में पारिस्थितिकीय संतुलन सुनिश्चित करना तथा आने वाली पीढ़ियों के लिए राष्ट्रीय धरोहर के रूप में संरक्षित रखना। बाघ संरक्षण को पर्यावरणीय संतुलन से जोड़ने की कोशिश के पीछे 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित मानवीय पर्यावरण पर वैश्विक सम्मलेन का भी प्रभाव दिखाई देता है।

प्रोजेक्ट टाइगर के अंतर्गत चुनिंदा बाघ अधिवासित वनों को टाइगर रिजर्व का दर्जा दिया जाता है। नौ टाइगर रिजर्वों से शुरू हो कर पचास सालों के इस सफ़र में 53 टाइगर रिजर्व जोड़कर इस कार्यक्रम ने राष्ट्रीय पशु–संरक्षण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। प्रथम चरण में असम के मानस, अविभाजित बिहार के पलामू, ओड़िशा के

सिमलीपाल, उत्तराखंड के कॉर्बेट, मध्य प्रदेश के कान्हा, महाराष्ट्र के मेलघाट एवं कर्नाटक के बांदीपुर को टाइगर रिजर्व बनाया गया।

शुरुआती सफलताओं के बाद प्रोजेक्ट टाइगर के रास्ते में कई बाधाएँ आईं। 1990 के दशक में कई टाइगर रिजर्व खस्ताहाल थे। जरूरत मुताबिक समय पर निधि उपलब्ध नहीं होने के कारण रिजर्वों में सुरक्षा व्यवस्था एवं अधिवास प्रबंधन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगे। टाइगर रिजर्वों के संचालन के लिए बजट का प्रावधान केंद्र और राज्य सरकारों को मिलकर करना होता है। कई बार इनकी उदासीनता का खामियाजा टाइगर रिजर्व प्रबंधन को भुगतना पड़ता है। 2001 की प्रोजेक्ट टाइगर स्टेटस रिपोर्ट में इन कमियों को रेखांकित भी किया गया। सुरक्षा में चूक के कारण बाघों एवं अन्य जीवों पर शिकारियों की टेढ़ी नजर पड़ी। यह वह समय था जब अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बाघों के खाल, हड्डियों और अंगों की अत्यधिक माँग थी जिस कारण बाघ अवैध शिकार की जद में आ रहे थे। टाइगर रिजर्व के आस–पास ग्रामीणों पर जंगल से रोजाना आवश्यकता की चीज़ों को निकालने पर प्रतिबंध के कारण रिजर्व प्रबंधन और स्थानीय लोगों के बीच रिश्तों की खटास का फ़ायदा शिकारी गिरोह उठाने लगे और बाघ उनके हत्थे चढ़ने लगे। बाघों को मवेशियों को मारने का खामियाजा गुस्साए ग्रामीणों द्वारा जहरखुरानी का शिकार बनकर भुगतना पड़ रहा था। 2005 में शिकारियों ने राजस्थान के सरिस्का टाइगर से बाघों का सफाया कर दिया। 2010 में मध्य प्रदेश के पन्ना टाइगर रिजर्व को भी बाघविहीन होना पड़ा क्योंकि इस पर भी शिकारियों की टेढ़ी नज़र लग चुकी थी।

प्रोजेक्ट टाइगर का कायाकल्प

स्थापना से लेकर 2006 तक प्रोजेक्ट टाइगर मुख्य तौर पर भारत सरकार के केंद्र प्रायोजित योजना की राशि के वितरण एवं राज्य सरकारों द्वारा उसके उपयोग पर नजर रखने के साथ–साथ टाइगर रिजर्वों में बाघों की गणना–कार्य का समन्वयन भी करता रहा। सरिस्का में बाघों की विलुप्ति ने इस कार्यक्रम की जड़ें हिला दी। तत्कालीन प्रधानमंत्री के आदेश के बाद 'सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट' की निदेशक सुनीता नारायण की अध्यक्षता में एक टास्क फ़ोर्स का गठन किया गया जिसकी अनुशंसा पर प्रोजेक्ट टाइगर को वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 के अंतर्गत वैधानिक प्राधिकार का स्वरूप देकर 'राष्ट्रीय व्याघ्र संरक्षण प्राधिकरण' बनाया गया।

इस प्राधिकरण के बनने के बाद देश में बाघ संरक्षण के प्रयासों को एक नई दिशा मिली, चाहे वह बाघों की संख्या के आकलन की विधि में बदलाव हो, बाघों के संरक्षण से जुड़े मानक संचालन प्रक्रियाओं का सूत्रण हो, टाइगर रिजर्वों के कोर–बफ़र क्षेत्रों का निर्धारण हो अथवा टाइगर कंजर्वेशन फाउंडेशन का गठन एवं टाइगर रिजर्वों के प्रबंधन योजना का मानकीकरण हो। प्राधिकरण के द्वारा सभी टाइगर रिजर्व का प्रत्येक चार साल पर प्रबंधन प्रभावशीलता मूल्यांकन कराया जाता है जिसका असर इनके प्रबंधन पर अब परिलक्षित होता है। वर्तमान में 63ः टाइगर रिजर्व का प्रबंधन 'बहुत अच्छा, और 'उत्कृष्ट' श्रेणी में है। प्राधिकरण ने टाइगर रिजर्वों में निधि की ससमय उपलब्धता एवं प्रबंधन सुनिश्चित करने के लिए भी कई प्रयास किए हैं।

केंद्र सरकार, राज्य सरकारों एवं टाइगर रिजर्व प्रबंधन के बीच त्रिपक्षीय समझौता ज्ञापन कर समन्वय को काफी हद तक बढ़ाया गया

है। यही नहीं, प्राधिकरण के प्रयासों से देश में बाघों के संरक्षण के लिए पड़ोसी देशों जैसे नेपाल, भूटान एवं बांग्लादेश के साथ समन्वय स्थापित हुआ है।

उपलब्धियों की झड़ीः

प्रोजेक्ट टाइगर ने देश में वन्यप्राणी संरक्षण का एक नमूना प्रस्तुत किया है। एक प्रजाति का संरक्षण कर उससे होने वाले पारिस्थितिकीय विकास का यह पहला अभिनव एवं सफल प्रयास साबित हुआ है। पहले यह समझने की कोशिश करते हैं कि इस योजना का बाघों के ऊपर क्या असर हुआ। देश में 1827 बाघों के साथ यह योजना शुरू हुई, 2022 में यह संख्या 3200 को पार कर चुकी है। इस प्रकार प्रोजेक्ट टाइगर की शुरुआत से अभी तक बाघों की संख्या प्रतिवर्ष के दर से बढ़ी है, लेकिन गणना की अलग–अलग विधियों के कारण शुरुआती और हालिया आंकड़ों की तुलना नहीं की जा सकती। शुरुआती दौर में बाघों के पंजों के निशानों के आधार पर इनकी संख्या निकाली जाती थी लेकिन आज स्वचालित कैमरों से लिए गए बाघों के फोटो और अधिवास संबंधी जानकारियों को आधार बनाकर इनकी संख्या का आकलन किया जाता है।

राष्ट्रीय व्याघ्र संरक्षण प्राधिकरण के अस्तित्व में आने और गणना की नई विधि अपनाने के बाद बाघों की संख्या में करीब ढाई गुना बढ़ोत्तरी हुई है। बाघों की संख्या 2006 में 1411 से बढ़कर 2022 में 3167 हो गई। यह वृद्धि उत्साहजनक है। पूरे देश में एक साथ गणना में इस्तेमाल किए गए सबसे बड़े कैमरा ट्रैप सर्वे को गिनीज बुक में भी जगह मिल चुकी है।

इन उपलब्धियों के बीच राजस्थान के सरिस्का और मध्य प्रदेश के पन्ना से बाघों की विलुप्ति बाघ संरक्षण के इतिहास में काला

अध्याय जरूर है, लेकिन इनमें बाघों की आबादी को पुनः बहाल एवं संवर्धित कर राज्यों ने अपनी खोई विश्वसनीयता हासिल कर ली है। इसमें न सिर्फ राज्य सरकारें बल्कि भारतीय वन्यजीव संस्थान एवं राष्ट्रीय व्याघ्र संरक्षण प्राधिकरण ने भी कुशल नेतृत्व एवं तकनीकी योगदान का लोहा मनवाया।

बाघ संरक्षण के लिए अधिसूचित किए गए टाइगर रिजर्वों के कारण आज देश के 18 राज्यों में करीब 76000 वर्ग कि.मी. वन क्षेत्र सुरक्षित एवं संरक्षित हैं। भारतीय वन प्रबंधन संस्थान, भोपाल के वैज्ञानिकों द्वारा देश के कुछ टाइगर रिजर्वों में किए गए शोध साबित करते हैं कि इन सुरक्षित टाइगर रिजर्वों से प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष 6000 से 18500 अमरीकी डॉलर के बराबर पारिस्थितिकीय सेवाएँ मिलती हैं। ये टाइगर रिजर्व न सिर्फ जीन पूल सुरक्षित रखते हैं बल्कि स्थानीय लोगों के लिए रोजगार के अवसर भी पैदा करते हैं। देश में टाइगर रिजर्वों से करीब 350 छोटी–बड़ी नदियाँ निकलती हैं जिनका देश के विकास में अहम् योगदान है।

नेचर इकोलॉजी एंड एवोल्यूशन जर्नल में हालिया प्रकाशित एक शोध पत्र के अनुसार टाइगर रिजर्व में अधिवास सुरक्षा पर बल दिए जाने के कारण वन क्षेत्रों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। अध्ययन किए गए रिजर्वों के करीब एक–चौथाई में वनों की कटाई की दर में कमी दर्ज की गई तथा 2007 से 2020 के बीच करीब 5800 हेक्टेयर जंगल कटने से बच गए जिससे औसतन 1.08 मीट्रिक टन कार्बन का उत्सर्जन कम करने में सहायता मिली।

टाइगर रिजर्व के कोर क्षेत्र में बसे गाँवों के स्वैच्छिक विस्थापन और पुनर्वास के लिए राष्ट्रीय व्याघ्र संरक्षण प्राधिकरण ने दिशा–निर्देश और निधि की व्यवस्था की जिसे कई राज्य सरकारों ने भी आगे

बढ़ाया। आँकड़े दर्शाते हैं कि अभी तक करीब दो सौ से अधिक गाँवों से 18500 परिवारों का स्वैच्छिक विस्थापन किया जा चुका है। इस कारण जहाँ एक ओर टाइगर रिजर्व के कोर क्षेत्र को मानवीय कोलाहल से मुक्ति मिली और बाघों के आशियाने सुरक्षित हुए, वहीं जंगल के भीतर रह रहे ग्रामीणों को भी पुनर्वासन के बाद समाज की मुख्यधारा में आने एवं उचित स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अन्य सुविधाओं का फायदा मिला।

दरवाजे पर चुनौतियाँ और रास्तेः

पिछले करीब डेढ़–दशकों में देश में बाघों की संख्या में अप्रत्याशित बढ़ोतरी दर्ज की गई है। भारत विश्व के 70 से अधिक बाघों का घर है। आँकड़े यह भी दर्शाते हैं कि भारत में एक–तिहाई बाघ टाइगर रिजर्व के बाहर रहते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है। अच्छे प्रबंधन एवं बेहतर सुरक्षा के कारण टाइगर रिजर्वों में बाघों का घनत्व बढ़ जाता है। प्रत्येक बाघ का इलाका होता है जिसमे दूसरे बाघों के लिए जगह नहीं होती। इस परिस्थिति में संख्या बढ़ने पर युवा बाघों को अपने लिए नया स्थान ढूँढना पड़ता है और वे अच्छे अधिवास को छोड़कर भोजन की उपलब्धता वाली जगहों पर चले जाते हैं। यह जरूरत उन्हें मानवीय आबादी तक भी पहुँचा देती हैं जहाँ इन्हें शिकार के लिए पालतू पशु मिल जाते हैं। पालतू पशुओं के लगातार शिकार करने से गाँवों के आसपास बाघों और मनुष्यों के बीच द्वंद्व शुरू हो जाता है और अंततः लोग प्रतिशोध की भावना से बाघों को जहर, बिजली के करंट अथवा शिकारियों की मिलीभगत से मार देते हैं। वर्तमान में बाघों के लिए यह एक बड़ी समस्या है। मानव–बाघ संघर्ष की घटनाएँ तो तक़रीबन सभी जगहों पर होती रहती हैं लेकिन महाराष्ट्र के चंद्रपुर

जिले तथा उत्तर प्रदेश के दुधवा– कतर्नियाघाट– पीलीभीत क्षेत्र में यह समस्या ज्यादा गंभीर है।

इस समस्या का दीर्घकालिक समाधान है बाघों को एक टाइगर रिजर्व से दूसरे टाइगर रिजर्व या संरक्षित क्षेत्र में आने जाने का रास्ता या कॉरिडोर बरक़रार रखना। अगर ये कॉरिडोर जिंदा रहेंगे तो बाघों का प्राकृतिक फैलाव ज्यादा बेहतर तरीके से होगा तथा मानव के साथ संघर्ष की घटनाओं में भी कमी होगी। कई कॉरिडोर सड़क, रेल, नहर, खनन आदि परियोजनाओं की बलि चढ़ते जा रहे हैं। इन परियोजनाओं से बाघों द्वारा कॉरिडोर का उपयोग कम या न के बराबर हो जाता है। कुछ ऐसे भी संरक्षित क्षेत्र एवं टाइगर रिजर्व हैं जहाँ क्षमता से कम बाघ हैं। जरूरत है ऐसे संरक्षित क्षेत्रों का समुचित प्रबंधन एवं पुनरुद्धार करने की ताकि ये बाघों की बढ़ती संख्या को स्थान दे सकें।

बाघों के संरक्षण के लिए एक अन्य बड़ी जरूरत है बाघ संरक्षण में स्थानीय लोगों को साझीदार बनाना। कई जगहों पर स्थिति चिंतनीय है। अधिकतर टाइगर रिजर्व में वन विभाग और स्थानीय लोगों के बीच टकराव होते रहते हैं। टाइगर रिजर्व से जरूरी वनोपज, जैसे लकड़ी, जलावन, औषधीय पौधे आदि के निकालने पर प्रतिबंध, चराई पर रोक आदि इसके प्रमुख कारण हैं। इन प्रतिबंधों से जूझते ग्रामीणों पर बाघ अथवा अन्य वन्यजीवों द्वारा नुकसान पहुँचाए जाने से इनकी सहन–क्षमता जवाब दे देती है और ये संरक्षित क्षेत्रों का विरोध करते हैं।

प्रोजेक्ट टाइगर के मसौदे में टाइगर रिजर्व के आस–पास के लोगों को बाघ संरक्षण के फायदे में साझेदार बनाए जाने की परिकल्पना थी। आज कई टाइगर रिजवों में इसे मूर्त रूप दिया जा रहा है लेकिन अधिकतर स्थानों में यह आधी–अधूरी ही है। इस

परिस्थिति से निपटने की बड़ी ज़िम्मेवारी राज्य सरकार के कंधों पर है। मध्य प्रदेश सरकार द्वारा मानव–वन्यजीव संघर्ष में हुए क्षति की भरपाई के लिए अनुग्रह राशि के भुगतान को लोक सेवा गारंटी अधिनियम के दायरे में रखा गया है जिससे ग्रामीणों को अविलंब सहायता मिल जाती है। साथ ही साथ टाइगर रिजर्व में पर्यटन से जो आय प्राप्त होती है, उसका एक बड़ा हिस्सा स्थानीय लोगों के विकास एवं कल्याण में लगाया जाता है जिससे लोगों को संरक्षण से होने वाली आमदनी का लाभ मिलता है। ऐसा करने से वन्यजीव प्रबंधन में ग्रामीणों का भरपूर सहयोग मिलता है। महाराष्ट्र में श्यामा प्रसाद मुखर्जी जन–वन योजना के अंतर्गत ग्रामीणों की संरक्षित क्षेत्रों पर निर्भरता कम करने एवं मानव–वन्यजीव द्वंद्व कम करने के प्रयास जारी हैं। जरूरत है अन्य राज्य सरकारों द्वारा भी ऐसी योजनाओं के क्रियान्वयन की जिससे स्थानीय लोगों को संरक्षण का लाभ और उससे होने वाले नुकसान की भरपाई हो सके। ऐसा करने से बाघ संरक्षण में एक अहम कड़ी जुड़ेगी।

एक देश जो अपनी मिट्‌टी को नष्ट कर देता है वह खुद को नष्ट कर लेता है। जंगल हमारी भूमि के फेफड़े हैं, वे हमारी हवा को शुद्ध करते हैं और लोगों को नई ताकत देते हैं।

—फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट

साहित्य और पारिस्थितिक समरसता की संकल्पना

डॉ. के. श्रीलता विष्णु

माता पृथ्वी महीयं (ऋक् 1,164,33) (अर्थात् यह महिमामण्डित पृथ्वी हमारी माता है।)

यदि ऐसे कथन भूमि के प्रति अनधिकार चेष्टा करने वालों को अपने आचरण से विरत होने के संदेश प्रदान करते हैं तो पानी को संशुद्ध रखने का आदेश नीचे के वैदिक मंत्रों से प्राप्त होता है।

आपश्च विश्वभेषजी (ऋक् 1.23.20)

जल में विश्व के लिए औषधि है।

यो वः शिवतमोरसः तस्य भाजयतेहनः

उशतीरिवमातरः (कृष्ण यजुर्वेद 4–1–5–2)

उपर्युक्त मंत्र में जगत् के जलाशयों का संबोधन करके ऋषि कवि यह कहता है– हे जलदेवताओं, तुम्हारा रस अत्यंत मंगलकारी है। माताएँ अपने स्निग्ध दूध से शिशुओं को सुरक्षित रखती हैं उसी तरह तुम लोग हमें भी उन्मेषदायक जल दे दो। ऋग्वेदीय स्वस्तिसूक्त में ऋषि की प्रार्थना है कि सभी को पवित्र जल जिसमें कोई प्रदूषण न लगा हो, उपलब्ध हो जाए।

"स्वस्तये वायुं उपप्रवामहे"

वस्तुतः परिस्थिति को संशुद्ध रखने की आवश्यकता बताने वाले वैदिक संस्कृति के वाक्य अनेक हैं। उनमें मनुष्य को पारिस्थितिक संतुलन को न बिगाड़ने का संदेश निहित है।

प्रकृति की गोद में पली भारतीय संस्कृति पर्यावरण से मिल–जुलकर गुफाओं और झोपड़ियों में रहने वाले ऋषि–मुनि, नदियों के कूल किनारों और वन–प्रदेशों में बनाए गए कुटीर वन–लतादियों और जीव–जंतुओं से मित्रवत् व्यवहार – यह प्राकृतिक सौंदर्य का अनुपम चित्र वर्तमान मानव जीवन से ओझल हो गया है। कण्वाश्रम और वाल्मीकि आश्रम के आरण्यक जीवन का सांस्कृतिक परिदृश्य कभी न लौटने वाला दृश्य बन गया है। "माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्या"–[1] यह भूमि सूक्त मानवीय मस्तिष्क से कब से चला गया है। रामायण, महाभारत जैसे पौराणिक ग्रंथों का पर्यावरण–पाठ केवल मात्र श्रोतव्य बन गया है।

प्राकृतिक शोषण आजकल मानव जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया बन गई है। प्रकृति और पर्यावरण से अनभिज्ञ रहकर प्रकृति के ऊपर अपने आधिपत्य स्थापित करने और प्राकृतिक वैभवों को लूटने में मानव के बेतहाशा भागने की प्रक्रिया ने प्रकृति के तालमेल को डाँवाडोल कर दिया है। अब मानव जीवन ऐसी सुरंग से गुजर रहा है जहाँ प्राकृतिक आपदाएँ और पारिस्थितिक चुनौतियाँ हमारे चारों ओर मंडरा रही हैं। ऐसी स्थिति में आत्मजागरूक साहित्यकार कैसे गुमसुम बैठ सकता है? निरंकुश शोषण के विरुद्ध प्रकृति को एक जैवसाकल्य रूप में देख प्रत्यानुसार जीवन बिताने का आह्वान देने वाले हरित–दर्शन या पारिस्थितिक– दर्शन आधुनिक समय की उपज है। प्रकृति का नियंता बनकर नहीं, प्रकृति का साथी बनकर, जीवनक्रम को बनाए रखने का

संदेश पारिस्थितिक दर्शन की जड़ है। यह सारी दुनिया के साहित्य एवं कला में प्रतिबिंबित होकर उनकी गति में असर डाल रहा है।

भूमि, सूर्य, तारे, चंद्रमा, प्रपंच के जैव–अजैव सभी वस्तुएँ और उनके परस्पर विरुद्ध या परस्पर संबद्ध स्वतंत्रतापूर्ण सभी कार्यक्रमों को एक साथ रखकर हम उसे प्रकृति नाम से अभिहित करते हैं।

मनुष्य भी प्रकृति की अन्य वस्तुओं की तरह एक प्राकृतिक जीव ही है। यह भी ध्यातव्य है कि जैव और अजैव सभी वस्तुओं से वह भिन्न भी है। अन्य सारे चराचर प्रकृति के नियमानुसार जीवन चला रहे हैं तो मनुष्य उनके समानांतर खुद नियम बनाकर प्रकृति को अपने वश में कर लेता है, उस पर काबू पा लेता है। ऐसे एक ही समय प्रकृति के नियंता और प्राकृतिक वस्तु बनकर शिकारी एवं शिकार दोनों का रूप स्वीकारने का वैविध्य ही आज के मनुष्य का अस्तित्वपरक और स्वत्वपरक संघर्ष है। मनुष्य की आहें समकालीन घात–प्रतिघातमय जीवन के विभिन्न कलापरक एवं सांस्कृतिक व्यवहारों को शब्दमुखरित बना रही है। प्रकृति की निर्मिति के बराबर बनाई गई अपनी निर्मिति से मनुष्य प्रकृति से दूर चला जाता है और वह प्रकृति में मानवीय व्यक्तित्व थोपना चाहता है। मनुष्य द्वारा निर्मित अट्टालिकाएँ, कारखाने आदि प्रकृति को गहरी चोट पहुँचाकर उसके जैवानुकूल गठन को तोड़कर उसे मरुस्थल बना देता हैं। मिट्टी, वन और वनस्पति, देहाती प्रदेश, ऊसर भूमि, ताल, तालाब, नदी, सागर, हवा, धातुएँ, वन्य जीव–जंतु, पालतू जानवर, पशु–पक्षी, मानव सब प्रकृति के ही अंश हैं। उनके बीच का संतुलन मानव द्वारा बिगाड़ने का चित्र पुराने समय से ही साहित्यिक कृतियों में दर्शित है। आश्रम–जीवन की व्यवस्था में नागरिकता के अधिनिवेश के कारण हुए आघात और दुःख को गहनतम

रूप में प्रस्तुत संस्कृत कृति 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' एक उत्तम पारिस्थितिक काव्य बन गई है।

प्रकृति–विभवों के अंधाधुंध उपभोग, यंत्रवत संस्कृति और आधुनिक जीवन शैली परिस्थिति–शोषण का कारण बन जाती है। भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के फलस्वरूप हो रहा पारिस्थितिक नाश पारिस्थितिक अवबोध का रास्ता खोल देता है। मनुष्य और उनके आवास केंद्र प्रकृति – दोनों के बीच का सर्गात्मक बंधन और अस्तित्वपरक अवबोध ही पारिस्थितिक बोध है। भारत के प्राचीन वैदिक मंत्रों में परिस्थिति संबंधी जाग्रत निर्देश दर्शनीय है। मनुस्मृति में यह सूचित किया गया है कि वृक्षों को काटना पाप है। यदि कोई वृक्ष काटना पड़े तो हमें ऋग्वेद मंत्र सौ बार जपना चाहिए। यह प्रकृति से क्षमा–प्रार्थना के साथ एक प्रकार का प्रायश्चित भी है।

फलदानां तु वृक्षाणांच्छेदने जप्यमृक्शतम्
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम्।[2]

प्राचीन काल में ही कविता में प्रकृति की उपस्थिति इस बात को प्रमाणित करती है कि कवि का प्रकृति से गहरा नाता रहा है। कहना न होगा कि प्रकृति का उपभोग मानव के विवेक पर निर्भर है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है – सभ्यता ने मनुष्य के लिए दोनों ही मार्ग प्रशस्त किए हैं। वह विकृति की ओर भी जा सकता है और संस्कृति की ओर भी। मनुष्येतर जीवन के लिए वह कभी विकृति है और कभी संस्कृति।[3] संसार में कोई भी कवि नहीं है जिसने प्रकृति का वर्णन न किया हो। द्विवेदी जी लिखते हैं– प्रकृति ने रूप–रस–वर्ण–गंध आदि के द्वारा आत्माभिव्यक्ति का साधन स्वयं जुटा दिया है। मौग्ध्य भाव के वर्णन के प्रसंग में कवियों ने दिल खोलकर इस अनायास लक्ष्य–संपदा का वर्णन किया है।[4]

हमारी आज की जीवन–परिस्थितियों ने समकालीन कविताओं के लिए विभिन्न रचनात्मक माहौल प्रस्तुत किया है। टेक्नॉलोजी के बढ़ते चरण, सामाजिक–राजनीतिक भ्रष्टाचार पर्यावरण प्रदूषण के कारण क्षतिग्रस्त प्रकृति – इनके बीच गुज़रता है समकालीन जीवन। इसलिए कवि को चेतावनी देनी पड़ती है। मेरे बच्चे यह भी जान लो कि प्राकृतिक संसाधन भोजन के मूल स्रोत हैं–टेक्नालॉजियाँ नही।[5]

पर्यावरण–संस्कृति से अनभिज्ञ प्रकृति को आपत्ति पहुँचाने वाली नई पीढ़ी को कवि लीलाधर जगूड़ी का आह्वान है, लेकिन यह संदेश नया नहीं कहा जा सकता। वर्तमान पर्यावरण संबंधी जागरूकता के बहुत पहले ही हिंदी के महान दूरदर्शी साहित्यकार रामचंद्र शुक्ल ने 'हृदय का मधुर भाव' शीर्षक कविता में मानव को चेतावनी दी थी।

कर से कराल निज काननों को काटकर
शैलों को सपाट कर सृष्टि को संहार ले
नाना रूप रंग धरे जीवन उमंग भरे
जीव जहाँ तक बने मारते तू मार ले
माता धरती की भरी गोद यह सूनी कर
प्रेत–सा अकेला पाँव अपने पसार ले
विश्व बीच नर के विकास हेतु नरता ही
होगी किंतु अलम् न मानव ! विचार ले।

कमलेश भट्ट कमल की पर्यावरण प्रदूषण पर लिखी कविता यमुना नदी के प्रदूषण की मार्मिक दस्तावेज़ है। उन्होंने अपनी गज़ल में यह आशंका दिखाई है कि –

हमने वर्षों विष पिला कर आजमाया है बहुत
अब हमें भी विष पिलाकर आजमाएगी नदी।[6]

बहुचर्चित कवि हिमांशु जोशी की कविताओं में मानव–नियति की विडंबनाओं के चित्रण में हिम के दंश के साथ–साथ कहीं अग्नि का दाह भी है। उनकी सूखी नदी में शीर्षक कविता देखिए–

"रक्त सना
पर–हीन पक्षी
फड़फड़ाता हुआ कुछ सोच रहा है
सूखी नदी में
तड़पती मछलियों को
नुकीली चोंच से
कोई नोच रहा है?"[7]

आम आदमी का दुःख–दर्द जोशी जी की कविता में प्रतिबिंबित है। सिर्फ समय में शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा है–

आग का दरिया
लहू का दरिया
पानी का दरिया
अब मुझे सब समान लगते हैं।
पानी के बदले रेत
रेत के बदले लहू
लहू के बदले आग।[8]

बढ़ती हुई आबादी और औद्योगिक विकास ने नाना प्रकार के प्रदूषणों को जन्म दिया है। वायु प्रदूषण के कारण वायुमंडल के ओज़ोन–परतों में छिद्र आया है और सूर्य की पराबैंगनी किरणें धरती तक पहुँच रही हैं जिन्होंने वनस्पतियों तथा जीव जंतुओं के लिए खतरे उत्पन्न किए हैं। ऐसे प्राकृतिक असंतुलन के कारण मनुष्य को प्राकृतिक प्रकोप, बाढ़, सूखा आदि का सामना करना पड़ रहा है। राजा

राम सिंह ने 'अराजकता का राज' कविता में अपना दुःख यों अंकित किया है–

अधमरा शहर है
उड़ा ले गया
सारी खुशबू कोई
अब हवा में
जहर ही जहर है।[9]

प्रकृति का ध्वंस और उसके संग आने वाले मनुष्य–ध्वंस आधुनिक पारिस्थितिक कविताओं की नींव है। वन, घर, गाँव– उसके कारण होने वाले रिश्तों को ऊष्मता की कल्पना– इन सभी की सीमा का उल्लंघन करने वाली आधुनिक मानव जीवन की ये परिस्थितियाँ कभी– कभी कवि को विदूषक का चोंगा पहना देती है। 'देवदार' कविता में बुद्धिनाथ मिश्र ने लिखा है –

नाप रहा पेड़ों को आराधर
कुर्सियाँ निकलती है इतराकर
बिकने को जाएँगी पेरिस तक
नाचेंगी विश्वसुंदरी बन कर
कौन सुने, ओसों के भार से
दबी हरी दूबों की सीत्कार![10]

हमारी उपभोक्तावादी संस्कृति जैसे वृक्ष को काठ में और काठ को फर्नीचर में बदलकर सुख भोग निर्मिति बना देती है। वैसे ही नदी का जल अब पोलीथीन पाउच में देश–विदेश की ओर निर्यात किया जाता है।

फैला है गंगा का कछार
गंगा घुस जाती है पोलीथीन पाउच में

पहुँच जाती है समुद्र पार।[11]

पर्यावरण संकट को मानवीय रिश्तों के संकट से जोड़कर देखते हैं– कवि दिवाकर वर्मा।

इंद्रधनुषी रंग बिखरे मोर पंखी वन।
कैक्टस के जंगलों में खिले हरसिंगार,
नफरतों की आँधियों में पले कोमल प्यार,
मरुस्थलों में कर रहे फेर बरसते घन।[12]

समकालीन हिंदी कविता में प्रकृति के नष्टस्वप्न के विविध रूप और दृश्य हैं। खुला दरवाजा में रामकुमार आत्रेय ने लिखा है –

पहाड़ों ने मुझे पुकारा। मैं दौड़ा चला गया
उन्हीं का सहारा ले उनकी ऊँचाई को छुआ
पर खुद ऊँचा नहीं हो पाया। अपना छोटापन कसकता रहा।
कदम–कदम पर पल–पल। गहरे माँस में धँसे काँटे की तरह।[13]

कवि सुरेश कुसूंबीवाल अपनी कविता 'चींटी' के बारे में में उत्तर–आधुनिक संस्कृति और प्रकृति के साथ पनपते नए रिश्तों को प्रतिरोधात्मक दृष्टि से देखते हैं।

उस दिन चींटी ने यह भी कहा कि
तुम मनुष्यों ने सिर्फ मसलना ही सीखा है।
बहुत मसल–कुचल चुके हो तुम
इस सुंदर पृथ्वी को
अब समय आ गया है।
तुम से सभी सूत्र हम अपने हाथ ले लें
इस ग्रह की खातिर।[14]

वर्तमान कवियों ने सरल सहज लहजे में बहुत कुछ समझाने का प्रयास किया है। मानव–नियति की विडंबनाओं को परिभाषित करती

ये कविताएँ अपने समय का श्वेतपत्र हैं। प्रकृति पर षड्यंत्र रचने वाले मानव को देखकर कवि का अंतर्मन क्षोभ करता है। बदले में प्रकृति भी मानव जीवन के विविध पक्षों में हस्तक्षेप करती है। अरुण कमल की पंक्तियों में वर्तमान का जीता–जागता रूप भी है, भविष्य की चिंता भी।

भग्न है ब्रह्मांड का ऑर्केस्ट्रा
हर दीवार में पड़ी है दरार
यह इतना पुराना पेड़ अंतिम दाँत–सा
बस लगा भर है पृथ्वी के मसूढ़े से
हिल रहा है सब कुछ हिल रहा है
जो अंतिम आधार थी धरती यह भी।[15]

नदी सुनती है, अनाज पकने का समय (नीलोत्पल) नदी और साबुन, गंगातट (ज्ञानेंद्रपति), बाबा उस देश में न ब्याहना (निर्मला पुतुल), खेती नहीं करनेवाला किसान (निलय उपाध्याय), देख चिड़िया देख (राजेश जोशी) आदि कई समकालीन कविताओं में प्रकृति पर उगते संकट के प्रति गहरी चिंता अभिव्यक्त हुई है। ये प्राकृतिक उपादान को प्रयुक्त करके प्रकृति और मनुष्य के संबंध का नया रास्ता प्रस्तुत करते हैं। मानव प्रकृति को अपने पंजे में दबोचना चाहता है। प्रकृति पर हो रहे निरंकुश शोषण के कारण उस पर गहरे दाग और खरोंचे उभर आई हैं। समकालीन कवि उजड़ रही प्राकृतिक दुनिया की सुरक्षा के प्रति अपना संघर्ष जारी रखते हैं और कभी आशावादी होकर सामने आते हैं।

बहुमंजिली बिल्डिंगों के लिए काट डाले जिन्होंने
पृथ्वी पर के बरगद
उन्होंने हमारे शीश के ऊपर छोड़ दी है सप्तर्षि की छाँह।[16]

मानव को अपनी जीवन–यात्रा में, अपने से, प्रकृति से, विज्ञान–प्रगति से, कविता से कैसा बर्ताव रखना है, इसकी अनुभवात्मक खोज ही पारिस्थितिक कविताएँ करती हैं। प्रकृति और मनुष्य परस्पर पूरक हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं। इसीलिए जो प्रकृति का है वह उसी को देना है, और जो मानव का है वह उसी को देना है। ऐसा संकल्प ही प्रकृति और मानव के विकास–चिंतन का आधार हो। मनुष्य–केंद्रित इच्छाओं की पूर्ति, प्राकृतिक संतुलन को और प्रकृति–संरक्षकीय दृष्टि को बनाए रखने वाला हो, यही परिस्थिति केंद्रित दर्शन की माँग है। वर्तमान कविता अपनी परिस्थितियों से बखूबी परिचित है। परिस्थितिक के बहुविध संकटग्रस्त स्थितियों के संकेतों से वह अपने समकालीन स्वत्व को बनाए रखती है। अंतर्दृष्टि–संपन्न वर्तमान कवि निरंतर प्राकृतिक शोषण के विरुद्ध मनुष्य को उद्‌बोधित करते आए हैं और यह गनीमत है कि नई पीढ़ी के कवियों की दृष्टि भी इस ओर लगी हुई है।

संदर्भ सूची

1. अथर्ववेद, का. 12, सू. 1, म. 12.
2. मनुस्मृति 11–142
3. सं. जयनारायण द्विवेदी एवं मुकुंद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग–7, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – पृ.80 .
4. वही – पृ.65
5. लीलाधर जगूड़ी, भय भी शक्ति देता है, पृ.120
6. कमलेश भट्‌ट कमल, शंख सीपी रेत पानी (गज़ल) पृ. 73.
7. हिमांशु जोशी, नील नदी का वृक्ष, पृ.78
8. हिमांशु जोशी, नील नदी का वृक्ष, पृ.41

9. राजा राम सिंह, उसके विरुद्ध, पृ.65
10. बुद्धिनाथ मिश्र, पांडुलिपि विमर्श, जनवरी, मार्च, 2011
11. लीलाधर जगूड़ी, अनुभव के आकाश में चाँद, पृ.48
12. मोर पंखी वन, साहित्य भारती, अप्रैल – जून 2010
13. समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च–अप्रैल–2007
14. समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च–अप्रैल–2012
15. अरुण कमल, नए श्लोक में, ऐसे में – पृ. 78
16. ज्ञानेंद्रपति, सदी के अंत में कविता

पर्यावरण सब कुछ है जो मैं नहीं हूँ।

अल्बर्ट आइंस्टाईन (महान वैज्ञानिक)

हिंदी एवं पाश्चात्य साहित्य में पर्यावरण : समस्या एवं समाधान

डॉ. प्रियंजन

पर्यावरण का इतिहास मानव सभ्यता के विकास के साथ संबंधित है। प्राचीनकाल में मानव जीवन प्रकृति के साथ गहरा संबंध रखता था और पर्यावरण के आधार पर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता था। साहित्यिक दृष्टि से पर्यावरण शब्द संस्कृत शब्द परि और आवरण से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है सभी ओर से घिरा हुआ। पर्यावरण हमारे आसपास के प्राकृतिक और मानव द्वारा निर्मित सभी तत्वों का सम्मिलित संकल्प है। इसमें वायु, जल, भूमि, पौधे, जीव–जंतु, मानव एवं वनस्पति समेत सभी जीवन रहते हैं। पर्यावरण हमारे जीवन के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे हमारे आवास, खान–पान, वायुमंडल और संसाधनों की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। पर्यावरण की महत्ता का अंदाजा हम इस बात से लगा सकते हैं कि हमारे विविध सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परंपराओं में भी पर्यावरण को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति की पूजा और आदर्शों का गहरा संबंध है। ब्रह्मांड, पहाड़, नदी, जंगल, वनस्पति, वनयात्रा, ऋतुराज आदि कई विषयों पर बहुत सारी साहित्यिक रचनाएँ उपलब्ध हैं।

हिंदी साहित्य में मानवीय संबंधों, प्राकृतिक सौंदर्य और पर्यावरणीय मुद्दों के साथ गहरा जुड़ाव रहा है तथा प्रकृति, वन, नदी, पहाड़,

पशु—पक्षी आदि प्राकृतिक तत्वों का सुंदर वर्णन किया गया है। साहित्य प्रकृति के सौंदर्य को एक विशेष रूप में मान्यता देता है और पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति जागरूकता फैलाने का काम करता है। हिंदी साहित्य में प्रस्तुत विभिन्न उपन्यास, काव्य, कहानी, नाटक और गीतों में प्राकृतिक तत्वों के सुंदर वर्णन के उदाहरण पाए जाते हैं। श्रीरामचरितमानस, रघुवंश, गीतावली, रामायण, महाभारत, प्रेमचंद की कहानियाँ, सूरदास, कबीर, रहीम, दिनकर, महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद आदि की रचनाओं में प्रकृति के साथ गहरा संबंध व्यक्त किया गया है।

हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए कई लेखक और कवि ने अपनी रचनाओं में संदेश समाहित किया है। प्रदूषण, वनसंरक्षण, जल संरक्षण, जीव—जंतुओं की सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों की महत्ता जैसे मुद्दे हिंदी साहित्य में व्यापक रूप से व्यक्त हुए हैं। हिंदी साहित्य ने पर्यावरणीय मुद्दों को उठाने के साथ—साथ प्रेरणादायक कहानियों, काव्य रचनाओं और गीतों के माध्यम से लोगों को पर्यावरण संरक्षण की ओर प्रेरित किया है। हिंदी साहित्य का यह महत्वपूर्ण क्षेत्र हमें पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति जागरूकता बढ़ाने और सुव्यवस्थित जीवन के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

साहित्य हमेशा प्राकृतिक वातावरण में गहराई से समाहित रहा है। यह मानव और प्रकृति के बीच शक्तिशाली संबंध का आह्वान करता है और यह पूरे हिंदी साहित्यिक इतिहास में एक आवर्ती विषय रहा है। रामायण और महाभारत जैसे प्राचीन भारतीय महाकाव्यों से लेकर अरुंधति रॉय की द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स जैसी समकालीन

रचनाओं तक हिंदी साहित्य ने लगातार प्रकृति को जीवन, सौंदर्य और आध्यात्मिक प्रेरणा के स्रोत के रूप में चित्रित किया है।

हिंदी साहित्य में प्रकृति का चित्रण विभिन्न धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक प्रथाओं से भी प्रभावित रहा है। उदाहरण के लिए, हिंदू पौराणिक कथाओं में प्रकृति को पवित्र, देवत्व से ओत–प्रोत और भगवान की शक्ति और सुंदरता की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है। इसी तरह जैन धर्म और बौद्ध धर्म प्रकृति के संरक्षण के महत्व और इसे नष्ट करने के परिणामों पर जोर देते हैं। कई भारतीय लेखकों ने जागरूकता बढ़ाने और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और पर्यावरणीय प्रदूषण की आलोचना करने के लिए अपने साहित्यिक मंच का उपयोग किया है। वे जलवायु परिवर्तन के खतरों से आगाह करने के लिए अपनी कहानियों का उपयोग करते हैं और प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने के लिए सामूहिक कार्रवाई का आह्वान करते हैं। हिंदी साहित्यिक परंपरा प्राकृतिक पर्यावरण से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है और इसका उपयोग मानव और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखने के महत्व को व्यक्त करने के लिए किया गया है।

हिंदी साहित्य में पर्यावरण का महत्व सोच, जीवन शैली, धार्मिकता और सामाजिक मानदंडों के साथ जुड़ा है। यह साहित्य लोगों को प्रकृति के महत्व को समझने, संप्रेषण करने और संरक्षण के लिए प्रेरित करने में मदद करता है। साहित्य हमें प्रकृति के साथ संगत और स्वस्थ रहने की आवश्यकता को समझाता है, हमें पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी समझाता है और एक समावेशी समाज की ओर प्रेरित करता है जहाँ प्रकृति और मानव संबंध सुरक्षित हो सकते हैं। हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रकृति को हमेशा विशिष्ट स्थान मिला है। पर्यावरण–चेतना की समृद्ध परंपरा हमारे साहित्य में

रही है, वह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। आदिकालीन कवि विद्यापति रचित पदावली प्रकृति वर्णन कुछ इस प्रकार से करती हैं –

मौली रसाल मुकुल भेल ताब
समुखहिं कोकिल पंचम गाय।

भक्तिकालीन कवियों में कबीर, सूर, तुलसी, जायसी की रचनाओं में प्रकृति का कई स्थलों पर रहस्यात्मक वर्णन हुआ है। तुलसी ने 'रामचरितमानस' में सीता और लक्ष्मण को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है –

तुलसी तरुवर विविध सुहाए।
कहुँ कहुँ सिया कहुँ लखन लगाए।।

तुलसीदास ने वनों की सुंदरता व उपयोगिता के साथ–साथ वन्य जीवों के परस्पर संबंध का वर्णन इस प्रकार किया है.

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन, रहहिं एक संग गज पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई, सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

पर्यावरण संरक्षण को महत्व देते हुए तुलसीदास लिखते हैं, .

रीझि–खीझि गुरुदेव सिष सखा सुविहित साधू।
तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू।।

अर्थात् तुलसीदास ने वृक्ष से फल खाना तो उचित माना, लेकिन वृक्ष को काटना अपराध माना है। वृक्षारोपण की परंपरा भी स्वाभाविक है जो प्राचीन काल से चली आ रही है। भगवान रामचंद्र जी के विवाह पश्चात् राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर गुरु वशिष्ठ ने आदेश दिया–

"सफल रसाल पूगफल केरा, रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।"

अयोध्या नगरी में सभी ने सुमन वाटिकाएँ, लताएँ आदि लगाई हैं। नीचे के उदाहरण में सबहिं शब्द विशेष महत्त्व का है अर्थात् रोपण सभी को करना है उसका आकार, प्रकार जैसा भी हो।

सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। विविध भाँति करि जतन बनाई।।

लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत की नाईं।।

रामचरित मानस के सुंदरकांड में लंका के प्राकृतिक सौंदर्य एवं पर्यावरण के सुव्यवस्थित स्वरूप का चित्रण इस प्रकार है–

"बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहिं"।

रामचरित मानस में पर्यावरण के महत्व व संरक्षण के साथ मानव के अटूट संबंध को दर्शाया गया है। रीतिकालीन कवियों में बिहारी, पद्माकर, देव, सेनापति ने प्रकृति में सौंदर्य को देखा–परखा है। बिहारी का एक दोहा देखने योग्य है–

चुवत स्वेद मकरंद कन
तरु तरु तरु विरमाय
आवत दक्षिण देश ते
थक्यों बटोही बाय।

हिंदी साहित्य और दर्शन संपूर्ण रूप से पर्यावरण पर केंद्रित रहा है। मानव का प्रथम कर्तव्य होता है कि वह प्रकृति की रक्षा करे। प्रत्येक युग में साहित्यकारों ने अपने साहित्य में प्रकृति की स्तुति की है। मानव जीवन का आधार कहे जाने वाले पाँच महाभूतों का गुणगान हमेशा से होता आया है। कविवर रहीम ने भी पानी के माध्यम से जीवन के तत्व का ज्ञान कराया है–

"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून!
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस चून!!"

आधुनिक काल में प्रकृति के सौंदर्य का उपादान क्रूर दृष्टि का शिकार होना प्रारंभ हो जाता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में चंद्र ज्योत्स्ना में रात्रिकालीन बेला की प्राकृतिक छटा का वर्णन है–

चारु चंद्र की चंचल किरणें,
खेल रही है जल थल में।
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है,
अवनि और अंबर तल में।

छायावादी काव्य में प्रकृति का सूक्ष्म और उत्कट रूप दिखाई देता है। प्रसाद, पंत, निराला और, महादेवी वर्मा में पर्यावरण चेतना यत्र–तत्र पाई जाती है। पंत को तो प्रकृति का सुकुमार कवि भी कहा गया है। पंत की यह पंक्तियाँ हैं–

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन

प्रसाद की कामायनी का पहला ही पद पर्यावरण का उत्कृष्ट उदाहरण है–

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छांह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह!

प्रसाद ने प्रकृति को ही सौंदर्य और सौंदर्य को ही प्रकृति माना है।

रहीम कहते हैं–

'रहिमन वे अब बिरछ कहँ, जिन की छाँह गंभीर।

बागन बिच–बिच देखियत सेहुड़–कुंज–करीर।

हिंदी साहित्य में 'छायावाद' को तो प्रकृति का उद्यान ही माना जाता है जहाँ मनोभावों का प्रकृति से सहज ही सामंजस्य हो जाता है। हिंदी के महान सर्जक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने कई ललित निबंधों का विषय वनस्पति को बनाकर उससे अभूतपूर्व मानवतावादी निष्कर्ष निकाले हैं। उदाहरणतः 'अशोक के फूल' 'शिरीष के फूल' आदि।

पर्यावरण हिंदी साहित्य में एक बहुआयामी भूमिका निभाता है। यह प्रेरणा के स्रोत, मानवीय भावनाओं के प्रतिबिंब, पारिस्थितिक चिंताओं को दूर करने के लिए एक मंच और गहरी दार्शनिक अवधारणाओं के प्रतीक के रूप में कार्य करता है। भारतीय लेखकों ने पर्यावरण की सुंदरता, महत्व और मानव अस्तित्व के साथ इसके अविभाज्य संबंध को उजागर करते हुए पर्यावरण को खूबसूरती से चित्रित किया है। अपने साहित्यिक कार्यों के माध्यम से उन्होंने मनुष्य और प्राकृतिक दुनिया के बीच सम्मान, पारिस्थितिक चेतना और एक सामंजस्यपूर्ण संबंध की आवश्यकता की भावना पैदा की है।

पाश्चात्य साहित्य में पर्यावरण की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ भी मानवीय संबंधों, मानवीय स्वार्थ, विज्ञान, तकनीक और प्रकृति के मध्य संतुलन को समझने और समस्याओं के समाधान की ओर ध्यान केंद्रित किया गया है। यह साहित्य लोगों को प्रकृति के महत्व को समझने, पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी समझने और संबंधित मुद्दों के साथ जीवन की एक समावेशी और सतत् भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करता है।

कई लेखकों ने प्रकृति की सुंदरता और भव्यता से प्रेरणा ली है। उन्होंने इसकी कल्पना का उपयोग आश्चर्य और विस्मय की भावना

जगाने के साथ–साथ प्राकृतिक दुनिया के पुनर्योजी और नवीकरणीय गुणों को प्रदर्शित करने के लिए किया है। हालांकि पर्यावरण के सभी साहित्यिक चित्रण इतने आशावादी नहीं हैं। कई लेखकों ने पर्यावरण को अपने समय के सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों के रूपक के रूप में नियोजित किया है। उदाहरण के लिए, चार्ल्स डिकेंस का हार्ड टाइम्स औद्योगिकीकरण के अमानवीय प्रभावों की आलोचना करता है जिसका पर्यावरण और उस पर निर्भर श्रमिक वर्ग के लोगों पर हानिकारक प्रभाव पड़ा। इसके अलावा पर्यावरण की समस्याओं के बारे में जागरूकता बढ़ाने और पर्यावरण संरक्षण की वकालत करने में भी साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1962 में प्रकाशित राहेल कार्सन की पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' पर्यावरणीय सक्रियता का एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसने कीटनाशकों के व्यापक उपयोग के खतरों को उजागर किया। इसी तरह मार्गरेट एटवुड का डायस्टोपियन उपन्यास ओरिक्स एंड क्रेक अनियंत्रित तकनीकी प्रगति के कारण होने वाली पर्यावरणीय तबाही से तबाह भविष्य की दुनिया को चित्रित करता है। विश्वयुद्ध, प्राकृतिक आपदाओं, और पर्यावरणीय संकटों के चलते पाश्चात्य साहित्य ने पर्यावरण से जुड़ी चुनौतियों को उजागर किया है। इसमें जलवायु परिवर्तन और वातावरणीय संकट के प्रभाव पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। पाश्चात्य साहित्य में विभिन्न रूपों में उपन्यास, कविता, कहानी, नाटक, और गद्य के माध्यम से पर्यावरणीय मुद्दों को उजागर किया जाता रहा है।

प्रकृति ने अमेरिकी साहित्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जो कई लेखकों के लिए एक प्रमुख विषय और प्रेरणा स्रोत के रूप में काम कर रही है। 19वीं सदी के पारलौकिक आंदोलन से लेकर

समकालीन प्रकृति लेखकों तक अमेरिकी साहित्य ने मानव और प्राकृतिक दुनिया के बीच संबंधों और व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभवों पर प्रकृति के गहरे प्रभाव का पता लगाया है। यहाँ अमेरिकी साहित्य में प्रकृति के कुछ उल्लेखनीय उदाहरण हैं–

हेनरी डेविड थोरो : थोरो की पुस्तक 'वाल्डेन' प्रकृति के साथ उनके गहरे संबंध को दर्शाती है। वे दो साल तक वाल्डेन पॉन्ड के पास एक छोटे से केबिन में रहे और प्रकृति के साथ तालमेल बिठाते हुए जीवन की सादगी और सुंदरता पर विचार करते रहे।

राल्फ वाल्डो एमर्सन : ट्रान्सेंडैंटलिस्ट आंदोलन में एक मुख्य व्यक्ति इमर्सन ने अपने निबंधों में विशेष रूप से अपने प्रसिद्ध निबंध 'Nature' में प्रकृति की आध्यात्मिक और परिवर्तनकारी शक्ति का जश्न मनाया। उनका मानना था कि प्रकृति परमात्मा की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति थी और उन्होंने लोगों को प्राकृतिक दुनिया के साथ संवाद के माध्यम से आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और संबंध बनाने के लिए प्रोत्साहित किया।

वॉल्ट व्हिटमैन : अपने कविता संग्रह 'लीव्स ऑफ ग्रास' में व्हिटमैन ने सभी जीवित प्राणियों की परस्पर संबद्धता और अमेरिकी परिदृश्य की भव्यता का जश्न मनाया। उनकी कविताएँ अक्सर प्रकृति के साथ एकता की भावना जगाती हैं और प्राकृतिक दुनिया की सुंदरता और जीवन शक्ति पर ज़ोर देती हैं।

जॉन मुइर : प्रकृतिवादी और संरक्षणवादी मुइर अमेरिकी पश्चिम के जंगल पर अपने लेखन के लिए जाने जाते हैं। उनकी पुस्तकें जैसे 'My First Summer in the Sierra' and 'The Yosemite' प्राकृतिक परिदृश्यों के संरक्षण की वकालत करती हैं और प्राकृतिक दुनिया की सुंदरता और महिमा के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा व्यक्त करती है।

एनी डिलार्डः डिलार्ड की पुस्तक "Pilgrim at Tinker Creek" प्रकृति पर उनकी टिप्पणियों और प्रतिबिंबों की पड़ताल करती है, विशेष रूप से वर्जीनिया में एक क्रीक के पास रहने वाले उनके अनुभवों का वर्णन करती है।

मानव और प्राकृतिक दुनिया के बीच संबंधों की खोज करने वाले कई कार्यों के साथ प्रकृति ने ब्रिटिश साहित्य में भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखा है। ब्रिटिश लेखकों ने अक्सर प्रकृति को प्रेरणा, सांत्वना और मानव स्थिति पर प्रतिबिंब के स्रोत के रूप में चित्रित किया है। यहाँ ब्रिटिश साहित्य में प्रकृति के कुछ उल्लेखनीय उदाहरण दिए गए हैं :

वड्र्सवर्थ के प्रसिद्ध संग्रह 'लिरिकल बैलाड्स' (Lyrical Ballads) में सैमुअल टेलर कोलरिज (Samuel Taylor Coleridge) के साथ सह–लेखकी की गई थी। इस संग्रह में वड्र्सवर्थ ने प्रकृति की शक्ति पर बल दिया और उन्होंने प्राकृतिक तत्वों के साथ अपने गहरे जुड़ाव को व्यक्त किया। वे उदात्तता, विस्मय और संबंध की भावना को प्रेरित करने के लिए प्रकृति को एक महत्वपूर्ण स्रोत मानते थे। वड्र्सवर्थ की कविताओं में प्रकृति के सुंदर वर्णन, वन, पहाड़, झील, नदी और मौसम की छटा आपको मिलेगी। उन्होंने मनुष्य की आंतरिक भावनाओं और प्रकृति के मध्य संघर्ष को दर्शाने के लिए प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग किया। वड्र्सवर्थ की कविता 'धारा' (The Daffodils) एक उत्कृष्ट उदाहरण है जहाँ उन्होंने एक फूलों की सैर का वर्णन किया और उनकी सुंदरता और प्रकृति के साथ उत्पन्न किए गए भावों को व्यक्त किया। इस कविता में उन्होंने विशेष रूप से प्रकृति के साथ अपना व्यक्तिगत जुड़ाव दिखाया है और इसे उनके प्रमुख काव्यात्मक संदर्भों में माना जाता है।

थॉमस हार्डी : हार्डी के उपन्यास और कविता अक्सर प्रकृति को मानवीय अनुभवों की पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित करते हैं, भाग्य, हानि और जीवन चक्र के विषयों को दर्शाते हैं। उनका काम जैसे "टेस ऑफ द डीउर्बर्विल्स" और "फार फ्रॉम द मैडिंग क्राउड" इंग्लैंड के ग्रामीण परिदृश्य और पात्रों के जीवन पर उनके प्रभाव को दर्शाता है।

एमिली ब्रोंटे : अपने उपन्यास "वुथरिंग हाइट्स" में ब्रोंटे निर्जन यॉर्कशायर मूर्स का उपयोग एक शक्तिशाली सेटिंग के रूप में करती है जो पात्रों की अशांत भावनाओं और संघर्षों को प्रतिबिंबित करती है। मूरों की कच्ची और अदम्य प्रकृति कहानी के जंगली जुनून और अंधेरे जटिलताओं को दर्शाती है।

जॉन कीट्स : रोमांटिक कवि कीट्स प्रकृति की सुंदरता और क्षणभंगुरता से गहराई से जुड़े थे। उनकी कविताएँ "ओड टू ए नाइटिंगेल" और "टू ऑटम" प्राकृतिक दुनिया के संवेदी अनुभवों को स्पष्ट रूप से पकड़ती हैं और मृत्यु दर, सौंदर्य और अस्तित्व की क्षणभंगुर प्रकृति के विषयों का पता लगाती हैं।

डी.एच. लॉरेंस : लॉरेंस के उपन्यास अक्सर मनुष्यों और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच संबंधों को चित्रित करते हैं, विशेष रूप से अंग्रेजी ग्रामीण इलाकों में सेट किए गए उनके कार्यों में। "वीमेन इन लव" और "द रेनबो" उपन्यासों में प्रकृति को एक ऐसी शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जो पात्रों को जोड़ती और चुनौती देती है, उनके भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक संघर्षों को दर्शाती है।

रॉबर्ट मैकफर्लेन : मैकफर्लेन एक समकालीन ब्रिटिश प्रकृति लेखक हैं जिनकी कृतियाँ "द वाइल्ड प्लेसेस" और "लैंडमार्क्स" ब्रिटिश द्वीपों के परिदृश्य का पता लगाती हैं और भाषा, प्रकृति और मानव

अनुभव के बीच संबंधों में तल्लीन रहती हैं। उनका लेखन प्राकृतिक दुनिया के संरक्षण और सराहना के महत्व पर जोर देता है।

ये उदाहरण बताते हैं कि कैसे प्रकृति ब्रिटिश साहित्य में एक मुख्य विषय रही है जो इसकी सुंदरता, शक्ति और मानव जीवन पर प्रभाव को दर्शाती है। ब्रिटिश लेखकों ने अक्सर गहरे दार्शनिक, भावनात्मक और अस्तित्व संबंधी प्रश्नों की खोज के लिए प्राकृतिक दुनिया को एक पृष्ठभूमि के रूप में इस्तेमाल किया है जिससे प्रकृति ब्रिटेन में साहित्यिक परंपरा का एक अभिन्न अंग बन गई है।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति की पूजा और पर्यावरण संरक्षण का महत्व शामिल है। यहाँ कई प्राचीन और स्थानीय परंपराओं में पर्यावरण संरक्षण को जोड़ा जाता है और इसे धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी देखा जाता है। भारत में कई ऐसी धारणाएँ और कार्यक्रम हैं जो पर्यावरण संरक्षण को प्रमुखता देते हैं। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण पहलू हैं जो भारत में पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देते हैं।

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन (Ministry of Environment and Forests and Climate Change) : मंत्रालय भारत सरकार द्वारा स्थापित इस मंत्रालय का मुख्य कार्य पर्यावरण संरक्षण, वन संरक्षण, जल संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन और पर्यावरण संबंधी कानूनों के निर्माण और प्रवर्तन में सहायता करना है। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 में पारित किया गया था जो पर्यावरण संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, जीव–जंतु संरक्षण और पर्यावरणीय प्रदूषण के खिलाफ कानूनी कार्रवाई संबंधित मुद्दों पर कार्य करता है। भारत में वन संरक्षण महत्वपूर्ण है और इसे राष्ट्रीय वन नीति और वन अधिनियम के माध्यम से प्रोत्साहित किया जाता है। वनों को रखरखाव, पुनर्गठन और संवर्धन के लिए वन संरक्षकों और स्थानीय जनसंघों को समर्थन प्रदान

किया जाता है। पर्यावरण संरक्षण में सफलता के लिए जनसाधारण की जागरूकता बहुत महत्वपूर्ण है। भारत में अनेक संगठन, मीडिया और सामाजिक समूह इसे प्रोत्साहित करने के लिए प्रयास कर रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण, जल संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण के मुद्दों पर जनसाधारण को शिक्षा और प्रेरणा देने के लिए अभियान और कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। भारत में पर्यावरण संरक्षण को लेकर अभियान और पहल तेजी से बढ़ रहे हैं। हालांकि, अभी भी कई चुनौतियाँ हैं जैसे प्रदूषण, जल संकट, वनों की कटाई, औद्योगिकीकरण के प्रभाव आदि। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए सरकार, सामुदायिक संगठन, नागरिक समूह और व्यक्तिगत स्तर पर सहयोग करके पर्यावरण संरक्षण को मजबूत करने की आवश्यकता है। साथ ही, सभी व्यक्तियों को अपने दैनिक जीवन में सतत् प्रयास करना चाहिए ताकि हम स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण का हिस्सा बन सकें। पर्यावरण का संरक्षण केवल एक विकल्प नहीं बल्कि सभी जीवित प्राणियों के अस्तित्व और कल्याण के लिए एक आवश्यकता है। स्थायी प्रथाओं को अपनाकर, संसाधनों के संरक्षण, जैव विविधता के संरक्षण और प्रदूषण को नियंत्रित करके हम अपने पर्यावरण पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देने से हमारे ग्रह की रक्षा के लिए एक सामूहिक जिम्मेदारी को बढ़ावा मिल सकता है। पर्यावरण हमारी साझा जिम्मेदारी है और यह हमारा कर्तव्य है कि बेहतर और हरित भविष्य के लिए इसकी स्थिरता सुनिश्चित करें।

साहित्य का पर्यावरण संरक्षण में एक महत्वपूर्ण योगदान होता है जो हमें प्रकृति के महत्व को समझने, सुंदरता का आनंद लेने और पर्यावरणीय मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है। साहित्य पर्यावरण संरक्षण के महत्वपूर्ण संदेशों को साझा करता है। कहानियों,

कविताओं और उपन्यासों के माध्यम से साहित्यकार लोगों को प्रकृति के महत्व, प्राकृतिक संसाधनों की संरक्षा, प्रदूषण नियंत्रण, जल संरक्षण, वन संरक्षण, और जीव–जंतुओं की सुरक्षा जैसे मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसके माध्यम से उन्हें लोगों को पर्यावरणीय जीवन शैली और सतत् पर्यावरणीय संवेदनशीलता की आवश्यकता के बारे में जागरूक करने का भी मौका मिलता है। साहित्य प्रेरणादायक होता है और लोगों को पर्यावरण संरक्षण की ओर प्रेरित करता है। उत्कृष्ट साहित्यकारों की कविताएँ, कहानियाँ और निबंध पर्यावरण संरक्षण के लिए सामर्थ्यवान प्रेरणा स्रोत होते हैं। इनके माध्यम से साहित्य हमें उठाने की शक्ति प्रदान करता है और हमें पर्यावरण संरक्षण के लिए सक्रिय भूमिका निभाने की प्रेरणा देता है। साहित्य प्रकृति के साथ हमारे संबंध को मजबूत करता है और हमें प्रकृति की सुंदरता का आनंद लेने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार साहित्य पर्यावरण संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान करता है क्योंकि यह हमें पर्यावरणीय मुद्दों की जागरूकता प्रदान करता है, हमें प्रेरित करता है, और हमारे प्रकृति संबंधी भाव और संवेदनशीलता को मजबूत करता है। हमें अपने पर्यावरण के संरक्षण हेतु कार्य करना चाहिए क्योंकि इससे हमारे और आगामी पीढ़ियों के लिए स्वस्थ, सुरक्षित और समृद्ध वातावरण का निर्माण होगा।

संदर्भ–

1. पर्यावरण विज्ञानः– डॉ. विजय कुमार त्रिपाठी, एस. चन्द एंड कंपनी, नई दिल्ली
2. पर्यावरण और हमः– डॉ. डी. के. ठाकुर, पुस्तक संचय, जयपुर
3. पर्यावरण प्रबंधनः–प्रो. एच. पी. बेहरा, हिमालया पब्लिशिंग हाउस

4. रामचरितमानस, किष्किंधा कांड श्लोक 11 चौपाई 2, गीता प्रेस गोरखपुर
5. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, जयशंकर प्रसाद, प्रथम संस्करण 1995
6. डॉ. रामनाथ शर्मा एवं राजेंद्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज, संस्थाएँ और संस्कृति, एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
7. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1974
8. किरण कुमारी गुप्त, हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रकाशन, प्रयाग, 1959
9. विद्यानिवास मिश्र, रामायण का काव्यमर्म, प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001
10. नरेश अग्रवाल, माध्यम सहस्राब्दि अंक–9, जनवरी–मार्च 2003, संपादक – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्रा, पृष्ठ 80
11. अंजलि श्रीवास्तव, पर्यावरण संरक्षण, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
12. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कुटज, राजकमल प्रकाशन, अंक–9
13. शर्मा, मुरारी, 'प्रेतछाया', पहाड़ पर धूप, अंतिका प्रकाशन, 2015
14. हारनोट, एस. आर. 'भागादेवी का चाय घर', किलें, वाणी प्रकाशन, 2019
15. मीणा, हरिराम, 'जंगल में आतंक', माँदर पर थाप, सं. अजय मेहताब, अनुज्ञा, 2019
16. एंजेल्स, फ्रेडरिक, 'डायलेक्टिक्स ऑफ नेचर', समयांतर, फरवरी, 2012

17. अग्रवाल, हरिश, 'ओजोन हॉल की हकीकत', जनसत्ता, 26 अगस्त, 2007
18. भार्गव, डॉ. रश्मि, 'कजरी और एक जंगल', मधुमती, मार्च–अप्रैल –2012

हमारे पास एक समाज नहीं होगा अगर हम पर्यावरण का नाश करेंगे।

–मार्गरेट मीड (लेखक एवं वक्ता)

कागा उड़ा आकाश में

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल

विकास के नाम पर मनुष्य ने प्रकृति के साथ जितना क्रूर व्यवहार किया है, उसका परिणाम आज स्वयं मनुष्य–जाति को ही भुगतने के लिए विवश होना पड़ रहा है। गिद्धों, कौओं और चीलों–जैसे पक्षियों का तो हमने मात्र प्रतीकों के रूप में वर्णन किया है। धरती से आकाश तक कोई भी स्थान आज ऐसा नहीं है जो मनुष्यों द्वारा फैलाए गए प्रदूषण से मुक्त हो। बढ़ते हुए इसी प्रदूषण के कारण पशु–पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ जो धरती पर मानव–जीवन के लिए अत्यधिक उपयोगी थीं, लुप्त होती जा रही हैं। गिद्ध और चीलें जो प्रकृति की ओर से मानव–जाति के लिए नियुक्त किए गए स्वच्छकार थे, अब कभी–कभी ही दिखाई देते हैं। कौए जो भोर होते ही प्रत्येक घर की मुँडेर पर अपनी कर्कश आवाज़ से सोते हुए प्राणियों को जगाया करते थे, निरंतर कम होते जा रहे हैं। पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने वाले ये पक्षी अब आकाश में भी कभी–कभी तैरते दिखाई देते हैं। अब आकाश भी उनके लिए अनुकूल नहीं रहा है।

कुछ समय पूर्व मध्य प्रदेश के भोपाल तथा आस–पास के कई दूसरे नगरों और बस्तियों में आकाश से कुछ ऐसे पिंड गिरते देखे गए थे जिनके बारे में वैज्ञानिकों का कहना था कि ये अंतरिक्ष में जमा हो

रहे कचरे के अंश हैं जो इंसानों द्वारा छोड़े गए उपग्रहों से टूटकर अलग हो गए हैं। इन पिंडों के संबंध में लगभग सभी राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्रों में विस्तृत समाचार प्रकाशित हुए थे। इन सभी समाचारों में यह आशंका व्यक्त की गई कि पिंड अंतरिक्ष में बेकार हो गए उपग्रहों के मलबे हैं। आकाश से गिरे हुए पिंडों को देखकर विशेषज्ञों ने यह भी संभावना व्यक्त की थी कि ये नाभिकीय ऊर्जा से संचालित जासूसी उपग्रह रहे होंगे क्योंकि ये पिंड कुछ ऐसे आकार के थे जो गिरने पर धरती तक पहुँच सकते हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि इस समय पृथ्वी की कक्षा में लगभग ढाई हज़ार ऐसे उपग्रह मौजूद हैं जो मृत या विकृत हो चुके हैं अथवा कार्य करने के योग्य नहीं रहे हैं। ये सारे उपग्रह जासूसी के उद्देश्य से अंतरिक्ष में छोड़े गए थे और ये सभी नाभिकीय ईंधन से संचालित थे। सोचिए कि एक या कुछ विकसित देशों ने केवल दूसरे देशों की जासूसी करने के लिए हज़ारों की संख्या में रक्षा–संबंधी जानकारियाँ प्राप्त करने वाले ये उपग्रह ज़मीन से आकाश में छोड़े जिनमें से लगभग ढाई हज़ार उपग्रह अब मात्र मलबे में परिवर्तित हो चुके हैं। वैज्ञानिकों ने उस समय यह भी बताया था कि खंडित हो गए उपग्रहों का मलबा अंतरिक्ष में एकत्र होता जा रहा है। जितने उपग्रह खंडित हुए हैं, उनमें से 80 प्रतिशत नाभिकीय ऊर्जा से संचालित होते थे।

वैज्ञानिकों का अनुमान यह भी है कि इस समय राकेटों तथा उपग्रहों के छोटे–बड़े करीब बीस हज़ार टुकड़े मलबे के रूप में अंतरिक्ष में भटक रहे हैं। इनके उन उपग्रहों एवं राकेटों से टकरा जाने की भी आशंका है जो फिलहाल अपने उद्देश्य के लिए कार्यरत हैं।

अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत विशेषज्ञों ने हाल ही में अपनी रिपोर्ट देते हुए बताया था कि पिछले चालीस वर्षों के दौरान अंतरिक्ष

में भेजे गए 3500 से भी अधिक राकेटों एवं उपग्रहों के अब तक 22 हज़ार से ज़्यादा टुकड़े हो चुके हैं। इस समय (यानी बीसवीं शताब्दी की इस अंतिम दहाई में) केवल 350 उपग्रह ऐसे हैं जो कार्यरत हैं। हज़ारों टुकड़ों में विखंडित हो गए उपग्रहों में लगभग 15 हज़ार टुकड़े ऐसे हैं जो स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार इन राकेटों अथवा अंतरिक्ष यानों के सात हज़ार से 8 हज़ार तक जो टुकड़े शेष रह गए हैं, वे अब भी आकाश में चक्कर लगा रहे हैं। राकेटों और उपग्रहों के इन विखंडित टुकड़ों को हम आकाश का ऐसा 'कचरा' कह सकते हैं जो मनुष्य ने फैलाया है और जो अब अंतरिक्ष के वातावरण को भी प्रदूषित कर रहा है।

वैज्ञानिकों द्वारा अनुमान लगाया गया है कि अंतरिक्ष के इस मलबे का भार इस समय 20 लाख किलोग्राम की सीमा को भी पार कर गया है। वैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि अंतरिक्ष में मलबे का रूप लेने वाले इन टुकड़ों की संख्या प्रति वर्ष करीब दो सौ की संख्या में बढ़ रही है।

याद कीजिए कि अंतरिक्ष की कक्षा में प्रवेश करने वाला मानव–द्वारा निर्मित यान सबसे पहले 1957 में रूस द्वारा छोड़ा गया था, जिसको रूसी वैज्ञानिकों ने 'स्पुतनिक' नाम दिया था। बाद में अमेरिका ने भी इस मैदान में अपने क़दम आगे बढ़ाए। उसने 'एक्सप्लोरर' नाम का एक अंतरिक्ष यान आकाश में छोड़ा। यह रूस और अमेरिका की ओर से अंतरिक्ष पर विजय पाने या उसका अनुसंधान करके महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त करने के लक्ष्य की ओर पहला क़दम था। इस अभियान का उद्देश्य उन रहस्यों का पता लगाना था जो ब्रह्मांड में मौजूद तो हैं किंतु जिन तक अभी आदमी की पहुँच नहीं हो पाई है। अमेरिका द्वारा छोड़े गए अंतरिक्ष–यान 'एक्सप्लोरर' के उपरांत तो

दुनिया के विकसित देशों में ऐसे यानों का ताँता—सा लग गया। कई विकासशील देश भी विज्ञान की इस छलांग का साथ देने के लिए कमर कसते दिखाई दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि पिछले पचास वर्षों के दौरान 3500 हज़ार से भी ज़्यादा अंतरिक्ष यान आकाश में छोड़े जा चुके हैं। ये सभी अंतरिक्ष—यान पृथ्वी की निरंतर परिक्रमा करते रहे और इनमें से बहुत कम यान ऐसे हैं जो अब तक क्रियाशील हैं। उपग्रहों में से अधिकांश ऐसे हैं जो अब बेकार होकर कचरे का रूप धारण कर चुके हैं। यह विषैला कचरा अंतरिक्ष में निरंतर जमा होता जा रहा है। वैज्ञानिक मानते हैं कि अंतरिक्ष में निरंतर जमा होते जा रहे इस विषैले कचरे से धरती पर मौजूद जीवन के लिए भी ख़तरा उत्पन्न हो रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार अंतरिक्ष में जमा हो रहे इस कचरे से आकाशीय प्रदूषण व्याप्त हो जाने की आशंका तो प्रबल है ही, साथ ही कचरे के इस ढेर से ख़तरा यह भी है कि अंतरिक्ष से यह स्वयं ही धीरे—धीरे नीचे उतरता जा रहा है। एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि यह मलबा अंतरिक्ष से गिरकर पृथ्वी से टकरा जाए और भारी विनाश का कारण बने।

आपको याद होगा कि जुलाई 1979 में अमेरिका द्वारा निर्मित अंतरिक्ष स्टेशन, जिसे अमरीकी वैज्ञानिकों ने 'स्काई लैब' का नाम दिया था, अंतरिक्ष में स्थापित किया गया था। इसके उपरांत 1991 में रूस ने भी एक अंतरिक्ष स्टेशन का निर्माण किया जिसे वहाँ के वैज्ञानिकों ने 'सोपोज—7' का नाम दिया था। बाद में ये दोनों अंतरिक्ष स्टेशन समुद्र में गिरकर नष्ट हो गए थे। प्रश्न इनके स्थापित रहने या नष्ट हो जाने का नहीं है, बल्कि यह है कि ये अंतरिक्ष से धरती तक जिस प्रदूषण का कारण बने, उसने पूरे वातावरण को किस सीमा तक

प्रभावित किया होगा? क्या समुद्री जल के प्रदूषण से मात्र मछलियाँ और अन्य जलजंतु ही प्रभावित हुए होंगे, आदमी नहीं?

अमेरिका का 'स्काई लैब' जब विकृत होकर धरती पर गिर रहा था, तब अमरीकी वैज्ञानिकों ने उसकी दिशा बदलते हुए यह प्रयास किया था कि वह धरती के आबादी वाले क्षेत्र पर न गिरकर समुद्रीय जल में गिरे ताकि मानव–आबादी को इससे कोई सीधी क्षति न हो। कितु प्रश्न यह भी है कि क्या समुद्रीय जल का मानवीय जीवन से कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध नहीं है और क्या समुद्रीय जल के प्रदूषण से मनुष्य का जीवन प्रभावित नहीं होगा? बहरहाल, हम इस बहस को थोड़ी देर के लिए छोड़कर थोड़ा और आगे बढ़ते हैं।

'स्काई लैब' के आस्ट्रेलियाई समुद्र में गिरकर नष्ट हो जाने की घटना को अगर आप कल्पना की दृष्टि से देखें और यह ख़याल करें कि यदि स्काई लैब दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता, कराची, टोकियो, न्यूयार्क अथवा चीन की राजधानी बीजिंग की घनी आबादी वाले भागों पर गिरा होता तो इस घटना के कारण कितनी बड़ी तबाही हो सकती थी!

आकाश में जमा हो रहे कचरे की एकमात्र समस्या यही नहीं है कि वह अंतरिक्ष के ऊपरी वातावरण को बुरी तरह प्रदूषित कर रहा है। समस्या यह भी है कि यदि इसका कोई टुकड़ा किसी अंतरिक्ष यान से टकरा जाता है तो धरती पर कितनी बड़ी विनाश–लीला हो सकती है! टकराव के इस ख़तरे का संभावित अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि अगर 10 सेंटीमीटर के आकार का एक छोटा–सा मलबा किसी यान से टकरा जाता है, तो उसके आघात की शक्ति एक हज़ार कारों की 100 कि.मी. प्रति घंटे की गति से पैदा हुई टक्कर के बराबर होगी। यदि मलबे का आकार इससे बड़ा है, तो फिर ख़तरा इससे कहीं ज़्यादा बढ़ सकता है।

इसके अतिरिक्त एक कठिनाई यह भी है कि अंतरिक्ष में घूमते हुए मलबे के ये टुकड़े यदि प्राकृतिक नक्षत्रों और निहारिकाओं की तस्वीरें लेते समय लक्ष्य के सामने आ जाते हैं तो फ़िल्मों पर स्थाई एवं अनावश्यक रेखाएँ भी पड़ सकती हैं। अवास्तविक लकीरों वाली ये तस्वीरें न केवल वैज्ञानिकों को भ्रम में डाल सकती हैं, बल्कि अध्ययन के कार्य को भ्रमित भी कर सकती हैं। इस तरह वैज्ञानिक कार्य की प्रक्रिया अत्यंत जटिल एवं संदिग्ध हो सकती है। अंतरिक्ष में जैसे–जैसे इस कचरे की मात्रा बढ़ती जा रही है, खगोलीय निरीक्षण की समस्या पैदा होती जा रही है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि अंतरिक्ष में कचरे का जो अपार ढेर एकत्र हो गया है, उससे ऊपर का वातावरण भी बुरी तरह प्रदूषित हो रहा है। इस समस्या से निबटने के लिए प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की पहली गोष्ठी अप्रैल 1993 को जर्मनी में हुई थी। इनमें भारत के अतिरिक्त चीन, जापान, रूस, ब्रिटिश और फ्रांस आदि 17 देशों के लगभग 250 वैज्ञानिकों ने भाग लिया था और इस समस्या से निबटने के लिए अपने–अपने सुझाव दिए थे। इन सुझावों में इस बात का उल्लेख सबसे ज़्यादा किया गया था कि मलबे के सात हज़ार टुकड़ों का विवरण हमारे पास उपलब्ध है, उनकी निगरानी पृथ्वी से राडार के द्वारा की जानी चाहिए। यह भी ध्यान देने की बात है कि मलबे के इन टुकड़ों की निगरानी धरती पर पूर्णरूप से एकत्र की जा चुकी है और इनमें से अधिकांश टुकड़ों की गति, आकार एवं दिशा को कंप्यूटर में भी अंकित कर दिया गया है। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या सुरक्षा के लिए इतना–भर काफ़ी है! यद्यपि वैज्ञानिकों ने इस मलबे के कारण होने वाले विनाश से बचने के लिए कई और भी सुझाव दिए हैं, किंतु उनमें से अधिकतर ऐसे हैं जिन्हें क्रियात्मक रूप देना संभव नहीं है।

अंतरिक्ष में कचरे का जो ढेर इकट्ठा हो गया है, उसके लिए सबसे ज़्यादा जिम्मेदार विकसित देश ही हैं क्योंकि विश्व के सभी लोग यह बात जानते हैं कि जितने अंतरिक्षयान, राकेट एवं उपग्रह विकसित देशों द्वारा छोड़े गए हैं, उन्होंने ही अंतरिक्ष में जमा होनेवाले कचरे की समस्या उत्पन्न की है। अगर शीघ्र इसकी सफ़ाई का अभियान नहीं चलाया गया तो अंतरिक्ष में जमा इस कचरे से संसार को भारी क्षति पहुँच सकती है।

अंतरिक्ष में जमा यह अपार कचरा केवल इसीलिए पृथ्वी पर मानव–जीवन के लिए ख़तरा नहीं है कि उसके बेकार हो गए टुकड़े यदि पृथ्वी से टकराते हैं तो वे इंसानी बस्तियों के लिए विनाश का कारण बनेंगे। यह भयंकर ख़तरा इस दृष्टि से भी है कि मानव–निर्मित जो अंतरिक्ष यान, राकेट एवं उपग्रह अंतरिक्ष में पृथ्वी की कक्षा का चक्कर लगा रहे हैं, वे निरंतर नाभिकीय ईंधन के विषैले तत्त्व हमारे वातावरण में छोड़ते चले जा रहे हैं। अंतरिक्ष यान हो, राकेट हो, उपग्रह हो, जासूसी करने वाले उपकरण हों, ये सभी धरती से आकाश तक की अपनी यात्रा में नाभिकीय ईंधन का जो धुआँ वायुमंडल और उससे ऊपर छोड़ते हुए जाते हैं, क्या वह स्वयं समाप्त हो जाता है? नहीं, वह सबका सब वायुमंडल में सम्मिलित रहता है। उसके विषैले अंश वायु की तरंगों में मिल जाते हैं और अंत में यह विषैली तरंगें वातावरण में शामिल होकर धरती से आकाश तक अपना जाल बुन देती हैं।

इस पूरे विवरण का सारांश यह है कि वैज्ञानिक विकास की होड़ में आदमी धरती से उड़कर अंतरिक्ष तक पहुँचा है, उसने गर्व करने के लिए अपनी कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, उसने चंद्रमा की वास्तविकता का पता लगा लिया है, वह मंगल पर जीवन के होने न

होने की भरसक खोज कर रहा है, वह यह खोज भी कर रहा है कि कहीं कोई ऐसी दुनिया मौजूद है जहाँ जीवन है और इस धरती–जैसा वातावरण है। यह सही है कि विज्ञान आज पंख लगाकर उड़ रहा है, नई–नई खोजें सामने आ रही हैं, आदमी तेज़ी से विकास की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए आगे बढ़ रहा है, लेकिन आगे बढ़ने की गति में वह किस घाटे की भेंट चढ़ता जा रहा है, शायद इस पर उसकी नज़र अभी बहुत कम है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि विकास की अंधी दौड़ ने सबसे अधिक क्षति हमारे वातावरण को पहुँचाई है। हम विष एवं प्रदूषण से भरे माहौल में साँस लेने को विवश हो गए हैं। हमारे घर में प्रदूषण है, गली में प्रदूषण है, मुहल्ले में प्रदूषण है, क्षेत्र में प्रदूषण है, नगर में प्रदूषण है, गाँवों में प्रदूषण है, खेतों और खलिहानों में प्रदूषण है, पर्वतों और सागरों में प्रदूषण है। यह प्रदूषण धरती तक ही सीमित नहीं है, अब इसकी चपेट में आकाश और अंतरिक्ष तक आ गए हैं। आदमी इस ज़हर–भरे वातावरण से छुटकारा पाना चाहता है, लेकिन पाए तो कैसे?

हम अपने स्वच्छताकर्मी परिंदों, चीलों, गिद्धों तथा कौओं को आज धरती से ग़ायब होते देख रहे हैं। हम देख रहे हैं कि आज वे आकाश में भी कम दिखाई दे रहे हैं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि पक्षियों के मन से धरती का मोह भंग हो गया है अथवा आकाश का भ्रमण अब उन्हें रोचक नहीं लग रहा है। कारण इसका यह है कि धरती से आकाश तक कोई स्थान ऐसा नहीं है जो प्रदूषण–मुक्त हो, जहाँ हमारी संस्कृति का संदेशवाहक कौआ अब उड़ता हुआ सुख की साँस ले सके। यह स्थिति कैसे उत्पन्न हुई? हमें गंभीरता से सोचना होगा।

हिंदी की ज्ञान परंपरा की धरोहर : गुरु जांभोजी की सबदवाणी में पर्यावरण चिंतन

डॉ. मिलन बिश्नोई

भारतीय संस्कृति में ज्ञान, परंपरा और अध्यात्म की शिक्षा सदैव गौरवान्वित करने वाली रही है किंतु समय के साथ बाहरी शक्तियों ने सभ्यता और संस्कृति को मिटाने का प्रयास निरंतर किया हैं। इस घोर अंधकार समय में भी भारतीय ऋषि–मुनियों, संत–महात्माओं और समाज सुधारकों ने समय के अनुरूप जनता को सँभालने का सराहनीय काम किया है। वे वर्तमान में भारतीय परंपरा और संस्कृति की धरोहर को बचाए रखने के लिए कई प्रकार के व्यवधानों से जूझ रहे हैं।

किंतु आजादी के अमृत महोत्सव में भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान करने का प्रयास किया जा रहा है जो सराहनीय है। आज भाषा, संस्कृति, धर्म, आध्यात्मिक तत्व–चिंतन को लेकर अनेकानेक बहसें हो रही हैं, किंतु पाश्चात्य संस्कृति के परमपोषकों को भारतीय ज्ञान–परंपरा से ज्ञानार्जन करने की आवश्यकता है। खासकर कोविड–19 के दौर ने सबको सबक सिखाया भी है। भारतीय संस्कृति ने सदैव आंतरिक यात्रा (आंतरिक तत्त्व खोज) को महत्व दिया है। जितने भी महापुरुष हुए हैं जैसे राम, कृष्ण, बुद्ध, गुरु जांभोजी, नानक, कबीर, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास, जसनाथ, रामदेव, हड़बूजी, पाबूजी, वीर तेजाजी आदि सभी ने अपने 'स्व' को पहचानते हुए आगे बढ़ने की ओर प्रेरित किया है। यह सर्वविदित है कि हमारे महापुरुषों और संतों ने भारतीय परंपरा के माध्यम से मानव और प्रकृति सहज संबंध को बनाए रखने में विश्वास बढ़ाया है।

साहित्यकार डॉ. आनंद पाटिल ने पाश्चात्य संस्कृति की ओर पलायन करने वालों को देखकर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा है कि "अतः एक प्रश्न बारंबार मन–मस्तिष्क में उभरता है कि ऐसी गुलाम मानसिकता वाले लोग–बाग अपनी धरोहर के संबंध में भला क्या (कुछ!) सोचेंगे? इस मामले में बिश्नोई समाज(संप्रदाय) ने इस नवऔपनिवेशिक समय में गुरु जांभोजी एवं उनके तत्त्व–चिंतन पर पुनः मनन–चिंतन करने का जो उपक्रम आरंभ किया है, वह सैद्धांतिक भटकाव और मुठभेड़ वाले इस समय में वांछित भी है और अनिवार्य भी! यह प्रयास अपनी धरोहर की ओर लौटने का यथेष्ट उपक्रम भी है और पाश्चात्य चिंतन से पल्ला छुड़ाने और अपने विचारों को आगे बढ़ाते हुए वैचारिक दृष्टि से स्वतंत्र और सुदृढ़ होने की अदम्य चाह का अप्रतिम उदाहरण भी।" अर्थात् एक तरफ हम भारतीयता की बात करते हैं किंतु हम स्वयं आने वाली पीढ़ी तक अपने सांस्कृतिक गौरवबोध को पहुँचाने में अक्षम हैं किंतु गुरु जंभेश्वर के अनुयायी आज विश्व स्तर पर अपनी संस्कृति और गुरुजी की 'सबदवाणी' को प्रसारित करने का अथक प्रयास कर रहे हैं।

यद्यपि आचार्य शुक्ल ने यह कथन कबीर (1398–1518) और (1469–1539) के आविर्भाव की चर्चा करते हुए किया है किंतु तत्व–चिंतन की समानता को यदि एक क्षण के लिए ध्यान में न भी लिया जाए तो भी जन्म और जीवनावधि की दृष्टि से विचार करने से ज्ञात होता है कि गुरु जांभोजी (1451–1536) कबीर और नानक के समकालीन हैं। अतः जो कथन कबीर–नानक पर लागू होता है, वही जांभोजी पर यथावत् लागू होता है किंतु साहित्येतिहास ग्रंथकारों ने जांभोजी के रचना कर्म का संज्ञान नहीं लिया। बहरहाल, स्मरणीय है कि कबीर निर्गुण भक्ति के संवाहक थे तो नानक (कबीर से मिलने से पूर्व) की प्रवृत्ति एक भक्त की थी और जाम्भोजी सगुणोन्मुख निर्गुण भक्ति के संवर्धक थे। हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल में भारतीय संत–परंपरा का बखूबी वर्णन किया गया है। भक्तिकाल में रामचंद्र शुक्ल ने निर्गुण काव्य

परंपरा में कबीर, गुरु नानक, रैदास, दादूदयाल और सुंदरदास का उल्लेख किया है, किंतु खेद का विषय है कि उनकी दृष्टि उत्तर भारत की संत परंपरा में महान पर्यावरणविद्, समाजसुधारक और नारी हितैषी गुरु जांभोजी तक नहीं पहुँची जबकि डॉ. नगेंद्र और परशुराम चतुर्वेदी ने गुरु जांभोजी के बारे में विस्तारपूर्वक बताया है। रामचंद्र शुक्ल अपने इतिहास में कबीर की सबदवाणी का जिक्र तो करते हैं लेकिन गुरु जांभोजी की सबदवाणी और उनके जीवन उच्चादर्श को बताना भूल जाते हैं। गुरु जांभोजी का जन्म उस समय हुआ जब देश भयानक राजनीति, रूढ़िवादी, अंधकार, पाखंड और अत्याचार से जूझ रहा था किंतु उनके व्यक्तित्व और शिक्षा से प्रभावित होकर दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी, नागौर के नवाब मुहम्मद खान नागौरी, मेड़ता के राव दूदा, जैसलमेर के राव जैतसी, जोधपुर के राठौड़ राव सातल देव, मेवाड़ के राणा सांगा उनकी शरण में आए थे।

गुरु जांभोजी का जीवन परिचय– गुरु जांभोजी का जन्म 1451 ई.में राजस्थान के जोधपुर के निकट नागौर परगने के पीपासर ग्राम में हुआ। उनकी माता हंसा और पिता लोहटजी राजपूत थे। जनश्रुति के अनुसार कई वर्ष तक इन्होंने एक भी शब्द उच्चरित नहीं किया। इनके चामत्कारिक प्रदर्शन के कारण जनता ने इन्हें 'जंभंजी' कहना प्रारंभ किया। गुरुजी के अनेक नाम सामने आए हैं–"जंभनाथ, जंभे, जंभै, जंभेश्वर, जंभैस्वराय, जंभैजी, जांभराज, जाम्भेश्वर, जाम्भोविसन, भांभ, भांभैसर, भांभाजी, झांभराज इत्यादि।" गुरु जी के केवल इतने नाम ही नहीं बल्कि सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक सुधार संबंधित उनके अनेक पुरुषार्थ देखने को मिलते हैं। 29 नियमों को निर्धारित करते हुए उन्होंने 'बिश्नोई' पंथ की स्थापना 1542 ई. में कार्तिक बदी अष्टमी को 'समराथल' के ऊँचे मरुभूमि के टीले पर की थी। आज भी बिश्नोई समाज के लोग इसे अपना 'पवित्र तीर्थ स्थल' मानते हैं तथा इसे 'मुक्ति धाम' और 'धोक धोरे' के नाम से जाना जाता है। 'बिश्नोई' का अर्थ 20 + 9 है। इस शब्द की उत्पति 'वैष्णवी' शब्द से हुई है जिसका

अर्थ विष्णु का अनुयायी होता है। ये लोग अपने गुरुजी को भगवान विष्णु का अवतार मानते हैं। गुरुजी का मूलमंत्र है– 'विष्णु–विष्णु भज रे प्राणी'। गुरु जी के अनुयायी आज भी इनकी पूजा अपने आराध्य की भाँति करते हैं और उनके द्वारा बताए गए नियमों का पालन दैनिक दिनचर्या में करते हैं।

गुरु जांभोजी के 29 नियमों के बारे में भारत के उपराष्ट्रपति माननीय जगदीश धनकड़ ने बताया है कि–"गुरु जंभेश्वर जी द्वारा रचित शब्द वाणी तथा बिश्नोई समाज के 29 धर्म नियम भारतीय सांस्कृतिक विरासत का निचोड़ है। इनके अनुपालन से जीवनशैली और समाज सदैव सही रास्ते पर रहेंगे।" अतः गुरु जांभोजी द्वारा निर्धारित ये 29 नियम सरल–सहज और स्वस्थ जीवन यापन करने के लिए बनाए गए हैं इनका विवरण इस प्रकार है– 1. तीस दिन सूतक 2. पाँच दिन ऋतुवंती 3. सेरा करो स्नान 4. शील का पालन करें व संतोष धारण करें 5. बाहरी व आंतरिक पवित्रता रखें 6. प्रातः–सांय संध्या वंदन करें 7. संध्या को आरती और हरिगुण गान करें 8. प्रेमपूर्वक हवन करें 9. पानी, ईंधन व दूध को छानकर प्रयोग करें 10. वाणी विचारकर बोले 11. क्षमा दया धारण करें 12. चोरी न करें 13. निंदा न करें 14. झूठ न बोलें 15. जीवों पर दया करें। 16. वाद–विवाद न करें 17. अमावस्या का व्रत रखें 18. विष्णु का जप करें 19. हरा वृक्ष न काटें 20. काम, क्रोध, मद व लोभ, मोह से दूर रहें 21. हरा वृक्ष नहीं काटना 22. रसोई अपने हाथ से करनी 23. थाट अमर रखना 24. बैल का बधियाकरण नहीं करना 25. अमल–तंबाकू का निषेध 26. मद्यपान का निषेध 27. मांस नहीं खाना 28. नील वस्त्र का त्याग 29. भांग नहीं पीना।

इन उनतीस नियमों का अत्यधिक महत्व बिश्नोई समाज के लिए आज भी है। 500 साल बाद भी गुरु जांभोजी के अनुयायी निःस्वार्थ भाव से पर्यावरण और वन्यजीव संरक्षण के लिए प्राण न्योछावर कर रहे हैं। गुरुजी के द्वारा बताई गई इस आचार संहिता में सर्वप्रथम

महिलाओं के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए प्रथम दो नियम उनके लिए बनाए गए। वर्तमान केंद्र सरकार और राज्य सरकार महिलाओं के माहवारी में होने वाली समस्या और सामाजिक जागरूकता के लिए अभियान चला रही है किंतु गुरुदेव ने 15 वीं शताब्दी में महिलाओं के स्वास्थ्य की चिंता व्यक्त करते हुए कहा—'पाँच दिन ऋतुवंती न्यारो' अर्थात् माहवारी के समय महिलाओं को गृहकार्य, रसोई घर के जोखिम भरे कार्यों से मुक्त रखना चाहिए। पुराने जमाने में महिलाएँ बहुत दूर से पानी सिर पर उठाकर लाती थीं। संयुक्त परिवार में महिलाओं को अकेले खाना बनाना पड़ता था। इससे इस प्रकार उनके स्वास्थ्य में गिरावट की संभावना अधिक दिखाई दी। तब गुरुजी ने यह नियम लागू किया था किंतु स्वास्थ्यप्रद लाभ को ध्यान में रखते हुए आज भी बिश्नोई समाज में माहवारी के दिन घर के अन्य सदस्य महिलाओं को स्वस्थ भोजन बनाकर खिलाते हैं। यदि घर में कोई महिला नहीं है तो पिता—पति और भाई भी उसे आदरपूर्वक भोजन और सुविधाएँ उपलब्ध करवाते हैं। माहवारी जैसी आम बात भारत में पुरुषों से छुपाई जाती हैं लेकिन यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। महिला को इस बात को बिश्नोई समाज में लज्जा की दृष्टि से नहीं बल्कि सम्मान के साथ देखा जाता है।

'तीस दिन सूतक'— महिला की संतान उत्पत्ति के समय माँ और संतान के अच्छे स्वास्थ्य के लिए उसे एकांत और शांतमयी स्थान प्रदान करने के लिए उसे गृहकार्यों से मुक्त रखकर उसको आराम करने की हिदायत दी गई है। तीस दिन तक किसी प्रकार के कार्य नहीं करवाए जाते हैं। माँ को पूरी तरह स्वस्थ रखने के लिए स्वस्थ आहार देना तथा जच्चा और बच्चा दोनों की देखभाल अन्य सदस्यों की जिम्मेदारी होती हैं। इस नियम को भी केंद्र सरकार और राज्य सरकारें भी आज समझ सकी हैं इसलिए वे अस्पताल में जच्चे और बच्चे की सुरक्षा की बात करती हैं। आज महिलाओं की शारीरिक और मानसिक

समस्याओं को समझते हुए उनके स्वास्थ्य हेतु उचित संदेश दिए जाते हैं।

इसी प्रकार पर्यावरण और वन्य जीव संरक्षण हेतु अनेक नियम बनाये गए हैं जिसमें वन्यजीवों के प्रति दयाभाव, बैल के बधियाकरण पर निषेध, हरे वृक्षों की कटाई पर प्रतिबंध, गाय और अन्य जानवरों को कसाई खाने में भेजने पर प्रतिबंध, सूखी लकड़ियों को जलाने से पूर्व उनमें कीड़े–मकोड़े देखना, यदि है तो ऐसी लकड़ी नहीं जलाने का आदेश दिया। अर्थात् गुरुजी के इन नियमों को बहुत गहराई से समझें तो यह नियम केवल बिश्नोई समाज के लिए ही नहीं बल्कि सबके लिए बनाए गए हैं।

प्राकृतिक आपदा, भूकंप, बाढ़, जल–प्लावन, वन्य जीवों के शिकार तथा पारिस्थितिकी असंतुलन को देखते हुए गुरुजी ने नियमों को निर्धारित किया है। यदि संपूर्ण भारत को उनके नियमों की समझ होती तो शायद पर्यावरण प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण जैसी समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता। 'स्वच्छ भारत' की चिंता उन्होंने अपनी वाणी में कई बार की है। उन्होंने स्वच्छता से संबंधित नियम 29 नियमों में निर्धारित किए हैं जिसमें आस–पास के वातावरण की शुद्धता के साथ आंतरिक शुद्धता को भी बनाए रखने का आह्वान किया है।

आंतरिक वातावरण में पारिवारिक कलह, रिश्तों की टकराहट, आत्महत्या, अत्याचार जैसी घटनाएँ निरंतर बढ़ रही थी। ऐसे में गुरुजी ने शील–संतोष और क्षमा दया और "तन–मन धौइये संजम होइये हरख न खोइये" की बात बताई है।

बिश्नोई समाज द्वारा पर्यावरण संरक्षण और बलिदान– 1730 में जोधपुर मारवाड़ के महाराजा अभयसिंह ने चूने के भट्ठे को जलाने के लिए ईंधन की आवश्यकता बताई और राजा ने मंत्री गिरधारी भण्डारी को लकड़ियों की व्यवस्था करने का आदेश दिया। मंत्री ने जोधपुर से 25 किलोमीटर दूर खेजड़ली गाँव से वृक्ष लाने की सलाह

दी। खेजड़ली गाँव में बिश्नोई पंथ के लोग वहाँ अधिक रहते थे इसलिए वहाँ हरे वृक्ष अत्यधिक मात्रा में थे। बिश्नोई समाज के लोग पर्यावरण और वन्यजीव के प्रति अत्यधिक प्रेमभाव रखते हैं। वहाँ जब वे गिरधारीसिंह के नेतृत्व में वृक्ष काटने लगे तब वहाँ की 42 वर्षीय अमृता देवी और उनकी तीन पुत्रियाँ आसु, रतनी, भागु बाई और पति रामू खोड़ सहित 363 लोगों ने अपने जान की परवाह न करते हुए पेड़ों को बचाने के लिए अपना बलिदान दे दिया। भारत के 'चिपको आंदोलन' की शुरुआत यहीं से मानी जाती है। अमृता देवी पहली आधुनिक नारी मानी जाती हैं जिन्होंने वृक्षों के लिए राजा–महाराजाओं का सामना किया।

खेजड़ली आंदोलन की तरह पेड़ों के लिए बूचोजी के बलिदान की भी अमर कथा बिश्नोई समाज में मिलती है। नरसिंघदास ठाकुर ने इमारती लकड़ियों के लिए अपने लोगों को पोलावास गाँव, मेड़ते में भेजा था। तब वहाँ बूचोजी ने उन लोगों को ललकारते हुए कहा– "हाँ मैं शहीद होने के लिए तैयार खड़ा हूँ। आइए, कौन मेरा काम तमाम करेगा। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं बिल्कुल इस जगह से हिलूँगा नहीं, सामने हाथ उठाऊँगा नहीं, मेरा सिर धड़ से अलग कर दीजिए। न ही कोई मेरा भाई बंधु विरोध करते हुए आपका सामना करेगा। आप लोगों में से जो अपने को शूरवीर समझता है वह सामने आ जाए। मेरी एक शर्त है वह भी सुन लो। मेरे मिट जाने के बाद तुम्हारे संबंधियों में से कोई हरा वृक्ष नहीं काटेगा और न कटवाने की प्रेरणा देगा। यह जो वृक्ष कट गए हैं इनकी जगह तुम्हें दूसरे रूंख लगवाकर देने होंगे। यही रूंख कटने की घटना इस इलाके में अंतिम होनी चाहिए। इसलिए मेरा शरीर समर्पित है। मेरा शरीर काट लीजिए परंतु रूंख नहीं काटना।" अर्थात् इस प्रकार गुरुजी के अनुयायी पर्यावरण की रक्षा करते हुए पाया कभी प्राणोत्सर्ग करने से पीछे नहीं हटते हैं। बॉलीवुड के प्रसिद्ध कलाकार सलमान खान सहित कुछ फिल्मी अभिनेताओं को बिश्नोईयों के गाँव जोधपुर के निकट काले हिरण का शिकार करते हुए पाया तो बिश्नोई समाज के लोगों ने एकत्रित होकर वन्यजीव संरक्षण

के प्रति आवाज उठाई। सलमान खान ने उन लोगों को पैसों का लालच देकर, उन्हें सामाजिक तत्वों के जरिए डराने–धमकाने का खूब प्रयास किया, किंतु सामान्य किसान परिवार के लोग बेझिझक वन्यजीवों की सुरक्षा हेतु लड़ते रहे।

आजकल आधुनिक दौर में कई प्रकार की योजनाओं और तकनीकी गतिविधियों को बढ़ावा दिया जा रहा है लेकिन इस प्रक्रिया में आधुनिक संयत्रों के नकारात्मक प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया जाता। हाल ही में पश्चिमी राजस्थान की तरफ सोलर हब विकसित हो रहे हैं। इससे पर्यावरण और वन्य जीवों के अस्तित्व के खतरे को देखते हुए बिश्नोई समाज के लोगों ने जनआंदोलन किया है। उन्होंने बताया कि अखिल भारतीय बिश्नोई महासभा का आरोप है कि गाँव में सोलर प्लांट लगाने के लिए ली गई जमीनों पर मौजूद खेजड़ी के हजारों पेड़ों को काटकर दफना दिया गया है। बिश्नोई समाज के मुताबिक, खेजड़ी के लगभग 10,000 पेड़ों को काटा गया है जिसमें प्रशासन की मिलीभगत शामिल है। वहीं बिश्नोई समाज के कुछ लोगों को जेसीबी में पेड़ों के अवशेष मिले जिसके बाद लोगों का आक्रोश फूट पड़ा। इसके बाद पर्यावरण प्रेमियों ने एक–एक कर सैकड़ों की संख्या में जमीन में दबे पेड़ों को बाहर निकाला। कार्यवाही के लिए इसके विरुद्ध फलोदी एडीएम को ज्ञापन सौंपा और अनिश्चितकालीन आमरण अनशन किया। यह बिश्नोई समाज का केवल खाना–पूर्ति करने वाला अनशन नहीं था बल्कि 500 साल बाद भी गुरु जांभोजी की वाणी और संदेशों को निष्ठापूर्वक जीवन में उतारते हुए जीवनयापन करने का एक उदाहरण है।

गुरु जी की वाणी का प्रभाव न केवल बिश्नोई पंथ के लोगों पर हैं बल्कि बिश्नोई समाज के आसपास के लोग भी उनकी तरह पर्यावरण, वन्यजीव और मानवता की रक्षा करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। जैसा कि रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि "जबकि प्रत्येक देश

का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अतः कारणस्वरूप इन परिस्थितियों का किचिंत दिग्दर्शन भी साथ–ही–साथ आवश्यक है।" गुरुजी की 'सबदवाणी' का प्रभाव समस्त राजस्थान के कई संत महात्माओं पर दिखाई देता है जिनमें वीर तेजाजी ,गोगाजी, हड़बूजी, रामदेवजी, जसनाथ, दादूदयाल, सुंदरदास इत्यादि महापुरुष शामिल हैं। गायों, महिलाओं की रक्षा करते हुए सबको मानवता का पाठ पढ़ाया है।

इतना ही नहीं, आज के संदर्भ में यदि देखा जाए तो आधुनिक समय की भागदौड़ में महिलाएँ अपनी संतान का पालन–पोषण करने में असफल होती दिखाई दे रही हैं। वहीं राजस्थान में बिश्नोई समाज की महिलाएँ अपने बच्चों के पालन–पोषण के साथ–साथ घायल नवजात हिरण, खरगोश, गाय के बछड़ों, मोर, नील गायों का इलाज करवाकर उनकी देखभाल करती हैं। ये महिलाएँ कई बार हिरण के बच्चों को स्तनपान भी करती हैं। इस समुदाय के लोग वन्यजीव की सुरक्षा करते हुए हत्यारों और शिकारियों से लड़ते हुए बलिदान दे देते हैं। इनके इलाके में वन्यजीवों का शिकार करना और पेड़ काटने पर पूर्ण प्रतिबंध है। इनकी जीवन–शैली उच्चादर्शों से परिपूर्ण है।

बिश्नोई समाज के लोग भारतीय आदर्शों को अपने व्यवहार में पूर्ण रूप से उतारते हैं। इनका मानना है–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया"।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग भवेत्।" ये लोग स्वार्थ से परे होकर मानवता की रक्षा सदैव करते आए हैं। हाल ही के ताजा उदाहरणों में बिश्नोई समाज के लोग कोविड महामारी में बिना किसी

भेदभाव के दीन–गरीब और असहाय लोगों की तमाम प्रकार की सहायता करने हेतु आगे आए। राजस्थान में गायों में आई 'लंपी महामारी' के दौरान सरकार ने उचित समय पर कोई सहयोग नहीं किया किंतु बिश्नोई समुदाय के लोग ग्रामीणों के साथ मिलकर उन गायों का इलाज करवाने, देशी उपचार और चारा–पानी देने में डटे रहे। इनके प्रत्येक गाँव में वन्यजीव संरक्षण और गौशाला का प्रबंध सरकारी आर्थिक सहयोग के बिना स्वयं किया जा रहा है। राजस्थान जैसे इलाके में भयंकर ठंड और गर्मी में वन्यजीवों, गायों और वनों की सुरक्षा करने के लिए ग्रामीण लोग चंदा इकट्ठा करते हैं।

गुरुजी की वाणी 'पहला सुख निरोगी काया' का पालन करते हुए बिश्नोई समाज के लोग नित्य स्नान करके हवन करते हैं। इनके समाज में अमल, तंबाकू और भांग, अफीम, मदिरा पर पूर्ण प्रतिबंध है। इस समाज के लोग नशा प्रवृत्ति से दूर रहते हैं। नशे के कारण आज लाखों की संख्या में प्रतिदिन दुर्घटनाएँ और हत्याएँ तथा दुराचार हो रहे हैं किंतु बिश्नोई समाज के लोग सदैव प्रयासरत रहते हैं अपने समाज को स्वस्थ और स्वच्छ बनाए रखने में। यदि कोई नशा करते हुए, महिलाओं पर अत्याचार करते हुए, चोरी करते हुए देखा जाए तो समाज के संत–महात्मा और बड़े लोग उसे दंडित करते हैं। गुरु जांभोजी का मुक्तिधाम मुकाम में प्रतिवर्ष मेले का आयोजन किया जाता है। वहाँ प्रत्येक वर्ष की गतिविधियों के अच्छे–बुरे कर्मों का लेखा–जोखा करते हुए संत–महात्मा सुधार करने का आदेश देते हैं। गुरुजी के अनुयायियों ने उनकी शिक्षा को अपने जीवन में इस प्रकार उतारा है कि पाँच सौ साल बीत जाने के बाद भी बहुत संवेदनशील होकर वे उनकी वाणी का अनुसरण करते हैं। इस समाज के लोग सदैव आत्मनिर्भर रहे हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि बिश्नोई समाज का कोई भी इंसान चाहे उच्च हो या निम्न हो, वह कभी भिक्षा माँगते हुए नजर नहीं आता। इनके समाज का गरीब से गरीब अपनी मेहनत और परिश्रम के साथ जीवनयापन करता है और आस–पास के पशु–पक्षियों

को भी दाना–पानी देता है। इस समाज में जब फसल निकाली जाती है, प्रत्येक घरों में उस अनाज का बहुत बड़ा हिस्सा आवारा गायों, पशु–पक्षियों और हिरणों–नील गायों के लिए दिया जाता है। अमावस्या, पूर्णिमा और ग्यारस के दिन ये लोग वन्यजीवों, गायों तथा पक्षियों के लिए मंदिर, चबूतरों और गौशाला में अनाज तथा चारा दान में देते हैं। मंदिरों और घरों में वातावरण शुद्धिकरण के लिए प्रतिदिन यज्ञ किया जाता है।

गुरुजी की वाणी 500 वर्ष के बाद भी प्रासंगिक हैं और उनके अनुयायी समय के साथ पर्यावरण और मानवता का संदेश राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देने के लिए प्रयासरत हैं। 4–5 फरवरी 2023 को अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन दुबई में आयोजित हुआ। इस अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन का विषय "वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियाँ और बिश्नोई समाज के सिद्धांतों में समाधान" था। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य यह था कि आज पर्यावरण के समक्ष वैश्विक स्तर पर अनेक चुनौतियाँ हैं। जल, जमीन और जंगल खतरे में हैं। वायु और ध्वनि प्रदूषण के कारण लोग अनेक प्रकार की बीमारियों से त्रस्त हैं। ओजोन परत छलनी हो रही है। जैव विविधता में दिन–ब–दिन संकट बढ़ रहे हैं। जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, मरूस्थलीकरण, वनोन्मूलन, पारिस्थितिकी असंतुलन, अम्लीय वर्षा इत्यादि कारणों से पर्यावरण के सामने अनेक संकट और चुनौतियाँ हैं, इन तमाम समस्याओं के साथ जीवनयापन करना आसान नहीं है। आज भले ही कृत्रिम मेधा (Artificial intelligence) को बढ़ावा दिया जाने लगा हो किंतु इन समस्याओं और संकटों से निपटने के लिए हमारी ज्ञान–परंपराओं और संस्कारों को जीवन में लागू करते हुए आगे बढ़ना होगा।

कई बार समाज के लोग अपनी तृप्ति और धार्मिक आडंबरों के कारण वातावरण और जीव–जंतुओं को हानि पहुँचाते हैं। उन्हें गुरुजी जीवन के उच्चादर्श बताते हैं कि–

सुंणि रे काजी सुंणि रे मुल्ला सुंणि रे बकर कसाई।

किण री थरपी छाळी रोसो किण री गाडर गाई ?
कांढै भागै करक दुहेली जायौ जीव न धाई।
थे तुरकी छुरकी भिसती दैवौ खायबा खाज अखाजूं।
चरि फिरि आवै सहजि दुहावै तिंहका खीर हलाली।
तिंहकै गळै करद क्यौं सा'रो? थे पढि गुंणि रहिया खाली।

हीरालाल माहेश्वरी ने एक तथ्य में स्पष्ट किया है कि गुरुजी के दर्शन का प्रभाव जनसाधारण के साथ–साथ कई शासकों पर भी पड़ा था। जीव–दया पालनी की बात का महत्व समझते हुए सिंकदर लोदी, मुहम्मद खाँ नागौरी, मेड़ता के राव जैतसी, जोधपुर के राठौड़ राव दूदा, जैसलमेर के रावल जैतसी, मेवाड़ के राणा सांगा ने गौ हत्या पर प्रतिबंध लगाया था।

विस्तृत फलक पर देखा जाए तो गुरु जंभेश्वर का तत्व–चिंतन समन्वयवादी है। जीवनादर्शों से विचलित होने वालों को चेतावनी देते हुए कहते हैं– "इस कलियुग में तत्त्वज्ञान न हो पाने के कारण सभी भ्रम में पड़े दिखते हैं। ब्राह्मण वेदों को, काजी कुरान को और जोगी जोग को भुला बैठे हैं तथा मुंडियों में तो अक्ल नहीं रही है।" वे कहते है–"मैं किसी का नहीं हूँ; केवल सच्चे पुरुषों का हूँ। मैं तो सच्चे हिंदू का देव और सच्चे मुसलमान का पीर हूँ।" गुरु जांभोजी की वाणी में उनके तत्व–चिंतन की गहराई, भक्ति–वैविध्य, गुरु महिमा, ज्ञानोपदेश, कर्मशीलता, आत्मालोचना और आत्मज्ञान में लोकमंगल की भावनाएँ तथा सुधारवादी दृष्टि दिखाई देती है।

हमारे देश में गुरु की महत्ता का बखान सदैव होता है। गुरु जांभोजी ने भी गुरु के संबंध में बताया है–

सतगुरु ऐसा तत्त्व बतावै, जुग जुग जीवै बहुरि न आवै
गुरु न चीन्हों पंथ न पायो, अहल गई जमवारू

उत्तम जंग सूं, उत्तम रंग सूं रंगू। उत्तम लंग सूं, उत्तम ढंग सूं ढंगू।

आज देश को पर्यावरण संरक्षण और जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दों पर बात करनी पड़ती है। विश्वस्तर पर पर्यावरण और जैव विविधता के बढ़ते खतरों के कारण संपूर्ण राष्ट्र चिंतित है और इससे संबंधित सम्मेलनों का आयोजन भी किया जा रहा है। इसके संदर्भ में प्रबुद्ध साहित्यकार ऋषभदेव शर्मा लिखते हैं– "पर्यावरण संरक्षण के लिहाज से भी यह अच्छी खबर है कि सम्मेलन में करीब 190 देशों के मत्रियों और अधिकारियों ने सहमति जताई है कि जैव विविधता की रक्षा वर्तमान विश्व की प्राथमिकता होनी चाहिए। इस आपसी समझ का ही असर है कि इस समझौते में कीटनाशकों के उपयोग को कम करने, जैव विविधता को होने वाले नुकसान को रोकने और उसे सुधारने के लिए संकल्प जताया गया।" उनका मानना है कि पर्यावरण का हितैषी आदिवासी समाज भी सदैव रहा है। सरकारी योजनाओं से भी वे भयभीत रहते हैं क्योंकि जल, जमीन और जंगल को सदैव इनसे खतरा है। इसी प्रकार गुरुजी और बिश्नोई समाज के बारे में देश के प्रबुद्ध राजनेताओं ने कई बार अपने मंचीय भाषणों के माध्यम से संदेशों के बारे में बताया हैं। गजेंद्रसिंह शेखावत ने कहा–"मित्रों, मैं बिश्नोई समाज से निवेदन करता हूँ कि वे मुझे गोद लेंवे। मैं उनके साथ 24 घंटे काम करूँगा और पर्यावरण की रक्षा करूँगा।" उन्होंने यह भी बताया कि "बिश्नोई समाज जल, जंगल और जमीन के वास्ते बात करता है, जबकि पाश्चात्य संस्कृति के अंधाधुंध अनुकरण के कारण हमने इन प्रकृति प्रदत्त चीजों का खुद को मालिक समझ लिया। भगवान जंभेश्वर ने प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा का संदेश न दिया होता तो हमारे लिए क्या ये पर्यावरण बचता ? आप लोगों ने पेड़ों की रक्षा के वास्ते बलिदान दिया। आज विश्वस्तर पर उदाहरण पेश करने की क्षमता है।" आजादी के अमृत महोत्सव में माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने अपने वक्तव्य में पर्यावरण की बात करते हुए बताया है कि "संयुक्त राष्ट्र द्वारा भारत को 'चैंपियन ऑफ द अर्थ' सम्मान बिश्नोई जैसे समुदायों द्वारा किए गए बलिदानों के कारण ही संभव हो पाया हैं

... 'लोग कहते हैं कि मोदी जी आपका सम्मान हो गया है। मुझे लगता है कि दुनिया को पता नहीं है मेरी राजस्थान की धरती पर बिश्नोई समाज...जब दुनिया को ग्लोबल वार्मिंग का 'ग' मालूम नहीं था और पर्यावरण का 'प' पता नहीं था, तब मेरे बिश्नोई समाज के लोगों ने सदियों पहले पर्यावरण की रक्षा के लिए बलिदान दिए। आज भारत को चैम्पियन ऑफ द अर्थ जो सम्मान मिला है उसके मूल में पर्यावरण की रक्षा के लिए बलिदान देने की परंपरा वाले देश के कोने–कोने में हैं।" कहने का मतलब है कि आधुनिक समय में राष्ट्र और पर्यावरण हित के लिए हमारे संत–महात्माओं द्वारा बताई गई ज्ञान परंपरा की ओर लौटने की आवश्यकता है।

संदर्भ–

1. गुरु जांभोजी : तत्त्व–चिंतन और उच्च जीवनादर्श का आग्रह, गगनांचल पत्रिका, मई–जून 2022 अंक, पृष्ठ संख्या–36
2. वही, पृष्ठ संख्या 36
3. https://pib-gov-in /pressReleaselframepage.aspx?prid186102
4. https://www.bishnoism.org-ka-balidan.html?m=1
5. jodhpurthousandofkhejritreesdi-rajasthan-au275-129602.html
6. श्री जंभवाणी टीका, डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, श्री गुरु जंभेश्वर साहित्य सभा, फिरोजपुर, द्वितीय संस्करण 2011
7. हीरालाल माहेश्वरी, वही, पृष्ठ संख्या–33
8. वही, पृष्ठ संख्या–13
9. https://www.newslaundary.com/2018/12 /06/raje-goverment
10. विविधता बचेगी, तो मनुष्य बचेगा, डेली हिंदी मिलाप, बुधवार, 21 दिसंबर 2022

धरती को चरागाह बनाती सभ्यता और उपन्यास

पी. रवि

मशीनें,
पेड़ों को उखाड़ चुकने के बाद हाँफ रही हैं।
अब हाँफती मशीनें ढूँढ़ रही हैं
कहीं कोई पेड़ की छाँह।
(जड़ों की जमीन, जसिंता केरकेट्टा)

प्रस्तुत छोटी कविता कहती है कि पेड़ सिर्फ जंगल नहीं, बल्कि संपूर्ण प्रकृति हैं, उसकी जैविकता है और उससे जुड़े किसान एवं आदिवासी हैं। प्रकृति को, उसकी जैविकता को, नदी–नाले, खेत–खलिहान, पहाड़–पर्वत, चट्टानों, पशु–पक्षियों को मिटाकर मशीनें तथा उसके चालक सभ्य मनुष्य काफ़ी आगे पहुँच गए हैं। मशीनें सिर्फ यंत्र नहीं, उससे बढ़कर मशीनी सभ्यता, उक्त सभ्यता के गुण–भोक्ता तथा उसके पालन–पोषण करने वालों का एक अमानवीय गुण भी हैं। किंतु आज ये सब बुरी तरह हाँफने लगे हैं, यानी उक्त सभ्यता पर धक्का पहुँचने लगा है। महानगरों में प्राणवायु और पेयजल दुर्लभ हो गए हैं, ऑक्सीजन पार्लर, पानी प्यूरिफिकेशन की प्लेट्स और उसका वितरण तक बड़े–बड़े उद्योग बन गए हैं। महानगर के सभ्य समाज यानी मशीन में तब्दील होते मनुष्य सागर तट, जंगल तथा प्रकृति की अन्य वैविध्यपूर्ण जगहों में, उसकी ही क्रोड़ में वितरण करने को भागते हैं या उसके लिए मजबूर हो गए हैं। बोतलों में मिट्टी, पानी, पेड़–पौधे, मछली इत्यादि को नमूने के रूप में ही सही, कहीं चित्र के रूप में भी अपनी आगामी पीढ़ी को दिखाने के लिए संजोकर रखने लगे हैं।

प्रकृति और उसके जीव–जंतुओं का सर्वनाश करके अब उसे संग्रहालय में तलाशने को मजबूर हो गए हैं। खेती की वृद्धि के लिए विश्वविद्यालय खोले गए, उत्पादन की वृद्धि के लिए उसका औद्योगिकीरण किया गया, इस सिलसिले में शोध करते–करते परंपरागत बीजों को मिटा दिया गया और अब इसको लेकर, रोने–चिल्लाने लगे हैं। जी.एम सीड्स, रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशकों की सहायता से, मशीनों (ट्रेक्टर, टिल्लर, काटने–कूटने की मशीनें आदि) की सहायता से आधुनिक हिंसक सभ्यता आगे बढ़ती रही। आज मनुष्य बुरी तरह अनेक रोगों से पीड़ित है। इससे बचने के बहाने चर्बी कम करके तंदुरुस्त रहने के लिए कसरत केंद्र खोले गए। एनर्जी ड्रिंक्स पिलाने लगे। इसे भी नाकाफ़ी समझने लगे तो ऑर्गेनिक उत्पादन, जिसकी हमने कृषि के औद्योगिकीरण के दौर में उपेक्षा की थी, का नारा लगाने लगा। अब हम मिलेट्स वर्ष मना रहे हैं। इस प्रकार सभ्य मनुष्य एक ही समय में मशीन के पीछे और प्रकृति की जैविकता के पीछे दौड़ने लगा।

जैविकता प्रकृति की सबसे बड़ी खूबी है। प्रकृति की उस जैविकता को मिटाने से पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ गया और पर्यावरण प्रदूषित हो गया। पर्यावरण के प्रदूषित होने पर नगरों में जीवन दूभर हो गया है। दूसरी ओर ग्रामीण प्रकृति भी बिगड़ने लगी। मनुष्य और अन्य सभी जीव–जंतुओं का बुनियादी संबंध प्रकृति से है, न कि औद्योगिक सभ्यता से। प्रकृति को संसाधन तथा उपभोग की वस्तु के रूप में उपयोग करते सभ्य मनुष्य बाजार की चकाचौंध, भोग–विलास एवं सुख–सुविधाओं के आदी हो गए हैं। अपनी ही सुविधा में सीमित ये मनुष्य स्वयं के जैविक प्राणी होने के सच को भूल गए। पैसे के बल पर सब कुछ हासिल कर सकते हैं, वे इस भ्रम में जीने लगे। सुविधा की तलाश में अपनी मिट्टी की उपेक्षा करके दूर जाने लगे। अब अन्य ग्रहों में प्रवास करने का अनुसंधान कार्य चल रहा है। उसके लिए पैसे के खर्च से बढ़कर पर्यावरण को नष्ट करने का काम भी हो रहा है जिस पर कोई ध्यान देने को भी तैयार नहीं है। टिकाऊ विकास उसके

एजेंडें में नहीं है। यदि कोई उस ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास करे तो उसे सिरफिरा, पागल, अव्यावहारिक एवं विकास विरोधी कहकर चुप कराया जाता है। ओजोन लेयर टूट गई, भूमि–ताप बढ़ गया, पेयजल की कमी अखरने लगी। इस प्रकार अपने पैरों के नीचे की जमीन भी बहने लगी है, फिर भी सभ्य दंभी मनुष्य इससे 'अनजान' रहते हैं, यही सबसे बड़ी विडंबना है।

आज पर्यावरण की सुरक्षा के लिए कानून, निगम, बोर्ड (Pollution Control Board) आदि का संस्थापन करके, प्लास्टिक, डीजल आदि पर नियंत्रण व प्रतिबंध लगाकर हम आश्वस्त रहते हैं। लेकिन ये सारे नियम अन्यों के लिए हैं, यही हमारा रवैया है। पर्यावरण बिगड़ गया है। फिर भी बड़ी तादाद में ऊर्जा उत्पादन के लिए खदान, आण्विक रिएक्टर और अन्य रासायनिक फैक्टरियाँ खोली जाती हैं। पूर्णतया मनुष्य विरोधी, पर्यावरण विरोधी युद्ध एवं युद्ध सामग्रियों के उत्पादन से पर्यावरण बिगड़ता ही जा रहा है। सबसे अचंभित करने वाली बात है कार्बन ट्रेंड। यह पर्यावरण को बिगाड़कर कहीं भी पेड़ लगाने का एक बहाना है। प्रकृति एवं पर्यावरण के साथ खिलवाड़ करके कार्बन ट्रेड के द्वारा क्षतिपूर्ति की बात की जाती है। इन सबका विरोध–प्रतिरोध हो रहा है, इसमें साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण है। यहाँ उपन्यास प्रकृति–पर्यावरण–पारिस्थितिकी के इस संकट को कैसे देखता है, इसे देखने–परखने का प्रयास किया जाएगा।

'रंगभूमि' प्रकृति की जैविकता और पर्यावरण की रक्षा की ओर संकेत करने वाला पहला उपन्यास है। 1930 के आसपास ही इसकी असली नब्ज पकड़ते प्रेमचंद आधुनिक सभ्यता को इसका गुनहगार मानते थे। औद्योगिक क्रांति की हवा उपनिवेशी भारत में भी बहने लगी। एक ओर बड़े–बड़े यंत्र, कारखानों तथा मशीनों का उपयोग होने लगा तो दूसरी ओर फैक्टरियों में अतिरिक्त उत्पादनों के लिए बाज़ार और बाज़ार तक पहुँचाने के मार्गों रोड, रेल, तार, बैंक का निर्माण भी। आरंभिक दौर में आधुनिक सभ्यता के प्रतीक के रूप में रेल, रोड, तार

आदि को मानते थे, इस बात पर भी ध्यान देना होगा। 'गोदान' के होरी की मृत्यु किसान या खेतिहर मजदूर के रूप में काम करते वक्त नहीं, सड़क निर्माण के मजदूर के रूप में काम करते वक्त ही होती है, जिसे औद्योगिक सभ्यता द्वारा किसान की हत्या के रूप में भी देखा जा सकता है। 'रंगभूमि' का जॉन सेवक गाँव में, वह भी खेत को पाटकर तंबाकू फैक्टरी लगाने का काम करता है। इसके लिए वह सूरदास का खेत उचित समझता है और उसे हड़पने का प्रयास करता है। लेकिन किसी भी मूल्य पर सूरदास विरासत के रूप में प्राप्त जमीन को सुरक्षित रखना चाहता है। वह आधुनिक सभ्यता के मुनाफे की नीति का विरोध करता है, अपनी जमीन में चारा खाते गाँव के गाय–बैल को देखना अधिक पसंद करता है। सिगरेट के कारखाने को गाँव एवं समाज के लिए सूरदास हानिकारक मानता है। सूरदास की इस सहजीविता एवं ग्रामीण सामाजिकता को भावुक कहते जॉन सेवक की सामाजिकता की अपनी व्याख्या है। 'हमारी जाति का उद्धार कला–कौशल और उद्योग की उन्नति में है। इस सिगरेट के कारखाने से कम–से–कम हजार आदमियों के जीवन की समस्याएँ हल हो जाएंगी और सिर से खेती का उनका बोझ टल भी जाएगा।' उसके अनुसार खेतीबारी से बेरोजगारी नहीं मिटने वाली है, कारखाना बेकारों को रोटी कमाने का अवसर देगा। खेत से अन्न मिलता है, उसके दुरुपयोग करने पर अनाज महंगा हो जाएगा– ऐसा कहनेवालों को भी जॉन सेवक अपने पक्ष में लाता है। सूरदास से वह कहता है कि 'अब व्यापार का राज्य है, और जो इस राज्य को स्वीकार न करे, उसके लिए तारों को निशाना मारने वाली तोपें हैं।' आधुनिक सभ्यता की इस दहाड़ से भारतीय गाँव सिहरने लगे। अपनी जमीन से बेदखल भारतीय किसान/सूरदास बदलते गाँव के विकास, बदलती जिंदगी और अशांत माहौल से परेशान होते हैं। यह अशांति सूरदास की नहीं, प्रेमचंद की है, इसलिए 'गोदान' में पुनः सवाल करते हैं कि "....राजनीतिज्ञ भी अब केवल लुप्त साम्राज्यों के खंडहर रह गए हैं, आविष्कारकों ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना देने के सिवा और क्या समस्या हल कर दी?

पुरुषों की रची हुई इस संस्कृति में शांति कहाँ है? सहयोग कहाँ है?"(पृष्ठ139, लोकभारती, पैपरबैक) मतलब यह है कि पर्यावरण–पारिस्थितिकी की समस्या को आधुनिक सभ्यता की विशाल एवं जटिल पृष्ठभूमि में रखकर समझना होगा। 'कविता क्या है?' निबंध के प्रथम उपशीर्षक (सभ्यता के आवरण और कविता) में रामचंद्र शुक्ल भी यही कहते हैं।

संजीव के अधिकांश उपन्यास आदिवासी जीवन के संघर्ष, त्रासदी, शोषण और बिगड़ते पर्यावरण आदि मुद्दों पर केंद्रित हैं। 'धार' उनमें से एक उपन्यास है जिसमें लेखक खनन, पर्यावरण, आदिवासी, स्त्री और उसकी सहायता करते वामपंथी गुट आदि को जगह देते हैं। आदिवासी इलाके में सरकार एवं सरकारी व्यवस्था, ठेकेदार, ओझा एवं दलाल की क्रूरतापूर्ण करतूतों से बिगड़ते जीवन का चित्र एक तरफ है तो दूसरी तरफ विकिरण, प्रदूषण, भूख, रोग आदि के चित्र हैं। 'धार' के आरंभ में निरीह आदिवासी लोगों को धोखा देते पूंजीपति, सरकारी असर, दलाल एवं ओझा के गठबंधन को देख सकते हैं। यह गठबंधन सभी तरह के विरोधों– प्रतिरोधों को दुर्बल बनाने के मार्ग अपनाता है। टेंगर की तारीफ करके, राजा बलि की तरह दानशील, साधु महात्मा कहकर उसे महात्मा बना देता है और महात्मा बन गया टेंगर तेजाब फैक्टरी, जिसे वह अन्नपूर्णा माई कहता भी है, की रक्षा के लिए अपनी जान तक गँवा देने को तैयार होता है। उसकी पत्नी रमिया, यानी मैना की माँ ने फैक्टरी को सर्वनाश का प्रतिरूप बताकर उसका विरोध किया था, तब जनगुरु ओझा की सहायता से उस पर डायन का आरोप लगाकर गाँव से हटा दिया जाता है। ओझा के अनुसार गाँव के सारे अनर्थों का एकमात्र कारण वह डायन है; तेजाब फैक्टरी से बाहर आते पानी पीकर मरते जानवरों का कारण तक। उसके बाद संघर्ष में सक्रिय भागीदारी करती मैना को जेल जाना पड़ता है। जेल से रिहा होकर आई मैना अडिग होकर कहती है– ". ..बोले ई तेजाब का कारखाना से खेत–बाड़ी, कुआँ–पोखरा सब खराब होता, इसको बंद करो।"(धार, पृष्ठ–19) दलाल हैदर मामा मैना का

विरोध करता है तो अन्य मामा के असली चेहरे की पोल खोल देते हैं। गाँव में खेती होती थी, जिसके बल पर छह–सात महीने का अन्न मिलता था। फैक्टरी के खुलने के बाद उसमें कमी आने लगी, धीरे–धीरे खेती मिट जाने लगी। मैना "हमको याद आता, जब हम बच्चा था, खेती से चार–छै महीना का काम चल जाता, आज एक दिन का भी नईं! खेत–खता, पेड़, रूखा, कुआँ, तालाब, हम और हमारा बाल–बच्चा तक आज तेजाब में गल रहा है, भूख में जल रहा है।"(वही, पृष्ठ 56) तब हम चोरी जैसा काम नहीं जानते थे, आज हम इज्जत चाहते हैं, शर्मा इसके लिए सहायता भी करते हैं। शोषण की भयावह सच्चाई से अवगत होने पर टेंगर ने ही तेजाब फैक्टरी को तोड़कर खुदखुशी की। तब तक गाँव के सारे जल–स्रोत प्रदूषित हो गए थे, खेती उजड़ गई थी। इसलिए मैना और अविनाश शर्मा के नेतृत्व में सहकारी कोयला खदान शुरू किया गया। संताली आदिवासी खदान के लिए पेड़ काटते समय उससे अधिक पेड़ लगाते भी थे, लाश गाड़ते समय भी वे पेड़ लगाते थे। इस तरह वे प्रकृति के संतुलन को, पर्यावरण को सुरक्षित रखने का काम करते थे। संजीव ने 'सावधान नीचे आग है', 'जंगल जहाँ शुरू होता है' जैसे उपन्यास में भी आदिवासी जीवन की त्रासदी के साथ प्रकृति के प्रति उनके आत्मीय संबधों पर प्रकाश डाला है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' और **'गायब होता देश'** दोनों रणेंद्र के उपन्यास हैं जो आदिवासी इलाके में हो रहे विकास के आतंक और उसके परिणामों पर फोकस करते हैं। **'ग्लोबल गाँव के देवता'** के केंद्र में असुर समुदाय की त्रासदपूर्ण जिंदगी है जिसका हेतु विकास की क्रूरता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सरकार की छाया में आदिवासी के साथ अन्याय करती हैं, जमीन को हड़प लेती हैं और उनके जीवन की तबाही भी करती हैं। आदिवासी मिट्टी को खोदना नहीं, सतह पर खेती करके प्रकृति के साथ सहजीविता पर विश्वास रखते थे। लेकिन ग्लोबल गाँव के देवताओं की आँखें मिट्टी के भीतर स्थित संसाधनों पर रहीं, धरती के अंदर के अयस्क, बाक्साइट आदि को लूटने की ताक

में रही हैं। उन्होंने पीढ़ी–दर–पीढ़ी जमीन की रखवाली करते आदिवासी को जमीन से बेदखल किया। साथ ही उन्होंने आदिवासी के जीवन को बुलडोजर, टिप्पर–टोरस की आवाज एवं धूल, सड़क–रेल तथा यातायात के निर्माण आदि से दूभर बना दिया है। पर्यावरण बदलने लगा जिसके परिणामस्वरूप भूख, बीमारी, पेयजल एवं शुद्ध हवा का अभाव अपनी हद पार चुका। नदी–नाले सूखने लगे, खेती उजड़ने लगी और शोषण बरकरार रहा। **'ग्लोबल गाँव के देवता'** को और विस्तार देता है **'गायब होता देश'**। इसमें विकास के नाम पर हो रहे विकास के आतंक का चित्र है। शहर के लिए बिजली और पानी प्रदान करने के लिए बांध का निर्माण और बांध के पानी में जंगल और जमीन डूब जाते हैं। विकास के आतंक की ओर आरंभ में ही लेखक पाठकों को ले जाते हैं। "उसने बंदरगाह बनाने, रेल की पटरियाँ बिछाने, फ़र्नीचर बनाने, मकान बनाने के लिए अंधाधुंध कटाई शुरू की। मरांग बुरू–बोंगा की छाती की हर अमूल्य निधि, धातु–अयस्क उसे आज ही, अभी ही चाहिए। नहीं तो उसे पिछड़ जाने का भय था। वे दौड़ में अपनी परछाइयों से प्रतिद्वंद्विता कर रहे थे। उनकी राक्षसी भूख पल–पल बढ़ती जा रही थी। एक ख़ास बात थी, जो जितना ज्यादा समझदार था वह आसमान में उतना ऊँचा उड़ रहा था। इन्हीं ज़रूरत से ज्यादा समझदार इंसानों की अंधाधुंध उड़ान के उठे गुबार–बवंडर में सोना लेकन दिसुम(सोने जैसा देश) गायब होता जा रहा था। सरना वनस्पति जगत गायब हुआ, मरांग–बुरु बोंगा, पहाड़ देवता गायब हुए, गीत गाने वाली, धीमे बहने वाली, सोने की चमक बिखेरने वाली, हीरों से भरी सारी नदियाँ जिनमें इकिर बोंगा–जल देवता का वास था, ग़ायब हो गई। मुंडाओं के बेटे–बेटियाँ गायब होने शुरू हो गए। सोना लेकन दिसुम ग़ायब होने वाले देश में तब्दील हो गया।" (पृष्ठ–8) सोना लेकन दिसुम को कांक्रीट जंगल में बदल दिया गया। प्राकृतिक संपदा को हथियाने की होड़ में अब वहाँ शुद्ध हवा तक दुर्लभ हो गई है। वहाँ के आदिवासी लोग जीवन में पेड़ों का महत्व जानते हैं। उपन्यास बताता है "लेमुरियन को अपनी धरती माँ से बहुत लगाव था।

वे पेड़ों की तब भी पूजा करते थे। सारजोम–साखू तब भी सरना में पूजे जाते थे क्योंकि उनका पूर्वजों से, लाखों वर्षों से अर्जित ज्ञान यह बतलाता था कि अगर वनस्पतियाँ नहीं होती, यदि एक कोशिका की काई–कवच से लेकर अरबों कोशिकाओं के सारजोम नहीं होते, तो यह धरती जीवों के लिए नहीं होती। ऑक्सीजन युक्त जीवमंडल ही नहीं होता। प्राणवायु का उत्सर्जन तो एकमात्र वनस्पतियाँ ही करती हैं जिनके कारण अमीबा से लेकर गोंडवाना काल के डायनासोर तक विकसित हो सके।"(वही,पृष्ठ–133) आज जंगल का पोषण करके ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ा देने की जगह ऑक्सीजन सिलेंडर का निर्माण कर रहे हैं। प्रकृति को विज्ञान द्वारा स्थानापन्न करने की रीति आदिवासी को पचती नहीं है। बाजार और मुनाफे के धक्के से आज आदिवासी टिक नहीं पाते हैं, इस सच्चाई को भी उपन्यास स्थान देता है।

मरंग गोड़ा झारखंड के एक गाँव का नाम है। प्रस्तुत गाँव कैसे नीलकंठ हो गया इसका बयान महुआ माजी का उपन्यास **'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ'** करता है। दुनिया को विषमय होने से बचाने के लिए शिव समुद्र मंथन के समय उभर आए विष का पान करते हैं, और विष से गला नीला पड़ने के कारण शिव को नीलकंठ नाम मिला। इस तरह अयस्क एवं यूरेनियम खनन से उभरे विकिरण एवं प्रदूषण को मरंग गोड़ा गाँव ने अपने में समेट लिया और उसका वातावरण नीलमय हो गया। पर्यावरण प्रदूषण को ही केंद्र में रखकर लिखा गया हिंदी का एकमात्र उपन्यास शायद यही है। इस तरह मलयालम उपन्यास 'एनमकजे' एंड़ोसल्फान कीटनाशक के शिकारों के गाँव एनमकजे का त्रासद बयान है। झारखंड के सिंहभूम के मरंग गोड़ा, सारंडा जैसे आदिवासी गाँवों में हो रहे प्रकृति के अंधाधुंध दोहन से वहाँ के लोगों के जीवन पर छाए अंधेरे को उपन्यास व्यक्त करता है। मरंग गोड़ा में मौजूद यूरेनियम पर खदान कंपनियों की दृष्टि पड़ी और वहाँ से यूरेनियम तथा सारंडा से अयस्क खनन भी शुरू हुए। इसके लिए बड़ी मात्रा में जंगल काटे गए, आदिवासियों के खेत–खलिहान उजाड़ दिए

गए और घर–परिवार को बेदखल कर दिया गया। यूरेनियम खनन के विकिरण एवं प्रदूषण से मरंग गोड़ा का पर्यावरण इतना विषलिप्त हो गया कि कई तरह के रोग फूटने और फैलने लगे। ऐसे शिकारों की कारुणिक, डरावनी एवं अचंभित करने वाली स्थिति को देखिए। "पेट या गर्दन में बड़ी–बड़ी गांठें लिए घूमते बच्चे ... डगमगाते कदमों से चलते वीभत्स दानों से पटे शरीर वाले नंगे शिशु ... हाथ या पाँव में पाँच पाँच की जगह एक दो या सात आठ उंगलियों वाले मासूम ... टेढ़े मेढ़े टहनीनुमा पैरों का ढाँचा लिए धूल, मिट्टी, कादो में घिसटते विकलांग ... मरंग गोड़ा में राह चलते जहाँ–तहाँ दिख जाते थे। वह जब–जब मरंग गोड़ा जाता, किसी न किसी बच्चे की मौत की सूचना तो मिलती ही, अक्सर किसी ऐसे चाचा–चाची, भैया–भाभी, दादा–दादी वगैरह की मौत के बारे में भी पता चलता जिसने एक लंबे समय से खाँसते–खाँसते खून की उल्टी करते हुए बिस्तर पकड़ रखा था।"(पृष्ठ–119–120) इसके समान दृश्य एनमकजे गाँव में भी देख सकते हैं। ऐसे दृश्य के लिए विकराल, भयानक, वीभत्स जैसे शब्दों का विशेषण अपर्याप्त है, लेकिन और कोई शब्द शायद उपलब्ध नहीं है। यहाँ विकास के पैशाचिक रूप का चित्र लेखिका ने खींच लिया है। इसे विकास कहना कहाँ तक समीचीन है? लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि राजनीतिक पार्टियाँ, शासन–प्रशासन, मुख्यधारा समाज, पूंजीवादी समाज, उनके ठेकेदार तथा जनतंत्र का मीडिया तक इसे विकास ही कहते हैं, और चारों ओर से विकास की माँग भी करते रहते हैं। यह विकास है तो किसका विकास है? उपन्यास में प्रज्ञा की टिप्पणी है 'विकास की कीमत तो देनी ही पड़ती है एक न एक दिन!' इस पर चारिबा के भीतर के दुख एवं खीझ लावा की तरह फूटने लगा –. "किसका विकास? कैसा विकास? हमारी ये धरती लोहे के रूप में सोना उगलती है। फिर भी हमारे लोग इतने गरीब? ऊँची पहाड़ियों पर स्थित लौह अयस्क की खदानों और मिलों से बरसात में लाल पानी बहकर वर्षों से हमारे खेतों को बरबाद कर रहा है। प्रदूषण की वजह से इन इलाकों के लोगों की औसत आयु इतनी कम हो गई है। उसका

खामियाजा कौन देगा हमें? हमारी इस धरती का लोहा तो निकलकर चला जाता है देश विदेश के कल कारखानों में ... दूसरों को समृद्ध करने। हमारे लोगों को क्या मिलता है? और हमारे वे बदकिस्मत लोग, जिन्हें उजड़ना पड़ा इन खदानों के कारण, उनकी पीड़ा का कोई लेखा–जोखा है किसी के पास?"(पृष्ठ–317) यूरेनियम के खतरे से ग्रामीण अशिक्षित आदिवासी अनभिज्ञ थे। उसके विकिरण से जीव–जंतुओं पर, प्रकृति पर इतनी घातक क्षति पहुँचती है, इसकी कल्पना तक वे नहीं कर सकते थे। इसकी जानकारी कंपनी ने नहीं दी थी और न सरकार ने दी थी। कोशिकाओं में जैनेटिक–विघ्न यानी म्यूटेशन की कारक रेडियोधर्मी किरणों को उत्पन्न करने वाली यूरेनियम कई रोगों का हेतु तथा मृत्यु का कारण भी है। यूरेनियम को शुद्ध करने के लिए बड़ी मात्रा में तेजाब का उपयोग भी किया जा रहा था, तेजाब से पर्यावरण बिगड़ जाता है, मनुष्य और प्रकृति इसके प्रहार से परेशान होते थे। सीधे यूरेनियम और अयस्क खनन के द्वारा आदिवासी जीवन की तबाही करती ताकतें दूसरी तरफ़ से उनके पर्यावरण का भी सर्वनाश करती थीं। ऑर्गेनिक पेड़–पौधों को काटकर अकेशिया, युकाली जैसे पेड़ों को वनीकरण के नाम पर लगा देती थीं। इससे मिट्टी की उर्वरता मिट जाती है, पानी भी सूख जाता है। इसके अलावा पेड़–पौधों पर आधारित आदिवासी संस्कृति का भी नाश होता रहा, निरीह ग्रामीण आदिवासी इन सबके साक्षी भर रहे। यूरेनियम, तेजाब आदि से मिट्टी और पानी मात्र नहीं, हवा भी बुरी तरह प्रदूषित होती है। ग्रामीण सगेन की प्रतिक्रिया देखिए – सगेन ने अफसोस भरे स्वर में कहा, "यूरेनियम खदानों ने हमारी बहुमूल्य संपत्ति छीन ली है हमसे। अब हमारे पास खोने के लिए कुछ नहीं बचा है। हम आदिवासियों के पास तो संपत्ति के नाम पर होती है शुद्ध हवा, हरे–भरे स्वस्थ पेड़, स्वच्छ पानी, जंगलों से ढँके पहाड़, पंछी, जानवर, जंगली फूलों से लदे पेड़ ...। अब सब खत्म हो रहे हैं। इनके साथ–साथ हमारी संस्कृति भी नष्ट हो रही है।"(पृष्ठ–192) कहने का मतलब यह है कि खदान ने प्रकृति, मिट्टी और मनुष्य की तबाही मचा दी है।

अलका सरावगी अपने उपन्यासों में बिगड़ते पर्यावरण को लेकर चिंतित दिखाई देती हैं। दूसरे महायुद्ध के भयानक परिणामों से विश्व–जनता वाकिफ़ है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध की कहानी **'क्लॉड ईथरली'** का स्मरण करना भी संगत होगा। अलका सरावगी के दो उपन्यास **'कलि–कथाः वाया बाइपास'** और **'शेष कादम्बरी'** का उल्लेख भी यहाँ करना चाहूँगा। उपन्यासकार पर्यावरण के बिगड़ने के मुद्दे को किशोर बाबू के जीवन में आए परिवर्तन से जोड़कर अपनी खिलंदड़ा शैली में बताती हैं .''अचानक संसार में प्रकृति के पाँचों तत्व मिट्टी, जल, आग, आकाश और हवा–गड़बड़ा गए और इसका प्रभाव सबसे पहले दुनिया के सबसे ताकतवर देश में दिखाई पड़ा।" (कलि–कथा, पृष्ठ–214) यह सर्वविदित है कि अमेरिका के औद्योगिक इलाकों की धरती बंजर हो गई है, वहाँ पेयजल दुर्लभ हो गया है, वहाँ से लोग विस्थापन करने के लिए मजबूर हो गए हैं। यह भी सच है कि ऐसे इलाके में कोई सफेद रंग के आदमी नहीं रह रहे हैं। औद्योगिक सभ्यता की चरम सीमा पर पहुँचे अमेरिका के बारे में वे आगे बताती हैं "दुनिया के सबसे ताकवर देश में अचानक सारे पेड़–पौधे मरने लगे इस तरह जैसे धरती के अंदर किसी ने जहर घोल दिया हो। हवा में आक्सीजन की इतनी कमी हो गई कि लोगों के लिए सांस खींचना दुष्कर होने लगा।"(वही,पृष्ठ–214) हमारे देश की राजधानी तथा अन्य महानगरों की हालत क्या इससे भिन्न है? फिर भी हम खेत में भूसा जलाते किसानों पर इल्जाम लगाकर खुद आश्वस्त रहते हैं। आगे 'दुनिया के सारे देशों में पेट्रोल से चलने वाली हर चीज तुरंत बंद कर दी गई क्योंकि पृथ्वी के चाँद की तरह हवारहित बन जाने के पीछे सबसे बड़ा खतरा पेट्रोल–डीजल–गैस और कोयले से चलने वाली चीजों का था। बिजली का उत्पादन एकदम रोक दिया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि सारे कल–कारखाने रुक गए। खासकर खाद बनानेवाले और रसायन बनानेवाले कारखानों को तुरंत बंद करने के आदेश विश्व की सरकारों ने जारी किए। मोटरगाड़ियाँ बेकार हो गईं। (वही, पृष्ठ–214) निष्कर्ष के रूप में उपन्यास बताता है कि "पृथ्वी को

बचाने का अब एक ही तरीका था कि आदमी का श्रम सारी मशीनों की जगह ले और यह श्रम अधिक–से–अधिक हरियाली के उत्पादन में लगे ––ऐसी हरियाली जिसमें किसी तरह के रसायन का प्रयोग न हो। अब पेड़–पौधों से उत्पन्न होनेवाली आक्सीजन ही इस पृथ्वी को बचा सकती थी।" इस संदर्भ में गांधी के सभ्यता दर्शन ('हिंद स्वराज' का छठा अध्याय) को ध्यान में रखना उचित होगा। उपन्यास यह भी बताता है कि अब लोग समझ गए कि ये ही इस दुर्घटना का गुनहगार हैं। इसी के साथ उपन्यास पुनः किशोर बाबू, शांतनु राय और अमोलक के पुनर्मिलन के संदर्भ/दृश्य को जोड़ देता है। बड़ी–बड़ी गाड़ियों में यात्रा करते ऐशोआराम का जीवन बिताते किशोर बाबू पैदल और शांतनु राय अपनी पुरानी घोड़ा गाड़ी में पहुँचते हैं, और सदैव पैदल चलने वाला अमोलक भी। प्राकृतिक संपदा के अनियंत्रित उपभोग में डूबी पुरानी पीढ़ी अपनी गलतियों को कबूल करते हुए इस समस्या की भयावहता को समझने लगी है। 'शेष कादंबरी' औद्योगिक सभ्यता में पली–बड़ी अभिजात सभ्यता के मनुष्य के अज्ञान व दोगलेपन पर सवाल करता है। उक्त अभिजात(रूबी गुप्ता) की कल्पना एवं साहित्य में कदंब का पेड़ है और गोल्डन औरियोल है, लेकिन अपने घर के आंगन में स्थित कदंब वृक्ष को और उस पर बैठकर कूकती सोनपाखी तथा अन्य पक्षी से वह बिलकुल अपरिचित रहती है। इसलिए सुमिरन बाबू को आखिर पूछना पड़ता है कि "आपके यहाँ यह कदम्ब का पुराना पेड़ है न, इसीलिए इतनी चिड़िया इस पर बैठने आती हैं।''(शेष कादंबरी, पृष्ठ–124) राजस्थान से व्यापार के लिए कलकत्ता पहुँचे मारवाड़ियों के पास धन–दौलत है, सभ्यता में डूबने का तरीका भी। लेकिन उनके भीतर हरी–भरी धरती, कदंब का पेड़ या सोनपाखी जैसी चिड़िया नहीं है। इस तरह **'एक ब्रेक के बाद'** उपन्यास के गुरु का गायब होना आदि भी उल्लेखनीय प्रसंग है। यहाँ लेखिका पर्यावरण को आधुनिक सभ्यता के साथ जोड़कर ही देखती हैं।

इसके अलावा **डूब** (वीरेंद्र जैन), **पानी भीतर फूल** (एकांत श्रीवास्तव), **आदिग्राम उपाख्यान** (कुणाल सिंह), **आखिरी छलांग** (शिवमूर्ति), **बस्तर बस्तर** (लोकबाबू) आदि कई उपन्यास विस्थापन,

खनन, औद्योगिकीकरण, पारिस्थितिक असंतुलन जैसे मुद्दों से मुखातिब होते हैं। सबकी चर्चा यहाँ मुमकिन नहीं है।

प्रकृति–पर्यावरण–पारिस्थितिकी का मुद्दा बहुत ही गंभीर है। उक्त मुद्दे पर संवाद व बहस नहीं हो रही है, जितनी होनी चाहिए। उसी तरह उस पर क्रिया–प्रतिक्रिया भी उचित ढंग से नहीं हो रही है, यह दुख की बात है। यहाँ समस्या के कारणों व स्रोतों की सही पड़ताल नहीं हो रही है उसकी भयंकर स्थिति की नहीं, बल्कि आने वाली विकराल स्थिति की भी नहीं, सिर्फ़ मरहम–पट्टी बांधने का काम मात्र हो रहा है। व्यक्तिगत स्वार्थ एवं मुनाफे के आगे समाज और देश उपेक्षित रहे, यही इस रवैये का कारण होगा। इसलिए हमने समग्रता के साथ जाँच करने के बजाय विभिन्न गुट व इलाके की समस्या के रूप में देखने का प्रयास किया। पहले इसे औद्योगिक इलाके (Industrial Area) तक सीमित करके देखा। ऐसी जगहों के पेड़–पौधे, हरियाली सूख रही है, नदी–नाले का पानी प्रदूषित हो रहा है, मछलियाँ मर जाती हैं, तो कहीं दूर से नली द्वारा पेयजल पहुँचाने का बंदोबस्त हो रहा है। वहाँ के निवासी खांसी की बीमारी से पीड़ित होने लगे हैं तो E S I अस्पताल खोले गए। उसी तरह कई तरह के खनन, पेड़ों की सफाई तथा बड़े–बड़े बांध व बिजली परियोजना तथा प्लांटेशन के जरिए आदिवासी जीवन को बरबाद कर दिया तो उसे जंगली मनुष्य, जो नक्सलियों के जाल में फँस गए हैं, जैसी समस्या के रूप में देखने का बहाना ढूँढ लिया गया। हरित क्रांति और एक मसला है। खेती का व्यवसायीकरण –औद्योगिकीकरण शुरू किया गया। उत्पादन बढ़ गया पर कीटनाशक (डीडीटी, एनड्रीन, परामर, एंड़ोसलफान आदि) और रासायनिक उर्वरों के प्रयोग के कारण एक ओर मिट्टी बंजर होने लगी, तो दूसरी ओर उसका भी भीषण परिणाम (कई तरह के रोग) सामने आने लगा। **एनमकजे** (मलयालम उपन्यास) और **कैंसर ट्रेन** (पंजाबी उपन्यास) इसका त्रासद चेहरा दिखाते हैं। क्या मुआवजे से किसी समस्या का समाधान निकाला जा सकता है? अब कृत्रिम मेधा और रोबोट का दौर है जिस पर हम गंभीरता से सवाल नहीं उठाते।

अब भी हम शक्तिशाली की उत्तरजीविता को ध्यान में रखकर कदम नही उठाते हैं, निर्बलों की उत्तरजीविता हमारा सरदर्द ही नहीं है। निर्बलों के हाथ में पूंजी नहीं है, मीडिया नहीं है, अधिकार एवं अधिकारी को काबू में रखने का तंत्र भी नहीं है।

समस्या को समग्रता से समझने और उस पर कार्यवाही लेने के लिए वृहत् परिप्रेक्ष्य में विचार करने की जरूरत है। गांधी ने कहा था कि "चमकीली सतह, भौतिक आकर्षण और पागलों की उत्तेजना भरी भागदौड़ के बावजूद आधुनिक सभ्यता मनुष्य की जरूरतों और बेहतर जीवन की कामना के मार्ग में सहायक सिद्ध होने के बजाय, बाधक ही थी।"(पृष्ठ 38, नव सभ्यता विमर्शः हिंद स्वराज, वीरेंद्रकुमार बरनवाल) औद्योगिक क्रांति के साथ आधुनिक सभ्यता का भी उदय हो रहा था। तब लियो टॉलस्टॉय ने कहा था कि इस सभ्यता में मनुष्यता का अभाव है। टॉलस्टॉय और रस्किन के इसी चश्मे से गांधी ने भी आधुनिक औद्योगिक सभ्यता को देखने की कोशिश की थी। लेकिन आज भी हम इस समस्या को शहरी जीवन की, आदिवासी की, ईंधन के बढ़ते उपयोग की समस्या के रूप में, विभिन्न खानों में बाँटकर देखना चाहते हैं। इससे असली गुनहगार बच जाता है, हम एक झुटपुटे में खोजबीन जारी रखते हैं। पूरे देश एवं संसार की समस्या के रूप में एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य के भीतर देखने—समझने तथा उसको लेकर कदम उठाने पर ही हमारा लक्ष्य साकार होगा। इस ओर उपन्यास हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। मजे की बात यह है कि औद्योगिक सभ्यता को, उसकी मुनाफे की नीति को नियंत्रित करना हम नहीं चाहते हैं। भविष्य को सुरक्षित रखने का सही रास्ता टिकाऊ विकास को अपनाना होगा जहाँ पूंजीपति, सत्ता, दलाल, ओझा आदि के हथकंडों पर नियंत्रण करना अनिवार्य है जिसके लिए आधुनिक औद्योगिक सभ्यता और उसके पॉपुलर कल्चर के रास्ते को तजना होगा।

भारत में ईको टूरिज्म

डॉ. दीपक कोहली

पर्यटन आज दुनिया का सबसे बड़ा उद्योग है और पर्यावरण–पर्यटन (ईको टूरिज्म) उद्योग का सबसे तेजी से बढ़ने वाला हिस्सा है। समूचे विकासशील उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में संरक्षित क्षेत्र प्रबंधकों और स्थानीय समुदायों को आर्थिक विकास और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता के बीच संतुलन कायम करने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। पर्यावरण–पर्यटन(ईको टूरिज्म) भी इस महत्वपूर्ण संतुलन का एक पक्ष है। सुनियोजित पर्यावरण–पर्यटन से संरक्षित क्षेत्रों और उनके आस–पास रहने वाले समुदायों को लाभ पहुँचाया जा सकता है। सामान्य शब्दों में पर्यावरण–पर्यटन या इको टूरिज्म का अर्थ है पर्यटन और प्रकृति संरक्षण का प्रबंध इस ढंग से करना कि एक तरफ पर्यटन और पारिस्थितिकी की आवश्यकताएँ पूरी हों और दूसरी तरफ स्थानीय समुदायों के लिए रोजगार– नए कौशल, आय और महिलाओं के लिए बेहतर स्तर सुनिश्चित किया जा सके। अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण–पर्यटन वर्ष हमें विश्व स्तर पर पर्यावरण–पर्यटन की समीक्षा का अवसर प्रदान करता है ताकि भविष्य में इसका स्थायी विकास सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त साधनों और संस्थागत ढाँचे को मजबूत किया जा सके। इसका अर्थ है कि पर्यावरण–पर्यटन की खामियों और इसके नकारात्मक प्रभाव दूर करते हुए इससे अधिकतम आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक लाभ प्राप्त किए जा सकें।

भारत एक ऐसा देश है जो पूरी तरह से प्राकृतिक संपदा से संपन्न है। यहाँ नदीं, पहाड़, झरने, रेगिस्तान, एवं जंगल इत्यादि सभी कुछ है जो इसे विविधताओं में एकता वाला राष्ट्र बनाते हैं। भारत में

प्रकृति से जुड़े कई पर्यटन स्थल हैं जो ना केवल आपको प्रकृति के करीब ले जाने में मदद करते हैं बल्कि प्रकृति की विविधता और उसके सृजन को भी परिभाषित करते हैं। पर्यावरण पर्यटन प्रकृति से जुड़ा पर्यटन है जिसमें आप देश की संस्कृति, सभ्यता के साथ विभिन्न जीव–जंतुओं के बारे में भी जान पाते हैं।

पर्यावरण पर्यटन(ईको टूरिज्म) के लिए भारत में कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उद्यानों में कॉर्बेट नेशनल पार्क (उत्तराखंड), बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान (मध्य प्रदेश), कान्हा राष्ट्रीय उद्यान (मध्य प्रदेश), गिर राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य (गुजरात) और रणथंभौर राष्ट्रीय उद्यान (राजस्थान), गलगीबागा बीच, गोवा, टयडा आंध्रप्रदेश, चिल्का झील, ओडिशा, सुंदरवन नेशनल पार्क, पश्चिम बंगाल, काज़ीरंगा नेशनल पार्क असम, कंचनजंगा जैवमंडल रिज़र्व सिक्किम, ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क हिमाचल प्रदेश इत्यादि शामिल हैं। इको–टूरिज्म की अवधारणा भारत में अपेक्षाकृत नई है। हालाँकि, हाल के वर्षों में यह तेजी से बढ़ रहा है और अधिक से अधिक लोग अब इस धारणा से अवगत हो रहे हैं। जागरूकता फैलाने के लिए भारत सरकार ने देश में पर्यटन और संस्कृति मंत्रालय में पारिस्थितिक पर्यटन को लेकर विभाग भी स्थापित किया है। भारत में पर्यावरण लुप्त होने की कगार पर आ गया है जिसके लिए आज भारत वन्यजीव अभयारण्यों और संरक्षण सहित कई कानून बनाए गए हैं। जानवरों और पौधों के अधिकारों के लिए लड़ने के लिए कई संगठन बनाए जा रहे हैं। नाजुक हिमालयी पारिस्थितिक तंत्र और आदिवासी लोगों की संस्कृति और विरासत को संरक्षित करने के लिए कई जागरूक प्रयास किए गए हैं। इसके अलावा, छुट्टियों के शिविर (होटल आवास के बजाय) यात्रियों के बीच बहुत अधिक प्रचलित हो रहे हैं। केरल में हाउसबोट, विथिरी के पेड़ के घर और कर्नाटक के जंगलों में गहरे घोंसले रिसॉर्ट्स आवास के लिए पर्यटकों के बीच बहुत लोकप्रिय हो रहे हैं। इसके अलावा, उन लोगों के लिए ट्रैवल कंपनियों द्वारा कई ग्रीन टूर भी पेश किए जाते हैं जो प्रकृति का सर्वोत्तम अनुभव करना चाहते हैं।

तिरुवनंतपुरम से लगभग 72 किलोमीटर की दूरी पर स्थित तनमाला भारत का पहला नियोजित पारिस्थितिक पर्यटन स्थान है। सुंदर पश्चिमी घाटों और शेन्दुरुनी वन्यजीव अभयारण्य के सुंदर जंगलों से घिरा हुआ तनमाला अपनी एक तरह विशेष जैव–विविधता क्षेत्र के लिए जाना जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ हनी हिल्स है। तनमाला भारत में एक लोकप्रिय पारिस्थितिक पर्यटन स्थल बन गया है। यह एक साहसिक पार्क समेत अद्भुत मनोरंजन आकर्षण के लिए अच्छी तरह से प्रशिक्षित कर्मचारियों और अविश्वसनीय सूचना सुविधाओं से लैस है। यह तीन प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित है – अवकाश क्षेत्र, साहसिक क्षेत्र और संस्कृति क्षेत्र। प्रत्येक क्षेत्र विशेष विषय के अनुसार डिजाइन किया गया। यहाँ पर कई रिसॉर्ट्स भी स्थित हैं जहाँ आगंतुक शांतिपूर्वक रह सकते हैं।

महाराष्ट्र में स्थित अजंता और एलोरा की गुफाएँ सबसे प्राचीन पर्यावरणीय पर्यटन स्थल हैं। यह सबसे लोकप्रिय पर्यटक आकर्षणों में से एक है खासकर यदि आप एक वास्तुकला प्रेमी हैं। सांस्कृतिक सौंदर्य और धार्मिक इतिहास में आपकी रुचि है तो यह जगह बिल्कुल आप ही के लिए है। यहाँ की गुफाएँ सुंदर और उत्तम दीवार चित्रों और कलाओं का घर हैं जो बुद्ध और हिंदू धर्म के जीवन पर आधारित हैं। ये गुफाएँ महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में स्थित हैं। बड़े–बड़े पहाड़ और चट्टानों को काटकर बनाई गई ये गुफाएँ भारतीय कारीगरी और वास्तुकला का बेहतरीन नमूना है। अजंता की गुफाओं में ज्यादातर दीवारों पर की गई नक्काशी बौद्ध धर्म से जुड़ी हुई है, जबकि एलोरा की गुफाओं में मौजूद वास्तुकला और मूर्तियाँ तीन अलग–अलग धर्मों से जुड़ी हैं। ये बौद्ध धर्म, जैन धर्म और हिंदू धर्म के प्रतीक हैं। अजंता एक दो नहीं बल्कि पूरी 30 गुफाओं का समूह है जिसे घोड़े की नाल के आकार में पहाड़ों को काटकर बनाया गया है और इसके सामने से बहती है एक संकरी–सी नदी जिसका नाम वाघोरा है। एलोरा की गुफाओं में 34 मोनैस्ट्रीज और मंदिर हैं जो पहाड़ के किनारे पर करीब 2 किलोमीटर के हिस्से में फैले हुए हैं। इन गुफाओं का निर्माण 5वीं

और 10वीं शताब्दी के बीच किया गया था। एलोरा की गुफाएँ पहाड़ों और चट्टानों को काटकर बनाई गई वास्तुकला का सबसे बेहतरीन उदाहरण हैं। धार्मिक चित्रों, मूर्तियों और गुफाओं की प्राकृतिक सुंदरता पर्यावरण प्रेमी आगंतुकों को उस समय की मौजूद संस्कृतियों की गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह 572 छोटे द्वीपों का एक समूह है जो अपने निर्वासित जंगलों, स्पष्ट जल और सदाबहार पेड़ों के लिए जाने जाते हैं। चूँकि वे अन्य देशों के नजदीक स्थित हैं, इसलिए द्वीप विभिन्न वनस्पतियों और जीवों की एक विस्तृत श्रृंखला का एक घर हैं। पर्यावरण पर्यटकों के लिए इस द्वीप के पास बहुत कुछ है। एक शांत वातावरण, स्वच्छ हवा, सुंदर जंगल और एक समृद्ध समुद्र के साथ, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह पर्यावरण पर्यटन के लिए सबसे पसंदीदा स्थानों में से एक बन गया हैं। आगंतुक घोर वर्षावन के माध्यम से स्नॉर्कलिंग, स्कूबा डाइविंग, ट्रैकिंग और लंबी पैदल यात्रा जैसी गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला का आनंद ले सकते हैं। रेत की मुख्य भूमि से अलग यह जगह तैरते एम्राल्ड द्वीपों और चट्टानों का समूह है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह नारियल और खजूर की सीमा वाले, पारदर्शी पानी वाले, आकर्षक और खूबसूरत समुद्री तटों और उसके पानी के नीचे कोरल और अन्य समुद्री जीवन के लिए मशहूर है। यहाँ की प्रदूषणरहित हवा, पौधों और जानवरों की नायाब प्रजातियों की मौजूदगी की वजह से इस जगह से प्यार हो जाता है।

'नंदा देवी' और 'फूलों की घाटी' राष्ट्रीय उद्यान हिमालय में एक अविश्वसनीय जैव विविधता के साथ असाधारण रूप से सुंदर पार्क हैं। भारत के दूसरे सबसे ऊँचे पर्वत नंदा देवी का प्रभुत्व, नंदा देवी राष्ट्रीय उद्यान अपने निर्बाध पर्वत जंगल के लिए जाना जाता है और सुंदर ग्लेशियर और अल्पाइन मीडोज़ के पक्ष में है। राष्ट्रीय उद्यान के तौर पर 'नंदा देवी राष्ट्रीय उद्यान' की स्थापना 1982 में हुई थी। यह उत्तरी भारत में उत्तराखंड राज्य में नंदा देवी की चोटी (7816 मी) पर स्थित है। वर्ष 1988 में यूनेस्को ने इसे विश्व धरोहर स्थल की सूची में शामिल

किया था। फूलों की घाटी दुर्लभ प्रजातियों के लिए जानी जाती है। फूलों का एक शानदार क्षेत्र यहाँ देखने को मिलता है। इस उद्यान में 17 दुर्लभ प्रजातियों समेत फूलों की कुल 312 प्रजातियाँ हैं। देवदार, सन्टी/ सनौबर, रोडोडेंड्रन (बुरांस) और जुनिपर यहाँ की मुख्य वनस्पतियाँ हैं। नंदा देवी राष्ट्रीय पार्क में आकर पर्यटक, हिम तेंदुआ, हिमालयन काला भालू, सिरो, भूरा भालू, रूबी थ्रोट, भरल, लंगूर, ग्रोसबिक्सम, हिमालय कस्तूरी मृग और हिमालय तहर को देख सकते हैं। इस राष्ट्रीय पार्क में लगभग 100 प्रजातियों की चिड़ियों का प्राकृतिक आवास है। यहाँ आमतौर पर देखी जाने वाली चिड़ियाँ औरेंज लैंक्डप बुश रॉबिन, ब्लू फ्रांटेड रेड स्टौर्ट, येलो बिल्ला इड फेनटेल लाईकैचर, इंडियन ट्री पिपिट और विनासियास ब्रेस्टेड पिपिट हैं।

राजस्थान के भरतपुर में स्थित 'केवलादेव नेशनल पार्क' मानव निर्मित आर्द्रभूमि है और भारत में सबसे प्रसिद्ध अभयारण्यों में से एक है जो पक्षियों की हजारों प्रजातियाँ का घर है। इस राष्ट्रीय उद्यान में 379 से अधिक पुष्प प्रजातियाँ, 366 पक्षी प्रजातियाँ, मछली की 50 प्रजातियाँ, छिपकलियों की 5 प्रजातियाँ, 13 साँप प्रजातियाँ, 7 कछुआ प्रजातियाँ और 7 उभयचर प्रजातियाँ हैं। 'केवलादेव नेशनल पार्क' देश के सबसे अमीर पक्षी विहारों में में से एक है, खासकर सर्दियों के महीनों के दौरान यहाँ देश–विदेशी पक्षियों का जमावड़ा लगता है। पार्क में कई किफायती आवास विकल्प उपलब्ध हैं और इसे पूरी तरह से तलाशने का सबसे अच्छा तरीका पैर, बाइक या रिक्शा है। यह सभी पर्यावरण–पर्यटकों और पक्षी प्रेमियों के लिए एक जरूरी जगह है। पहले यह भरतपुर पक्षी विहार के नाम से जाना जाता था। इस पक्षी विहार में हजारों की संख्या में दुर्लभ और विलुप्त जाति के पक्षी पाए जाते हैं, जैसे साइबेरिया से आए सारस जो यहाँ सर्दियों के मौसम में आते हैं। 1985 में इसे यूनेस्को की विश्व विरासत भी घोषित कर दिया गया था। मानसून के मौसम में देश के प्रत्येक भागों से पक्षियों के झुंड

यहाँ आते हैं। पानी में पाए जाने वाले कुछ पक्षी जैसे सिर पर पट्टी और ग्रे रंग के पैरों वाली बतख, कुछ अन्य पक्षी जैसे पिनटेल बतख, सामान्य छोटी बतख, रक्तिम बतख, जंगली बतख, वेगंस, शोवेलेर्स, सामान्य बतख, लाल कलगी वाली बतख और गड्वाल्ल्स यहाँ पाए जाते हैं। केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान में पर्यटक अन्य पक्षी जैसे शाही गिद्ध, मैदानी गिद्ध, पीला भूरा गिद्ध, धब्बेदार गिद्ध, हैरियर गिद्ध और सुस्त गिद्ध देख सकते हैं। पक्षियों के अलावा पर्यटक जानवर जैसे काला हिरन, पायथन, साम्बर, धब्बेदार हिरण और नीलगाय देख सकते हैं।

उत्तरी कर्नाटक में पर्णपाती जंगल के विविध वन्यजीवन से घिरा हुआ दांदेली पर्यटकों को एक अद्वितीय प्राकृतिक सुंदरता प्रदान करता है। यह छोटा आधुनिक शहर रोमांचक वन्यजीव अभ्यारण्य, आरामदायक कयाक सवारी, सफेद पानी राफ्टिंग, नौकायन, पक्षी देखने, रात्रि शिविर, ट्रैकिंग, शांतिपूर्ण पिकनिक, मगरमच्छ और बाघ की खोज और आस–पास की गुफाओं के लिए रोमांचक यात्रा सहित अपने पर्यटकों के लिए कई आकर्षण प्रदान करता है। पश्चिमी घाट के घने पतझड़ जंगलों से घिरा दांदेली दक्षिण भारत के साहसिक क्रीड़ा स्थल के रूप में जाना जाता है। यहाँ पर भौंकने वाले हिरन, साँभर, चित्तीदार हिरन जैसे जंगली जानवरों के साथ–साथ पीले पैर वाले कबूतरों, ग्रेट पाइड हॉर्नबिल, क्रेस्टेड सर्पेन्ट ईगल और पीफाउल जैसे पक्षियों को देख सकते हैं। यहाँ पर पक्षियों की लगभग 200 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिनमें ऐशी स्वालो श्राइक, ड्रॉंगो, ब्राहमिनी काइट, मालाबार हॉर्नबिल और मिनीवेट शामिल हैं।

लक्षद्वीप द्वीप दुनिया में सबसे प्रभावशाली उष्णकटिबंधीय द्वीप प्रणालियों में से हैं। 4200 वर्ग किलोमीटर से अधिक में फैला हुआ लक्षद्वीप 36 द्वीपों का एक छोटा–सा समूह हैं जो समुद्री जीवन से अत्यधिक समृद्ध हैं। चूँकि इन द्वीपों की संस्कृति और पारिस्थितिकता को बेहद नाजुक पारिस्थितिक तंत्र द्वारा समर्थित किया जाता है, इसलिए केंद्रशासित प्रदेश लक्षद्वीप द्वीपसमूह पर्यावरण–पर्यटन के

कारण प्रतिबद्ध हैं। यहाँ पर प्रत्येक द्वीप सुंदरता, समृद्ध समुद्री संपत्ति, रंगीन मूंगा चट्टानों, सुनहरे समुद्र तटों, स्पष्ट जल, अप्रचलित वातावरण के मामले में भिन्न है । लक्षद्वीप का सबसे बड़ा आकर्षण है— प्राचीन सुंदरता और सुकून की जिंदगी। शहरी भाग—दौड़ और व्यस्त दिनचर्या के कोलाहल से दूर, आपको यहाँ सिर्फ समुद्री तटों से टकराती लहरों की आवाज सुनाई देगी। इस द्वीप पर आपको स्कूबा डाइविंग, स्नोर्कलिंग, कयाकिंग, कैनोइंग, विंडसर्फिंग, याच और इसी तरह की कई अन्य रोमांचक गतिविधियाँ मिल जाएंगी।

राजस्थान के अलवर से 37 किलोमीटर दूर स्थित 'सरिस्का टाइगर रिजर्व' भारत में प्रमुख वन्यजीव अभयारण्यों में से एक है। भले ही यह रणथंभौर से बड़ा है, लेकिन यह कम व्यावसायिक है और इसमें विविध वन्यजीवन की एक विस्तृत श्रृंखला है जो इसे पारिस्थितिकीय सहिष्णुता का एक आदर्श उदाहरण बनाती है। एक विशिष्ट पारिस्थितिक तंत्र के साथ, सरिस्का टाइगर रिजर्व अद्वितीय वनस्पतियों और जीवों की कई प्रजातियों का घर है। अरावली पहाड़ियों के संकीर्ण घाटियों और तेज चट्टानों पर स्थित सरिस्का टाइगर रिजर्व का शानदार परिदृश्य पर्णपाती पेड़ों और उत्कृष्ट घास के मैदानों से भरा हुआ है। सरिस्का को वन्य जीव अभ्यारण्य का दर्जा 1955 में मिला और जब प्रोजेक्ट टाइगर की शुरुआत हुई तो 1978 में इसे टाइगर रिजर्व बना दिया गया। कुछ ही सालों बाद इसे राष्ट्रीय पार्क घोषित कर दिया गया। अरावली पर्वत श्रृंखला के बीच स्थित यह अभ्यारण्य बंगाल टाइगर, जंगली बिल्ली, तेंदुआ, धारीदार लकड़बग्घा, सुनहरे सियार, सांभर, नीलगाय, चिंकारा जैसे जानवरों के लिए तो जाना ही जाता है, मोर, मटमैले तीतर, सुनहरे कठफोड़वा, दुर्लभ बटेर जैसे कई पक्षियों का बसेरा भी है। सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान विविध प्रजातियों के जंगली जानवरों—तेंदुए, चीतल, सांभर, नीलगाय, चार सींग वाला हिरण, जंगली सुअर, रीसस मकाक, लंगूर, लकड़बग्घा और जंगली बिल्लियों का शरणस्थल है।

'कॉर्बेट नेशनल पार्क' भारत का पहला राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य है जो टाइगर परियोजना का हिस्सा बन गया है। यह वनस्पति और बड़ी संख्या में बाघों के लिए जाना जाता है, कॉर्बेट नेशनल पार्क 110 पेड़ प्रजातियों, 580 पक्षी प्रजातियों, सरीसृपों की 25 प्रजातियों और 50 स्तनपायी प्रजातियों का घर है। कॉर्बेट नेशनल पार्क वन्यजीव प्रेमियों के लिए एक स्वर्ग है जो प्रकृति की शांत गोद में आराम करना चाहते हैं। पहले यह पार्क (उद्यान) रामगंगा राष्ट्रीय उद्यान के नाम से जाना जाता था परंतु वर्ष 1957 में इसका नाम कॉर्बेट नेशनल पार्क (कॉर्बेट राष्ट्रीय उद्यान) रखा गया। यह भारत में जंगली बाघों की सबसे अधिक आबादी के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध है और जिम कॉर्बेट पार्क लगभग 160 बाघों का आवास है। इस पार्क में दिखाई देने वाले जानवरों में बाघ, चीता, हाथी, हिरण, सांबर, पाढ़ा, बार्किंग हिरन, स्लोथ भालू, जंगली सूअर, घूरल, लंगूर और रेसस बंदर शामिल हैं। इस पार्क में लगभग 600 प्रजातियों के रंगबिरंगे पक्षी रहते हैं जिनमें मोर, तीतर, कबूतर, उल्लू, हॉर्नबिल, बार्बिट, चक्रवाक, मैना, मैगपाई, मिनिवेट, तीतर, चिड़िया, टिट, नॉटहैच, वागटेल, सनबर्ड, बंटिंग, ओरियल, किंगफिशर, ड्रोंगो, कबूतर, कठफोड़वा, बतख, चैती, गिद्ध, सारस, जलकाग, बाज़, बुलबुल और लायकेचर शामिल हैं। इसके अलावा यात्री यहाँ 51 प्रकार की झाड़ियाँ, 30 प्रकार के बाँस और लगभग 110 प्रकार के विभिन्न वृक्ष देख सकते हैं। कॉर्बेट नेशनल पार्क आने वाले पर्यटकों के लिए कोसी नदी राफ्टिंग का अवसर प्रदान करती है।

पर्यावरण–पर्यटन (ईको टूरिज्म) का सिद्धांतों, दिशा–निर्देशों और स्थिरता मानदंडों पर आधारित प्रमाणन की ओर अभिमुख होना इसे पर्यटन क्षेत्र में असाधारण स्थान प्रदान करता है। पहली बार इस धारणा को परिभाषित किए जाने के बाद के वर्षों में पर्यावरण–पर्यटन के अनिवार्य बुनियादी तत्वों के बारे में आम सहमति बनी है। इस प्रकार यह संरक्षित पारिस्थितिकी–प्रणाली पर्यटकों को आकर्षित करती है।

विभिन्न सांस्कृतिक और साहसिक गतिविधियों के दौरान एक कर्तव्यनिष्ठ, कम असर डालने वाला पर्यटक व्यवहार, पुनर्भरण न हो सकने वाले संसाधनों की कम से कम खपत, स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी जो प्रकृति, संस्कृति अपनी जातीय परंपराओं के बारे में पर्यटकों को प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराने में सक्षम होते हैं और अंत में स्थानीय लोगों को पर्यावरण–पर्यटन का प्रबंध करने के अधिकार प्रदान करना ताकि वे जीविका के वैकल्पिक अवसर अपनाकर संरक्षण सुनिश्चित कर सकें तथा पर्यटक और स्थानीय समुदाय–दोनों के लिए शैक्षिक घटक शामिल कर सकें। पर्यावरण–अनुकूल गतिविधि होने के कारण पर्यावरण–पर्यटन(इको टूरिज्म) का लक्ष्य पर्यावरण मूल्यों और शिष्टाचार को प्रोत्साहित करना तथा निर्बाध रूप में प्रकृति का संरक्षण करना है।

पुराण साहित्य में निहित पर्यावरण विज्ञान : एक सैद्धांतिक विश्लेषण

डॉ. कपिल गौतम

विपुल वैज्ञानिक प्रगति, असीमित औद्योगिक विकास, असंख्य उपकरणों के आविष्कार और पर्यावरण के प्रत्येक तत्व का प्रचुर ज्ञान इन सब गर्वोचित उपलब्धियों को अर्जित करके भी आज गंभीर पर्यावरण–विपदाओं से घिरा मानव विकास तथा विज्ञान की दिशा पर पुनर्विचार के लिए विवश हो गया है। आँकड़ों के अनुमान में उलझें या स्वानुभव से सीधा साक्षात्कार करें तो यही ज्ञात होता है कि हमारे अनुपम मनुष्यलोक– हमारी पृथ्वी का भविष्य पर्यावरण–विभीषिका की आशंका से आक्रांत हो गया है और पर्यावरण संरक्षण अब हमारे लिए अस्तित्व–रक्षण का पर्याय बन गया है। वैदिकयुगीन बहुदेववाद, प्राकृतिक तत्त्वों के स्तुति–मंत्र, ऋत–अनृत–व्यवस्था, यज्ञसंस्था एवं तपोवन–संस्कृति; पुराणयुगीन सर्ग–प्रतिसर्ग–परिकल्पना, अवतारवाद, आख्यान–परंपरा, लोकगायत्री तथा तीर्थ–माहात्म्य; रामायण– महाभारत में प्रकृति के साथ मानव–चेतना का ऐक्यभाव; आयुर्वेद एवं स्मृति–ग्रंथों में वर्णित भौतिक एवं नैतिक स्वास्थ्य के विधायक सूत्रों का पर्यावरणीय दृष्टि से विश्लेषण करना अत्यावश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन भारत में पर्यावरण–चिंतन–परंपरा के चरमोत्कर्ष से युक्त पुराण साहित्य पर्यावरण–चिंतन के सूक्ष्म–गहन–पर्यवेक्षण का सर्वाधिक प्रामाणिक एवं परिपूर्ण माध्यम है। पुराणों में आख्यानों, रूपकों, प्रतीकों के माध्यम से पर्यावरण विज्ञान का रोचक प्रस्तुतीकरण किया गया है। पुराणों की प्रतीकात्मकता गूढ़ ज्ञान रहस्यों एवं अमूर्त विषयों को जनसामान्य के लिए सहज–ग्राह्य बनाती है। वैदिक सिद्धांत के अनुरूप विभिन्न

पुराणों में भी समस्त सृष्टि की उत्पत्ति एक ही मूल तत्व से मानी गई है। यह सिद्धांत विश्व की एकात्मता कहलाया। मछली, कछुआ, वराह जैसे क्षुद्र जीवों में ईश्वरावतरण सर्व–जीव समानता का द्योतक है। अवतारवाद की दृष्टि से जीवों में कोई भेद नहीं। दशावतार के क्रम में 'विकासवाद' सिद्धांत सूत्ररूपेण सगुंफित है। पुराणकार वर्तमान वैज्ञानिक युग में ज्ञात भूमिखंडों से सुपरिचित थे। सारी पृथ्वी का भौगोलिक ज्ञान, विभिन्न क्षेत्रों के पर्वत नदी–वन–वृक्ष–सरोवर–सागर आदि का उल्लेख तत्कालीन पर्यावरणीय ज्ञान की व्यापकता का द्योतक है क्योंकि भूगोल–शास्त्र पर्यावरण अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग है। पुराण सत्य, दया, तप, शौच, इंद्रिय–संयम, मन–संयम, उचितानुचित विवेक, अहिंसा, त्याग, संतोष, भोगवृत्ति से विमुखता, अनहंकार, आत्मचिंतन, अन्नादि का प्राणियों में यथोचित विभाजन, सभी प्राणियों में देवता–भाव की अनुभूति को मानव के सामान्य कर्तव्य घोषित करते हैं। पंच–यज्ञादि का विधान पर्यावरण संतुलन का मूलमंत्र है। पुराण मानव को सभी प्रकार के पशु–पक्षी, कीट–सरीसृप आदि के प्रति पुत्रवत् व्यवहार की प्रेरणा प्रदान करते हैं। प्रस्तुत आलेख में अठारह पुराणों में निहित पर्यावरण विज्ञान के सिद्धांतों का विश्लेषण किया गया है।

भयावह पर्यावरण–संकट से जूझता मानव समाज आज ईश–स्तुति के लिए बाध्य हो गया है। मानव जाति के भविष्य पर लगे प्रश्नचिह्न के कारण ही आज पर्यावरण–चेतना जाग्रत हुई है। आधुनिक औद्योगिक युग की देन हैं– भौतिक प्रगति और पारिस्थितिक असंतुलन। इस युग के मानव की बढ़ी हुई भोगलिप्सा लेने के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करती है और देने के नाम पर प्रदूषण के अतिरिक्त कुछ नहीं दे पाती। प्राकृतिक संपदा पर इस दोहरी मार ने विश्व पर्यावरण को जर्जर कर डाला है। उच्छृंखल विज्ञान और हिंसक प्रौद्योगिकी के द्वारा उपभोगवादी मानसिकता वाले आधुनिक मानव ने हमारे परिमंडल को यांत्रिकी–मंडल में बदल डाला है।

इसीलिए आज पर्यावरण समूचे विश्व की चिंता का सर्वप्रमुख केंद्र बन गया है। पर्यावरण—विज्ञान को सर्वत्र सर्वाधिक एक वरीयता दी जा रही है, पृथ्वी सम्मेलन जैसे अंतरराष्ट्रीय आयोजन किए जा रहे हैं, फिर भी यह जटिल समस्या सुलझने के स्थान पर और उलझती जा रही है, सभी उपाय निरुपाय सिद्ध हो रहे हैं। इसका कारण क्या है? और इसका समाधान कैसे खोजा जा सकता है? मानव सभ्यता विज्ञान यांत्रिकी प्रौद्योगिकी को त्यागकर सहस्रों वर्ष पूर्व की अपनी प्रारंभिक अवस्था में लौट जाए, यह संभव नहीं और इसी आत्मघाती मार्ग पर यथावत् बढ़ती जाए, यह भी अभिप्रेत नहीं। पर्यावरण—अध्ययन की प्राचीन भारतीय परंपरा पर्यावरण के विविध तत्त्वों के पृथक—पृथक् ज्ञान तक ही सीमित नहीं है, अपितु इससे एक चरण आगे बढ़कर उस ज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए सतत् प्रयत्नशीलता पर बल देती है। आधुनिक पर्यावरण—विज्ञान में अनुप्रयुक्त पारिस्थितिकी के महत्त्व—प्रतिपादन से स्पष्ट है कि पर्यावरण संबंधी ज्ञान का कल्याणमय अनुप्रयोग ही वर्तमान मानव का अभीष्टतम लक्ष्य है। अतएव प्रस्तुत प्रसंग में प्राचीन पर्यावरण—ज्ञान के अनुप्रयुक्त पक्ष को ही अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः पर्यावरण संरक्षण के प्रति सजगता, प्रभावशाली उपायों का ज्ञान, उन उपायों के समुचित क्रियान्वयन की क्षमता सुसमृद्ध पर्यावरण—ज्ञान के अभाव में विकसित होना असंभव है।

प्राचीन भारत की पर्यावरण—चिंतन—परंपरा को जानने के लिए आज हमारे पास संस्कृत साहित्य से बढ़कर और कोई प्रामाणिक साक्ष्य सुलभ नहीं है। अतएव भारतीय पर्यावरण—चिंतन—परंपरा के अनुशीलन के लिए संस्कृत साहित्य के विविध पक्षों का समावलोकन ही समीचीन होगा ।

पर्यावरण जैसे संश्लिष्ट विषय के सर्वांगीण अध्ययन के लिए समस्त प्रकृति का सांगोपांग अध्ययन और ज्ञान आवश्यक है। इस दृष्टि से आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तु—विद्या, राजनीति—शास्त्र आदि के प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में प्रचुर एवं प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध होती है।

यह समस्त ज्ञान–कोष पुस्तकीय मात्र न रहकर जीवन से संपृक्त हो गया था। अतएव वैदिक साहित्य, पुराण, आर्षकाव्य एवं लौकिक संस्कृत साहित्य की सुदीर्घ परंपरा में गूढ़ पर्यावरणीय ज्ञान कलात्मक एवं प्रतीकात्मक रूप से अनुस्यूत हो गया। संस्कृत साहित्य में समाविष्ट प्रकृति–प्रेम प्रकृति के महत्त्व तथा संरक्षण के प्रति सजग सचेष्टता का भावपूर्ण संसूचक है।

पर्यावरण–प्रदूषण की रोकथाम के लिए कानून बनाना, संरक्षण–संवर्धन के उपायों के अन्वेषण–क्रियान्वयन के लिए बाह्य बाध्यता स्वीकारना ही पर्याप्त नहीं, वैचारिक अनुकूलता और संवेदनात्मक संकल्प भी अभीष्ट है। यह अभीष्ट सिद्धि केवल विज्ञान के वश की बात नहीं, इसके लिए संस्कृति का मार्गदर्शन चाहिए । अतएव मंत्रद्रष्टा ऋषिजन ने प्रकृति तथा मानव की आवश्यकताओं के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध के महत्व को पहचानकर उपभोग के स्थान पर उपासना का जीवन–दर्शन विकसित किया, आदान के साथ विसर्जन के क्रम को बनाए रखने के लिए यज्ञ का विधान किया, अतिभौतिकता के दूषित परिणामों को दूर करने के लिए आत्म–संयम का आदर्श स्थापित किया ईशोपनिषद् का सुविख्यात उद्घोष प्राचीन पर्यावरण–चिंतन का मूल मंत्र है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।

भारतीय पर्यावरण – पर्यावरण जैसी वैश्विक अवधारणा के साथ 'भारतीय' विशेषण संयोजित करने का उद्देश्य भारत के भौगोलिक परिवेश में विद्यमान पर्यावरणीय परिस्थितियों का अध्ययन तथा भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पर्यावरणीय दृष्टि का उन्मीलन है। अतएव एक भू–परिस्थिति–जैविक–तंत्र के रूप में भारतीय पर्यावरण के संक्षिप्त परिचय के साथ ही भारतीय पर्यावरण–विज्ञान के प्रतिनिधि पौराणिक साहित्य में समाविष्ट पर्यावरण–चित्रण के विभिन्न पक्षों पर द्रुत–दृष्टिपात के माध्यम से पौराणिक काव्य में व्याप्त प्राचीन पर्यावरणीय ज्ञान की

महानता तथा उस ज्ञान की मानव पर्यावरण संबंधों के संतुलन में उपयोगिता का बोध होता है। यह संपूर्ण विश्लेषण पुराण–साहित्य में प्रकृति–वर्णन के काव्यशास्त्रानुमत आलंबन–उद्दीपन विभावात्मक विधान के पीछे छुपी पर्यावरणीय दृष्टि को उद्घाटित करता है। प्राचीन भारत में पर्यावरण–चिंतन–परंपरा के चरमोत्कर्ष से युक्त पुराण साहित्य पर्यावरण–चिंतन के सूक्ष्म–गहन–पर्यवेक्षण का सर्वाधिक प्रामाणिक एवं परिपूर्ण माध्यम है ।

पौराणिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय सिद्धांत–

पुराणों में आख्यानों, रूपकों, प्रतीकों के माध्यम से वैदिक ज्ञान–विज्ञान का रोचक प्रस्तुतीकरण किया गया है। पुराणों की प्रतीकात्मकता गूढ़ ज्ञान रहस्यों एवं अमूर्त विषयों को जनसामान्य के लिए सहज–ग्राह्य बनाती है। अष्टादश पुराणों और उपपुराणों में विशाल कलेवर के अनुरूप ज्ञान–वैविध्य भी है। पौराणिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय ज्ञान–संबंधी प्रमुख बिंदुओं का विश्लेषण ही द्रष्टव्य है।

वैश्विक एकात्मवाद– वैदिक सिद्धांत के अनुरूप विभिन्न पुराणों में भी समस्त सृष्टि की उत्पत्ति एक ही मूल तत्व से मानी गई है। चाहे उसे ब्रह्म के नाम से अभिहित किया जाए (ब्रह्म पु. 187.40), चाहे विष्णु (विष्णु पु. 2.12.38–39), शिव (शिव पु–रुद्र संहिता 9. 35–36) अथवा भगवान (भाग. पु. 1.3.1–5) कहा जाए। भूत–वर्तमान–भावी में होने वाले सुर–असुर–वर–खम–मृग–सरीसृप गंधर्व–अप्सरा यक्ष–राक्षस–गण–सर्प–पशु–पितर–सिद्ध–विद्याचर–चारण–वृक्ष–जलथलनभचर जीव–गृह–नक्षत्र धूमकेतु तारा–तड़ित–मेघ सभी परम–पुरुष भगवान का ही स्वरूप हैं (भाग.पु. 2.6.12–15) अष्टमूर्ति शिव' की पौराणिक अवधारणा के अनुसार भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चंद्र, आत्मा यजमान में लौकिक रूप से साक्षात् विद्यमान शिव के आठ रूप सारी जड़–जंगम सृष्टि के अस्तित्व एवं क्रियाशीलता के आधारभूत कारक तत्व हैं। विष्णु पुराण वासुदेव को ही सर्वव्यापी

परम सत् घोषित करता है (2.12.44)। सृष्टि मूल भगवान, ईश्वर नारायण, जड़ जगत देवता, पशु–पक्षी, मानव की तात्त्विक एकता का यह सिद्धांत सृष्टि के कण–कण में देवत्व एवं पवित्रता की प्रतिष्ठा कर चेतन ही नहीं, अचेतन तत्व के प्रति भी मानव के अनुचित व्यवहार पर अंकुश लगा देता है। किसी भी प्राणी का हनन परमात्मा का ही हनन है और सब की कल्याण–कामना परम तत्व का सच्चा पूजन है–

यजन्यज्ञान्यजत्येनं जपत्येनं जपन्नृप ।
निघ्नन्नन्यान्हिनस्त्येनं सर्वभूतो यतो हरिः ।। (विष्णु पु. 3.8.10)
न ताड्यति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः ।। (वही. 15)
यथात्मनि व पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा ।
हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम्।। (वही 17)

आधुनिक वैज्ञानिकों की अणु–परमाणु द्वारा संपूर्ण सृष्टि के निर्माण की परिकल्पना का सार भी सृष्टि का तात्त्विक ऐक्य है, परंतु इसके द्वारा जगत् में विद्यमान विविधात्मकता में सन्निहित एकसूत्रता का ऐसा हृदयग्राही निरूपण नहीं हो सकता जिसे जनसाधारण आत्मसात् कर सके।

दशावतारः पौराणिक विकासवाद –पुराणों में भगवान के दशावतार की मौलिक मान्यता सुस्थापित है–

मत्स्यः कूर्मी वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश।।

मछली, कछुआ, वराह जैसे क्षुद्र जीवों में ईश्वरावतरण सर्व–जीव समानता का द्योतक है। अवतारवाद की दृष्टि से जीवों में कोई भेद नहीं। दशावतार के क्रमबंध में विकासवाद सिद्धांत सूत्ररूपेण संगुंफित है। आधुनिक विकासवाद के प्रतिपादक डार्विन के अनुसार सृष्टि का आरंभ लघुकाय जीवों से हुआ, क्रमशः पर्यावरण–परिवर्तन के प्रभाव से दीर्घकाय प्राणी विकसित हुए जिनमें बुद्धि का क्रमिक विकास हुआ। दशावतार पृथ्वी पर जैविक एवं मानव विकास का पौराणिक रूपक है।

आज जैव–विकास भी पर्यावरण–विज्ञान का अंग है। अतः पौराणिक विकासवाद का विवेचन सर्वथा प्रासंगिक है। जलीय एककोशीय जीवों से पृथ्वी पर जीवन का सूत्रपात होने पर करोड़ों वर्षों में बहुकोशीय, अस्थियुक्त, मेरुदंडयुक्त, स्वतः तैरने में सक्षम मछली का विकास हुआ। मत्स्यावतार सर्वप्रथम प्रादुर्भूत जलचर का प्रतीक है। तदुपरांत धरातल पर वनस्पति का विकास होने पर जलचर जीवों में से धरातल पर भी विचरण करने योग्य उभयचर जीव–जातियाँ पनपीं जिनका प्रतिनिधि कच्छपकूर्मावतार है। तत्पश्चात् वनस्पति–प्राचुर्य के कारण विभिन्न प्रकार के थलचर जीवों का द्रुत विकास हुआ। इस क्रम में विकसित जरायुज/स्तनपोषी जीव का प्रतिनिधित्व वराहावतार द्वारा किया गया। वराह का जलप्रायः भूमि में लोटना, भूमि खोद कर आहार प्राप्त करना–दाढ़ों से खोद कर धरती को समुद्र से बाहर निकालने का रूपक बन गया। स्तनपोषी जीवों से मानव के विकास की श्रृंखला में नृसिंहावतार के रूप में ऐसे प्राणी को परिकल्पित किया है जो पशुत्व तथा मनुष्यत्व की मध्यवर्ती कड़ी है। यह मानव शरीर के विकास का परिचायक है जब मानव–मस्तिष्क अल्पविकसित अवस्था में ही था। सिंह जैसे हिंसक एवं बलशाली पशु को मानव के विकासशील मस्तिष्क का प्रतीक बनाकर पौराणिकों ने आदिमानव की मृगयाभोजी हिंसक प्रवृत्ति के साथ ही उसके संभावित मानसिक बल की ओर भी इंगित किया है। पृथ्वी पर मानव का अवतरण लघुकाय बौने रूप में हुआ, जिसे वामनावतार माना गया है। अर्धमानुष–जीववानर को मानव जाति का पूर्वज मानने वाले डार्विन के मतानुसार भी पेड़ों से उतरकर धरातल पर रहने वाले वनमानुष के मस्तिष्क का क्रमशः विकास होता गया और शनैः–शनैः वह मानव का रूप ग्रहण करता गया। अपने बुद्धि–बल से उसने पत्थर, लकड़ी आदि के औजार हथियार बनाए, आग जलाना सीखा, आखेट के साथ कृषि की ओर भी उन्मुख हुआ। वामन–रूप मानव द्वारा कृषि के लिए तीन चरण भूमि माँगने की पौराणिक कथा में उसकी ब्रह्मांड नाप लेने की विराट संभावनाओं का संकेत अत्यंत

सार्थक है। परशुराम अवतार उस युग का परिचायक है जब मानव–समूह परशु–प्रतीक शस्त्रास्त्र के बल पर परस्पर युद्धस्त रहते हों, उनका सामाजिक संगठन सुविकसित न हुआ हो, क्रोध और दुर्दांत रक्त–पिपासा का मानव–प्रवृत्ति पर प्राबल्य रहा हो। मर्यादा पुरुषोत्तम राम मानव समाज में आदर्श राज्य के प्रणेता के रूप में सम्मान्य है। वानर–ऋक्षाधिवासित वनों तक सभ्यता के प्रसार, सामाजिक संबंधों की गरिमा के संरक्षण, प्रजारंजन, लोकरक्षण के कार्यों में प्रवृत्त, राजधर्म की प्रतिष्ठा का प्रतीकभूत रामावतार मानव के सांस्कृतिक विकास का द्योतक है। रामावतार युग में जिस मानव सभ्यता, समाज–मर्यादा, राज्य–शक्ति का शुभारंभ हुआ, उसका पूर्ण–विकास पौराणिक द्वापरयुगीन कृष्णावतार के रूप में हुआ। कृष्ण के व्यक्तित्व में मानव विकास के सभी आयाम चरितार्थ होते हैं। गोपालन से गीता दर्शन तक, बाल–लीला से विराट स्वरूप–दर्शन तक, वृंदावन–विहारी से कर्मयोगी द्वारकाधीश तक मानव जीवन, हृदय और मस्तिष्क की सभी अवस्थाएँ पूर्णावतार कृष्ण में समाहित हैं। सब प्रकार के प्राकृतिक सामाजिक–राजनैतिक अंतर्विरोधों का समाधान बल या बुद्धि से करने के मानवोचित प्रयासों का प्रतीक बना कृष्णावतार! मानव विकास की पराकाष्ठा पर पहुँचकर 'बुद्धावतार' का आविर्भाव हुआ। वेद–विरोधी, ईश्वर तथा आत्मा को नकारने वाले बुद्ध की दशावतारों में गणना अत्यंत अर्थपूर्ण है। मानव–हृदय तथा मस्तिष्क की शक्तियों का विकास हो जाने के बाद भावतत्व की गौणता और तर्कतत्व की प्रधानता स्वाभाविक परिणति है। इस दृष्टि से बुद्ध प्रबुद्ध मस्तिष्क एवं वैज्ञानिक तत्त्व बोध वाले विज्ञान–युग के प्रतीक–पुरुष के रूप में परिकल्पित हैं। वैज्ञानिक तर्क के भक्ति भाव और संजीवनी आस्था पर हावी हो जाने से अवश्यंभावी नैतिक मूल्य–विघटन के परिणामस्वरूप सृष्टि–विनाश की पूर्वधिक्षा करके पौराणिक विद्वानों ने कल्कि अवतार को भावी मानव विकास के लिए सुरक्षित कर दिया है। पृथ्वी पर व्याप्त अधर्म तथा घोर अराजकता की उद्धारक शक्ति के रूप में आविर्भूत होने वाले इस अवतार से सृष्टि

की अनंतता का ज्ञान होता है। वर्तमान पर्यावरणीय संकट से जूझते विश्व के लिए वैज्ञानिकों का भी यही मत है कि सर्वनाश की आशंका होने पर भी जीवन–क्रम का पूर्ण–अवरोध असंभवप्रायः है।

इस प्रकार विकासवाद की अवधारणा का सुविकसित एवं तार्किक रुप पौराणिक अवतारवाद में भलीभाँति प्रतिफलित होता है।

जैव–भू–पारिस्थितिकी (Bio-geo-ecology)´–

धरती पर मानव विकास तथा मानव–जनसंख्या का विश्वव्यापी वितरण जैव–भू–पारिस्थितिकी (Bio-geo-ecology) का अध्ययन विषय है। आधुनिक विकासवाद के अनुसार मानव की विभिन्न जातियाँ (आर्य–द्रविड़ादि) मूलतः एक हैं तथा भिन्न–भिन्न जलवायविक क्षेत्रों के प्रभाववश उनके आकार–आकृति–वर्ण–सभ्यता–संस्कृति आदि में भिन्नता आती गई। ब्रह्मा के प्रथम पुत्र स्वयंभु मनु के वंश–वर्णन के अंतर्गत मानव जनसंख्या वितरण–विषयक महत्वपूर्ण पौराणिक संकेत उपलब्ध होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि मानव की सभी जातियों का मूल उद्भव–स्थान एक ही था। उस केंद्र से सात मानव–समूह विश्व भर में फैले। तत्पश्चात् उनकी सभ्यताओं का स्वतंत्र विकास हुआ।

भौगोलिक पारिस्थितिकी (Geographical Ecology)

पुराणकार वर्तमान वैज्ञानिक युग में ज्ञात भूमिखंडों से सुपरिचित थे। सारी पृथ्वी का भौगोलिक ज्ञान, विभिन्न क्षेत्रों के पर्वत नदी–वन–वृक्ष–सरोवर–सागर आदि का उल्लेख तत्कालीन पर्यावरणीय ज्ञान की व्यापकता का द्योतक है क्योंकि भूगोल–शास्त्र पर्यावरण अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग है। भूगोल–संबंधी विवरण पौराणिक साहित्य के विविध प्रसंगों में समस्त भूमंडल एवं भारतवर्ष के भूगोल संबंधी विस्तृत विवरण प्राप्त होते हैं। पुराणों के अंतर्गत भुवन–कोष में मध्यलोक पृथ्वी सहित छह ऊर्जा तथा सात अधोलोकों वाले चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्मांड का वर्णन किया गया है। पृथ्वी चतुर्द्वीपा एवं अधिक सूक्ष्म रूप से सप्तद्वीपा वसुमती के रूप में वर्णित है। पुराणों की रूपकात्मक–वर्णनात्मक–प्रतीकात्मक शैली, अनेक पुराणकारों द्वारा

संग्रहीत सामग्री में दृष्टिगत होती असमानताओं तथा काल—प्रवाह में घटित भौगोलिक परिवर्तनादि के कारण पौराणिक भूगोल को स्पष्टतया समझना कठिन है, तथापि पौराणिक विवरणों के वर्तमान प्रत्यभिज्ञान के दुःसाध्य कार्य में प्रयत्नशील विद्वानों ने इन तथ्यों की यथार्थता के प्रमाण भी जुटाए हैं।

पौराणिक भूगोल की तथ्यात्मक एवं गहन अध्ययन दृष्टि के प्रभूत प्रमाण जम्बूद्वीप में अवस्थित भारतवर्ष के भौगोलिक वर्णन द्वारा प्राप्त होते हैं। जम्बूद्वीप के मध्यस्थित मेरुपर्वत के दक्षिण में निषध—हेमकूट पर्वत है, उनके दक्षिणवर्ती हिमवान् वर्षपर्वत और भारतवर्ष है। समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित भारतवर्ष नवसहस्र—योजन विस्तृत है।

भारत के साथ कुल—पर्वतों, अन्य पर्वतों तथा हिमालय, कुल—पर्वतादि से प्रवाहित होने वाली नदियों की विस्तृत सूची के साथ ही भारत के विभिन्न विभागों में स्थित जनपदों का भी विवरण पुराणों में मिलता है जिससे भारतवर्ष की प्राचीन भौगोलिक सीमा ज्ञात होती है। भारत के नौ खंडों का एक अन्य वर्गीकरण भी पुराणों में उल्लिखित है जिन्हें कतिपय विद्वान् मुख्य भारतीय भूखंड से भिन्न बृहत्तर भारत में समाविष्ट दक्षिण—पूर्वी एशियाई द्वीपों से समीकृत करते हैं, जबकि कुछ भूगोलवेत्ताओं ने इन्हें भारत के ही विभिन्न प्रदेश माना है जो समुद्र या विशाल नदी से व्यवहित एवं पर्वत—वनादि से दुर्गम होने के कारण सागर—वेष्टित, अगम्य भूभागों के रूप में (वायु पु./575) निरूपित किए गए हैं। पुराणकारों ने दैनिक संकल्प वाक्य में भूगोल—विषयक ज्ञान का व्यावहारिक सदुपयोग करके भूमंडल के परिप्रेक्ष्य में मानव—विशेष की अकिंचनता को उद्बोधित किया है।

भौगोलिक प्राकृतिक परिवेश और मानव की देशीय प्रवृत्तियों में अन्योन्य संबंध की उद्भावना के अनुसार स्थान—विशेष के वासियों की पर्यावरणीय दृष्टि भी अनन्य साधारण हो सकती है। अतः भारत के भौगोलिक वर्णन के प्रसंग में विष्णु पुराण में तप—यज्ञ—दान—परलोक

चितंन आदि भारत–वासियों की अन्यत्र दुर्लभ, मूलभूत चारित्रिक विशेषताओं का एकत्र उल्लेख अत्यंत अर्थपूर्ण है।

मानव–पर्यावरण संबंध (Man and Environmental Relationship)–

तप–त्याग–यजन–पूजनादि की प्रवृत्तियाँ मानव–पर्यावरण के विकास एवं संरक्षण के लिए अत्यावश्यक हैं। अतएव पुराण सत्य, दया, तप, शौच, इंद्रिय–संयम, मन–संयम, उचितानुचित विवेक, अहिंसा, त्याग, संतोष, भोगवृत्ति से विमुखता, अनहंकार, आत्मचिंतन, अन्नादि का प्राणियों में यथोचित विभाजन, सभी प्राणियों में देवता–भाव की अनुभूति को मानव के सामान्य कर्तव्य घोषित करते हैं (भाग. 7.11.)। पंच–यज्ञादि का विधान (भाग. पु. 7.15) पर्यावरण संतुलन का मूलमंत्र है। पुराण मानव को सभी प्रकार के पशु–पक्षी, कीट–सरीसृप आदि के प्रति पुत्रवत् व्यवहार की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

मानव की कर्मण्यता पर अटल विश्वास करते हुए सर्वसमृद्धि–संपन्न भारत–वर्ष को भोगभूमि नहीं कर्मभूमि के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है जहाँ ईश्वरार्पित निष्कामकर्म करते हुए निर्मल–चित्त मानव स्वर्ग–अपवर्ग के महान लक्ष्यों को भी प्राप्त कर सकता है। मानव तथा प्राकृतिक परिवेश में सदा संतुलन बने रहने में, प्राकृतिक तत्त्वों के नैसर्गिक वैशिष्ट्य के सुरक्षित रहने में ही मानव–मंगल निहित है–

पृथ्वी सगंधा रसाइ तथाऽप स्पर्शी च वायुज्वलिंत च तेज।
नभः सशब्दं महता सहैव कुर्वंतु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

इस प्रकार पौराणिक साहित्य पर्यावरण विज्ञान के प्रति अपना वैश्विक विचार प्रस्तुत करता है।

पर्यावरण–संरक्षण मानव का आवश्यक कर्तव्य है। पौराणिक साहित्य के अनुसार इसके लिए संरक्षण–उपायों के तत्परतापूर्वक अनुसंधान एवं क्रियान्वयन के अतिरिक्त भौतिकवादी मानव को पर्यावरण के प्रति अपनी शोषणपरक मनोवृत्ति तथा एकांगी दृष्टि को बदलना होगा। संस्कृति मानव–पर्यावरण–संबंध का मुख्य नियामक तत्त्व है। इस संदर्भ में प्रतीच्य एवं प्राच्य संस्कृति के तुलनात्मक विवेचन द्वारा

प्रतीच्य संस्कृति में मानव पर्यावरण के बीच संकेंद्रीय–संबंध की तथा प्राच्य संस्कृति में अखंड–मंडलाकार–संबंध की प्रतीति होती है। पाश्चात्य जीवन–शैली में समाविष्ट उपभोक्तावाद, भौतिकतावाद मानव की विलासप्रिय स्वार्थलोलुपता को बढ़ावा देते हैं। पाश्चात्य धर्म में संपूर्ण प्रकृति पर मानव के स्वामित्व की स्वीकृति प्रकृति के निर्मम शोषण को मानव का जन्मसिद्ध अधिकार घोषित करती है। वर्तमान पर्यावरण संकट की जड़ में विश्वप्रचलित इन मान्यताओं का भी हाथ है।

पौराणिक जीवन–दर्शन में समाहित पर्यावरण–चेतना तथा मानव–पर्यावरण–संबंध–विषयक दूरदृष्टि निम्नांकित बिंदुओं द्वारा स्पष्ट हो जाती है–

1. समस्त जीव जगत् से मानव की एकात्मता, चेतनाचेतन में तादात्म्य–भाव, यज्ञविधान द्वारा सृष्टि में निहित आदान–प्रदान–क्रम के सुचारु संचालन में योगदान

2. वर्णाश्रमधर्म, पुरुषार्थ–चतुष्ट्य आदि के पालन द्वारा भोग–त्याग के संतुलन का प्रयास, प्रकृति की पवित्रता–पूज्यता में विश्वास, प्रकृति मानवोपभोग की सामग्री मात्र नहीं।

3. अधिकार की अपेक्षा प्रकृति के प्रति कर्तव्यपालन के लिए आचार–संहिताओं द्वारा दिशानिर्देश।

4. आत्मनियमन एवं प्रकृति संरक्षण के व्यावहारिक उपायों के लिए तपोवनों से प्रेरणा–ग्रहण अहिंसा, अपरिग्रह, परोपकारादि के उच्चादर्शों का अनुकरण कर मानव मनोवृत्ति के परिष्कार की चेष्टा

उक्त सभी पौराणिक सिद्धांत मानव को पर्यावरण के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ एवं जागरूक बनाते हैं । अतः यह आज के युवा का मुख्य कर्त्तव्य है कि वह पौराणिक साहित्य के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पारिस्थितिकी का अध्ययन करे।

समकालीन हिंदी कविता : पर्यावरण के संदर्भ में

डॉ. गौरी त्रिपाठी

हमारा जीवन पर्यावरण के बगैर संभव ही नहीं है, जीवन का सब कुछ हमें पर्यावरण से ही मिलता है लेकिन दुखद स्थिति यह है कि मनुष्य विकास और विज्ञान का नाम लेकर प्रकृति को लगातार नष्ट करता जा रहा है फिर चाहे वह प्रकृति का उपभोग हो, पेड़ों की कटाई हो, उद्योग धंधों का लगाना हो या व्यापार और बाजार की बात हो। ये सभी बातें मनुष्य के लिए चिंताजनक हैं क्योंकि प्रकृति और पर्यावरण के असंतुलित होने पर हमारी पूरी मनुष्य जाति खतरे में पड़ जाएगी। समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण और प्रकृति को बचाने की चिंता बहुतायत से हुई है। समकालीन हिंदी कविता जहाँ प्रकृति के सुंदर रूपों का चित्रण करती है, वहीं उसे पर्याप्त चिंता भी है कि प्रकृति और पर्यावरण किस कदर नष्ट होता जा रहा है।

पर्यावरण का अर्थ ही होता है हमारे आसपास का वातावरण। हम सभी मनुष्य आकाश, वायु, जल, पृथ्वी अग्नि तथा तमाम प्राकृतिक चीजों से हमेशा आच्छादित रहते हैं। इन सभी तत्वों और पदार्थों का मिला–जुला रूप ही पर्यावरण कहलाता है। बहुत साधारण शब्दों में कहें तो यह पृथ्वी, जिस पर हम जो कुछ भी महसूस करते हैं, देखते हैं और अपना जीवन जीते हैं, वह सभी कुछ हमारे पर्यावरण का हिस्सा है। हमारा पूरा जीवन इसी पर्यावरण के इर्द–गिर्द चलता रहता है। और अंततः हम इसी प्रकृति में मिल जाते हैं। इसलिए समस्त

मानव जाति के लिए, समाज के लिए पर्यावरण का संरक्षण और उसकी चिंता निहायत जरूरी मुद्दा है। इस शोधपत्र में हम पर्यावरण के महत्व पर चर्चा करेंगे। प्रकृति के बिना तो वैसे भी हम अपनी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। हिंदी साहित्य में समकालीन कवियों ने प्रकृति के प्रति किस प्रकार अपनी सजगता और प्रेम दिखाया है, यह सब कुछ इस शोधपत्र में संभव हो सकेगा। हमारा साहित्य हमेशा साथ चलने पर बल देता है फिर चाहे वह विश्व के संदर्भ में हो या प्रकृति के संदर्भ में। बात प्रकृति और पर्यावरण की है तो हमें स्वीकार करना होगा कि विकसित हुए जा रहे देशों में एक अलग प्रकार की संस्कृति बनती चली जा रही है जो एक संवेदनहीन संस्कृति है, जिससे हमारा जीवन निरंतर खतरे में पड़ता–सा दिख रहा है। इन सबके पीछे वह मनुष्य भी जिम्मेदार है जो भूमंडलीकरण जैसी विस्तृत वैचारिकी को बढ़ावा देते हैं। जो भी देश निरंतर विकसित होने की प्रक्रिया में हैं उनकी उतनी ही जिम्मेदारी बनती है ग्लोबल वॉर्मिंग के लिए। उन्होंने अपने वातावरण को ग्रीनहाउस से भर डाला है। पूरे देश में और अपने देश में भी तमाम बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जमीन के अंदर संसाधनों का दुरुपयोग किए जा रही हैं जिससे हमारी नदियाँ दूषित हो रही हैं, हमारा पूरा वायुमंडल विषैली गैसों के उत्सर्जन से दूषित हो गया है। हम कितना विकास चाहते हैं? क्या हमारा विकास बगैर जंगल काटे और बगैर नदियों को तबाह किए संभव ही नहीं है? आज की तारीख में तो विकास का मतलब ही है पेड़ काटना और प्रकृति का दोहन करना। हमें ठहरकर सोचने की जरूरत है क्या हम वाकई विकसित हो रहे हैं?

समकालीन हिंदी कवि कुमार अंबुज लिखते हैं– चारों तरफ से नव निर्माण की आवाजें / और निर्माण केवल बिल्डर कर रहे हैं। बाकी लोग सिर्फ बेच रहे हैं अपनी जमीने/अब सारी जमीन बिल्डरों के पास है।[1]

आज बिल्डर हमें बताते हैं कि हमें क्या करना है, कैसे जीवन जीना है। क्या वाकई हम मनुष्य मानसिक रूप से भी दूसरों के गुलाम हो गए हैं। समकालीन कविता में यह चिंता लगातार व्यक्त होती रही है। अपने–अपने तरीके से कवियों ने इस बात को चिंता के तौर पर हम सबके सामने रखा है।

मानव जाति विज्ञान और औद्योगिक विकास के नाम पर लगातार प्रकृति को नष्ट करती जा रही है और यह एक फैशन बनता चला जा रहा है जहाँ हम बगैर किसी शर्मिंदगी के हरे–भरे पेड़ काट डालते हैं। ऐसे उद्योग धंधे लगाते हैं जिनसे हमारा स्वास्थ्य प्रभावित होता है। हम उपभोक्ता वर्ग में तब्दील हो गए हैं लेकिन हमें जीने के लिए तो साफ–सुथरा वातावरण चाहिए, वह हम कहाँ से लाएंगे। इस पर भी हमारी जनसंख्या निरंतर बढ़ती चली जा रही है। रहने के लिए कुछ दिनों में जमीनें भी उपलब्ध नहीं होंगी। जंगल कटने से पर्यावरण असंतुलन दिखाई पड़ रहा है। लगातार धरती में गर्मी बढ़ती चली जा रही है। तमाम ऐसे जीव जंतु और पौधे भी हैं जो विलुप्त होने के कगार पर हैं। कुछ पक्षी तो अब दिखाई भी नहीं देते। जब हमारी प्रकृति विलुप्त होने लगेगी तो हमें विलुप्त होने में ज्यादा देर नहीं लगेगी। लीलाधर मंडलोई ने अपनी एक कविता में लिखा हैः

हमारे बुजुर्ग जानते थे/ कितना जरूरी है/ गौरैया का होना / घोंसले बनाती थी वहाँ / कि ध्वनि शोर तरंगों से / सुरक्षित थी उनकी जिंदगी। वे उड़ गई हैं या/ खो गई कहीं हवाओं में/ कहना मुश्किल / बस कभी–कभी आती है उनकी भयभीत आवाज जब / याद करते हैं उन्हें।[2]

जहाँ पर विकास कम हुआ है, दरअसल वहीं मनुष्यता और प्रकृति बची हुई है। लेकिन दुर्भाग्य है कि हम ऐसी जगहों को पिछड़ेपन का प्रतीक मान लेते हैं। जहाँ स्वाभाविकता और आत्मीयता होगी, हम उसे पिछड़ी मानसिकता मानते हैं। हमारे समकालीन कवि इस दर्द को समझते हैं

यहाँ एक गाँव था अपना
यहाँ कुछ गाँव थे प्यारे
मीठे दिन थे मीठी रातें
रस की बूंदें रस के धारे
इस धरती पर भी कल तक
जंगल थे और नदियाँ थी
जगमग जगमग झरने थे
महुआ आम आदि थे
खुशियाँ थी
पके हुए खेतों को हँसते
देख यहाँ खुशहाली थी
उस दुश्मन की आँख लगी कि
तहस–नहस सब धीरे–धीरे
लोहा ईंट सीमेंट के आगे
नदी बंध गई उजड़े गाँव[3]

अब हमें ऐसा घर चाहिए जहाँ ना मिट्टी हो, ना घास। घास भी होगी तो वह बनावटी होगी। मिट्टी पैर में लगना तो जैसे पिछड़ेपन की निशानी हो। प्राकृतिक संसाधनों का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल करने से हम सभी जलवायु संबंधी समस्याओं से भी जूझ रहे हैं। हमारी धरती का जलवायु बिगड़ गया है। भूकंप, भूमि स्खलन, सूखा, बाढ़, चक्रवात जल्दी–जल्दी आ रहे हैं। प्रकृति अपना स्वरूप हमारे सामने जल्दी–जल्दी बदल रही है और उसका यह स्वरूप हमें अब ड़राता है। वह हमें अपने तरीके से सतर्क कर रही है लेकिन हम सब सुधरने के लिए तैयार नहीं है। कोविड जैसी महामारी के बाद भी हम बिल्कुल भी सुधरे नहीं है। हम सूखे और बाढ़ दोनों समस्याओं से लगातार जूझ रहे हैं। पुराने लोगों की बातें सुनने पर लगता है कि प्रकृति पहले संतुलित हुआ करती थी। एकांत श्रीवास्तव ने अपनी एक कविता में इस मानसिकता को हमारे सामने रखा है– हाँ बेटा गाँव की

नदी में/पानी नहीं है। सूख गए हैं कुँए और पोखर/ऐसा यह अकाल/धूप है/आग बरसती हुई। तब इतनी परती नहीं थी जमीन/ यहाँ उगता था दूब राज जयफूल/ विस्नुभोग और नागकेसर/ हरे खेतों में खेतों में अलग से/दिखता था नागकेसर का खेत/ तब पड़ता नहीं था ऐसा अकाल ऐसा सूखा/ गहरे कुंड सरीखे थे/ गाँव के कुएं/ कभी सूखता नहीं था जल।[4]

हमारी प्रकृति अपनी हरीतिमा के लिए जानी जाती है न कि रूखेपन के लिए। प्रकृति मात्र कहने से हमारे सामने एक हरियाली भरे वातावरण का चित्र उपस्थित हो जाता था लेकिन आज ये परिस्थितियाँ नहीं है। आज हम केवल किताबों में पढ़ सकते हैं तमाम चीजों को। मनुष्य की प्रगति का रास्ता प्रकृति को नष्ट करके ही जाता है। एकांत श्रीवास्तव ने अपनी एक कविता में लिखा है कि पहले यह पर्यावरण असंतुलन नहीं हुआ करता था, सब कुछ अच्छा था। जाहिर सी बात है जब हम रूठी हुई प्रकृति को देखते है तो कहीं ना कहीं हम उसकी इस स्थिति के लिए अपने को भी जिम्मेदार मानते हैं– सूखी हुई लहरें थीं रेत में शंख सीपी और घोंघे थे– एक पूरा समुद्र था सूखा हुआ, मगर पानी कहीं नहीं था/पेड़ थे मगर उनके पत्ते/ बरसों पहले टूट चुके थे। सूखी टहनियों पर सूने घोंसले थे/और परिंदे कहीं नहीं थे।[5]

पहले के दिनों में प्रकृति का इतना दोहन नहीं था, हमारी जलवायु अब काफी बदल गई है। दुनिया की सारी सभ्यताएँ, लगता है नदियों पर ही टिकी हुई है। किसी भी बड़े शहर का विकास देखिए तो आप पाएंगे कि सारी इमारत नदी के तट से शुरू होती हैं। जिस तरीके से हमारी नदियाँ सूख रही हैं हमारी संवेदनाएँ भी सूखने लगी हैं। हमारी उम्मीदें खत्म होने लगी हैं। यह नदी, पर्वत, जंगल अगर नहीं रहेंगे तो हमारा भी बचे रहना काफी मुश्किल है। औद्योगिकीकरण के विकास से पूरा विश्व तप्तता के घेरे में बढ़ रहा है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं, समुद्र तल बढ़ने लगा है जिससे भविष्य में समुद्र में काफी आंदोलन होने की संभावना है, आकाश जहरीला होकर अम्ल की वर्षा

करता है, कभी–कभी यह अम्ल वर्षा हम मनुष्यों को तथा हमारी इमारतों को भी नुकसान पहुँचाती है। हमने देखा है कि भारतवर्ष की तमाम सफेद रंग की इमारतें हल्की पीली पड़ने लगी हैं। ओजोन परत पतला हो गया है जिससे पराबैगनी किरणें मनुष्यों को बीमार बना रही हैं। वायु–प्रदूषण के अलावा पानी का प्रदूषण भी आज एक चिंता का विषय है। जितने कल कारखाने बनते हैं, उन कल कारखानों से निकलने वाला रासायनिक पदार्थ सीधे नदियों में बहा दिया जाता है। पानी दूषित हो जाता है। सफेद हिमालय से निकलने वाली गंगा मैदानी भागों में पहुँचकर काली पड़ जाती है और दूषित हो जाती है। गंगा हमारे लिए सिर्फ एक नदी नहीं है बल्कि हमारी जीवन शैली का एक तरीका भी है। एक संस्कार है जिसे भारतीय जनमानस अपने मन में हमेशा रखता है। हमारे समय के एक महत्वपूर्ण कवि हैं ज्ञानेंद्रपति। उनका एक काव्य–संकलन ही है– गंगा तट। इस पूरे संकलन में उन्होंने गंगा को संबोधित करते हुए तमाम कविताएँ लिखी हैं। इनकी एक कविता है– गंगा स्नान जो काफी महत्वपूर्ण है। यह कविता एक वृद्ध माँ की है जो अपने बेटे और बहू के साथ गंगा नहाने आई है। यह बूढ़ी स्त्री केवल शरीर से स्नान नहीं करती है बल्कि ऐसा लगता है कि अपनी आत्मा को भी सिंचित करती है। हम नई पीढ़ी के लोग शायद इस भावना को नहीं समझ पाएंगे क्योंकि हम नदियों के लिए इतने संवेदनशील नहीं हैं। उत्तर आधुनिक समय में हम इतने उपभोक्तावादी हो गए हैं कि हमें अपने जीवन की तमाम आवश्यकताओं से फुर्सत ही नहीं है कि हम नदी के पास जाएँ। हमें तो बस साफ सुथरा फिल्टर पानी चाहिए।

नदी मतलब फिल्टर/नदी मतलब रग–बिरंगे वाटर प्यूरीफायर और मिनरल वाटर/नदी मतलब विमोचन नदी मतलब बहुराष्ट्रीय कपनियों के लपलपाती जिह्वा/अरबों रुपयों की सरकारी परियोजनाएँ। नदी मतलब सेमिनार / नदी मतलब एनजीओ [6]

कलकल बहती नदी तो सभी को अच्छी लगती है लेकिन उसके संरक्षण और संवरण की फिक्र किसी को भी नहीं है। आज हम गंगा

का पानी पी नहीं सकते हैं क्योंकि वह प्रदूषित है। नदियों का अर्थ हमारे लिए एक बड़े नाले में तब्दील हो गया है जहाँ एक बदबूदार प्रवाह बहता रहता है। ज्ञानेंद्रपति ने गंगा प्रदूषण पर काफी महत्वपूर्ण कविताएँ लिखी है जिसमें नदी और साबुन मुख्य हैं। अपनी कविताओं में वे नदी की इस हालत को लेकर काफी चिंतित दिखाई देते हैं। कवि को लगता है कि नदी गंदी हो गई है जिससे गंदे जल में मछलियाँ मरने लगकर सतह पर उतराने लगी हैं। गहरी और बड़ी नदियाँ भी सिकुड़ कर छोटी हो गई हैं। सवाल यह है कि वे कौन लोग हैं जिन्होंने नदी के जल को हर लिया है और नदी इतनी दुबली हो गई है। आखिर कौन लोग हैं जिन्होंने गंगा की ऐसी दुर्दशा कर दी है।

किसने तुम्हारा नीर हरा/ कल–कल में कलुष भरा। बाघों के जुठराने से तो कभी दूषित नहीं हुआ तुम्हारा जल/ न कछुओं की दृढ़ पीठों से उलीचा जाकर भी कम हुआ/ हाथियों की जल क्रीड़ा को भी तुम सहती रही सानंद।[7] दरअसल गंगा को प्राकृतिक जीवों ने नहीं बल्कि मनुष्य ने नष्ट किया है या कहें कि उसकी अति महत्वाकांक्षा ने नदियों को नष्ट कर दिया है। समाज का विकास चाहने वाले लोग केवल अपने बारे में सोचते हैं, उन्हें चिंता नहीं है कि कल–कारखानों से कितने विषैले तरल पदार्थ निकलते हैं। जो गंगा सफेद स्फटिक रंग में कल–कल करके बहती थी, वह कैसी बैंगनी हो गई है।

अपनी दूसरी कविता में ज्ञानेंद्रपति कहते हैं कि यह कैसा समय है कि जो साबुन हमारे कपड़ों की मलिनता को दूर करता है वही गंगा के जल को दूषित कर देता है। साबुन जिसे एक बहुराष्ट्रीय कंपनी ने निर्मित किया है, अच्छा–खासा प्रचार भी किया है। वे कहते हैं कि यह सब इस छोटी–सी साबुन की टिकिया ने किया है, साबुन को बनाने वाला भी मनुष्य है और कपड़े धोने वाला भी मनुष्य है, उपयोग करने वाला भी और उद्योग लगाने वाला भी और नदी से प्रेम करने वाला भी मनुष्य ही है। तो आखिर गंगा को प्रदूषित कौन करता है? जाहिर–सी बात है कि मनुष्य ही गंगा को प्रदूषित कर रहा है। सत्य तो यह है

कि गंगा के लिए की गई चिंता में अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य जाति की ही चिंता है। गंगा बची रहेगी तो ही हमारा जीवन बचा रहेगा। संताली कवयित्री निर्मला पुतुल ने अपनी एक कविता में कुछ इन्हीं मनोभावों को बहुत मर्मस्पर्शी ढंग से लिखा हैः

इस घाट अपने कपड़े और मवेशियाँ धोते/ सोचा है कभी कि उस घाट/ पी रहा होगा कोई प्यासा पानी/ या कोई स्त्री चढ़ा रही होगी किसी देवता को अर्घ्य।[7]

समकालीन कवि अरुण कमल ने भी अपनी कविता में गंगा के प्रति प्रेम को प्रदर्शित किया है। वह कविता हैः 'गंगा को प्यार'। पक्षी गंगा में अपनी प्यास बुझाने के लिए आते हैं लेकिन वे जैसे ही अपने चोंच को पानी में डालते हैं पलटकर चले जाते हैं। उनको गंगा का पानी पीने लायक नहीं लगता, हमारी नदियों का प्रदूषण इतना ज्यादा फैल गया है कि उसे छूने और पीने की जरूरत ही नहीं है, देखने मात्र से ही पता चल जाता है कि उसका प्रदूषण स्तर कितना ज्यादा है। गंगा की चिंता हम सबकी चिंता है। कभी–कभी कोई पक्षी/ जल की सतह को लगभग/ छाती से छूता निशब्द/ मुड़ता है वापस/ कोई गाय सँभलकर/ पाँव टिकाती/ उतरी जल पीने/ और नथुनों के नीचे/ हिल गई गंगा/ असंभव/ असंभव है सोचना/ जिनकी मिट्टी हवा पानी से गुंथी है। उनके लिए असंभव है सोचना कि एक दिन/ गंगा के ऊपर उड़ता हुआ पक्षी/ विष के दाह से झुलस जाएगा।[18]

दरअसल मनुष्य ने कभी सोचा ही नहीं था कि हमारी नदियों की ऐसी दुर्गति हो जाएगी। हम अपनी विकास यात्रा में ही मगन थे। विश्व स्तर पर भी पर्यावरण सम्मेलन अनेक देशों में आयोजित होता रहता है। 5 जून को पर्यावरण दिवस भी मनाया जाता है। इतने सम्मेलन और इतनी सभाएँ होने के बावजूद भी सवाल यह उठ खड़ा होता है कि क्या हमने पर्यावरण और प्रकृति को बेहतर बनाने के लिए कुछ प्रयास किया है। केवल सिद्धांत बनाने, प्रस्ताव पास करने से

प्रकृति संरक्षण संभव नहीं है। उसके लिए बहुत जरूरी है कि समस्त मनुष्य जाति अपने संवेदना के स्तर पर भी प्रकृति से जुड़े। इसके साथ ही जागरूकता सबंधी सही दिशा में प्रयास किए जाएँ। विकसित और विकासशील देशों को भी अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर मनुष्यता के स्तर पर भी सोचना होगा और अपनी महत्वाकांक्षा पर संयम रखना होगा। पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा हर विद्यार्थी को दी जाए। अगर हम अभी भी सचेत नहीं हुए तो आने वाली पीढ़ियों के लिए कुछ भी बेहतर नहीं बचेगा। क्या हम अपनी पीढ़ियों के लिए विरासत में केवल प्रदूषण, बीमारी, यंत्रणा यही छोड़कर जाएँगे? हमें इस पर विचार करने की जरूरत है। अभी भी समय है कि हम सचेत हो जाएँ। प्रकृति बार–बार मौका नहीं देती। हमें थोड़ा पीछे जाकर कामायनी महाकाव्य को याद करना होगा कि किस प्रकार देवताओं की सभ्यता ने प्रकृति का इतना दोहन किया कि संपूर्ण देवता और देवताओं की सभ्यता नष्ट हो गई। हम प्रगति तो करें लेकिन मनुष्यता की चिंता हमें सदैव करनी होगी।

एकांत श्रीवास्तव की एक कविता है विरासत जिसमें उन्होंने बहुत गंभीरता से हम मनुष्यों पर सवालिया निशान खड़े किए हैं। हम सबको प्रकृति और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार बनना होगा/ बात तभी बनेगी/ डूबते हुए सूर्य का आखिरी बयान/ या खत्म होती सभ्यता की अभिशप्त परछाइयाँ/ क्या छोड़ जाऊँगा/ विरासत में आखिर क्या छोड़ जाऊँगा। मुझे मिले विरासत में सूरज और चांद/ मुझे मिली ऋतुओं की हरी–भरी डालियाँ/ मुझे मिली नदियाँ गहरी और निर्मल / मुझे मिले ऋतुओं के सुंदरतम फूल/ सूरज और चांद को लग गया ग्रहण /डालियों में धँस गए विष बुझे तीर/ नदियों में धुल गया हत्याओं का लहू/ फूलों पर बैठ गई बारूद की गंध/ क्या छोड़ जाऊँगा विरासत में आखिर/ क्या छोड़ जाऊँगा/ मुझे मिली खेतों में पकी हुई फसलें/ मुझे मिला कोठार में भरा हुआ अन्न/मुझे मिली नभ में सप्तर्षियों की झिलमिल/ मुझे मिले रास्ते अनंत यात्राओं

के/ पकी हुई फसलों में लग गई आग/ कोठार के अन्न को खा गए चूहे। सप्तर्षियों की झिलमिल को/ डस गई घटाएँ/ रास्तों में फैल गए लुटेरे बटमार/ क्या छोड़ जाऊँगा विरासत में आखिर/ क्या छोड़ जाऊँगा।[9]

इन समकालीन कवियों की चिंता जायज है। हम कितने भी प्रगतिशील क्यों ना हो जाएँ, बगैर प्रकृति के हमारा जीवन संभव नहीं है। समकालीन कविता के केंद्र में केवल मनुष्य ही नहीं है बल्कि प्रकृति भी बराबर की साझीदार है। समकालीन हिंदी कविता का सरोकार प्रकृति से जुड़ा हुआ है। हिंदी के सभी समकालीन कवि मनुष्य की चिंता के साथ–साथ पर्यावरण और प्रकृति की भी चिंता करते हैं और यही बातें समकालीन कविता को एक विशिष्ट पहचान भी देती हैं। हम सभी मनुष्यों का यह कर्तव्य है कि हम अपनी प्रकृति को बचाएँ, नहीं तो केवल किताबों में हमें प्रकृति को पढ़ना पड़ेगा। यह पूरी मनुष्य जाति के लिए अत्यंत त्रासद है। दुनिया में सारे संवेदनशील लोग अपने–अपने तरीके से प्रकृति को बचाने की मुहिम शुरू कर चुके हैं फिर वह चाहे कविता हो या अन्य कोई भी विधा। हिंदी की समकालीन कविता प्रकृति के प्रति बहुत संवेदनशील और गंभीर है और इसी वजह से ये कविताएँ हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण हो जाती हैं।

संदर्भ सूचीः

1. कुमार अंबुज, अमीरी रेखा, प्रथम संस्करण 2011, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 117
2. लीलाधर मंडलोई, मनवा बेपरवाह, काव्य–संग्रह, प्रथम संस्करण 2011, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 28
3. वही, पृष्ठ संख्या 85
4. लीलाधर मंडलोई, कालापानी, प्रथम संस्करण 2006, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 160

5. एकांत श्रीवास्तव, मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, प्रथम संस्करण 2000, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–87
6. श्री प्रकाश शुक्ल, रेत में आकृतियाँ, प्रथम संस्करण 2012, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 96
7. ज्ञानेंद्रपति, गंगा तट, प्रथम संस्करण 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 20
8. अरुण कमल, अपनी केवल धार, संस्करण 2004, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 63–64
9. एकांत श्रीवास्तव, मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, प्रथम संस्करण 2000, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 85, 86

धर्म के अनेक द्वार होते हैं, उसके विधान के अनुसार चलना कदापि निष्फल नहीं होता।

—महाभारत, शांतिपर्व 174.2

पर्यावरण और जीवन

डॉ. उदय प्रताप सिंह

संतुलित पर्यावरण जीवन के लिए वरदान है, वहीं असंतुलित पर्यावरण जीवन के अस्तित्व को चुनौती देता है। पश्चिमी देशों में दशकों पूर्व इस खतरे को लोगों ने भाँप लिया था। ब्रिटिश संसद में 'पर्यावरण एवं जलवायु आपातकाल' पर एक प्रस्ताव चार वर्ष पूर्व ही मई माह में पारित किया जा चुका है। वेल्स एवं स्कॉटलैंड उसके पूर्व ही इस प्रस्ताव को अपनी–अपनी संसद में पारित कर चुके थे। संयुक्त राष्ट्र और अन्य स्वैच्छिक संस्थाओं में पर्यावरण संबंधी गंभीर चिंताएँ व्यक्त की जा चुकी हैं जो विचारणीय मुद्दे हैं। पर्यावरण असंतुलन का संबंध जलवायु परिवर्तन से सीधे जुड़ता है। यूरोपीय देशों के किशोरों तक में पर्यावरण के प्रति दिखने वाली जागरूकता अचंभित कर जाती है। पर्यावरण के लिए स्वीडन की एक किशोरी ने हजारों विद्यार्थियों के साथ अपनी वार्षिक परीक्षा को तिलांजलि दे संसद के सामने प्रदर्शन किया। पर्यावरण–जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न दुष्प्रभावों के विरुद्ध किए गए इस प्रदर्शन ने पूरी दुनिया का ध्यान सहज ही आकृष्ट कर लिया। संप्रति किशोरी ग्रेटा थुनवर्ग ग्लोबल वार्मिंग के विरुद्ध ब्रांड अंबेस्डर है।

'ग्लोबल वार्मिंग' का ताप बढ़ना अर्थात् पर्यावरण का असंतुलित होना है। पर्यावरण का तापमान एक स्वाभाविक संतुलन प्रक्रिया द्वारा नियंत्रित होता है। सूर्य द्वारा बिखेरी गर्मी यदि वातावरण में अवशोषित हो जाती है तो पृथ्वी की सतह का तापमान बढ़ जाता है। यदि सूर्य की किरणों से आने वाली गर्मी पृथ्वी की सतह से लौटते ही वायुमंडल

में समा जाती है तो पृथ्वी के तापमान में बढ़ोतरी नहीं होती है। ग्लोबल वार्मिंग से बचने के लिए एकमात्र उपाय वायुमंडल में उत्सर्जित ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा को नियंत्रित करना है। इस नियंत्रण से सौर ऊर्जा का परावर्तन भी संभव है। ग्रीन हाउस से उत्सर्जित गैसों का बवंडर, अंधाधुंध औद्योगिकीकरण और उपभोक्तावादी जीवन शैली से पर्यावरण का निरंतर गर्म होना जीवन के लिए एक संकट उपस्थित करता जा रहा है। पर्यावरण संबंधी राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय रपटें यही संकेत कर रही हैं कि प्रत्येक वर्ष पृथ्वी व वायुमंडल गर्म होते जा रहे हैं। पर्यावरण का प्रत्यक्ष संबंध ऊर्जा के प्रमुख स्रोत कोयला, प्राकृतिक तेल एवं गैस से है। इससे कार्बन–डाई–ऑक्साइड का निक्षेप वायुमंडल में होता है। वायुमंडल से पर्यावरण प्रभावित होता है। दूसरा कारण वनों में वृक्षों की बेहिचक कटाई हो रही है। ये वृक्ष ऑक्सीजन छोड़ते भी हैं और कार्बन–डाई–ऑक्साइड का अवशोषण भी करते हैं। इसके अतिरिक्त उर्वरकों, कीट–नाशकों के असंतुलित प्रयोग से नाइट्रस ऑक्साइड का निर्माण होता है। यह भी पर्यावरण को विकृत करने का प्रमुख कारक है। औद्योगिकीकरण के बढ़ते स्वरूप से अपशिष्ट पदार्थ स्वच्छ पर्यावरण के लिए एक बड़ी समस्या के रूप में दिखने लगे हैं। खनन संबंधी गतिविधियाँ भी ग्रीन हाउस गैसों के उत्पादन की प्रमुख स्रोत हैं। गैसों के उत्सर्जन में अमेरिका और चीन का चालीस प्रतिशत हिस्सा है। कहना न होगा कि उपभोक्तावादी जीवन शैली के दास बनते जा रहे विकसित देश पर्यावरण को असंतुलित करने के अधिक जिम्मेदार हैं।

सदियों से भारतीय साहित्य में प्रकृति को महत्व प्रदान करते हुए पर्यावरण के प्रति सतर्क किया जाता रहा है। संस्कृत सहित अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकृति और मनुष्य के संयुक्त प्रयास से स्वस्थ पर्यावरण के विकास की बात कही गई है। इसकी शुरुआत वेदों से होती है। वैदिक ऋषियों द्वारा ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख मिलता है। वनवृक्षों के बीच जीवन–यापन करना उसका बड़ा दृष्टांत है। कालांतर में साहित्यकारों ने भी इस पर बल दिया। कालिदास की

रचना 'मेघदूतम्' और हिंदी के कवि सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद और रामधारी सिंह दिनकर की कविताएँ इसकी साक्षी हैं। यक्ष का विरही मन प्रकृति के अनिंद्य सौंदर्य से कितना प्रभावित है। यह कहना उचित होगा कि प्रकृति की विकृति का परिणाम प्रदूषित पर्यावरण है। दुर्भाग्य है कि वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य से प्रकृति अनुपस्थित है। प्रकृति का संरक्षण ही स्वस्थ पर्यावरण की स्थापना है। सैर–सपाटे में जो प्रकृति प्रीतिकर लगती है, शहरी जीवन में वही क्यों बाधक बन जाती है? शहरी जीवन–शैली और व्यक्ति–केंद्रित भौतिक सोच, पर्यावरण और मनुष्य के बीच की दूरी को निरंतर बढ़ाती रही है। शहरीकरण में भवनों का जरूरत से अधिक निर्माण किया जा रहा है। कंक्रीट के जंगलों के अतंहीन सिलसिले पर्यावरण को असंतुलित करते जा रहे हैं। महानगरों में भीड़ बढ़ती जा रही है और ग्रामीण क्षेत्र सूने पड़ते जा रहे हैं। पर्यावरण असंतुलन का यह भी एक बड़ा कारण है। जीवन–यापन के लिए गाँवों की आबादी शहरों की ओर पलायन कर रही है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एन.सी.आर.) में यह एक बड़ी समस्या है।

समाज, साहित्य, जीवन और संस्कृति में प्रकृति के प्रति संवेदनशील होने का विशेष महत्व है। वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु सिद्ध कर चुके हैं कि पेड़–पौधे व वनस्पतियाँ भी प्रदूषण से आहत होती हैं। हिंदी–संस्कृत–अंग्रेजी व अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने सजी–धजी नायिका के रूप में प्रकृति का मानवीकरण कर पर्यावरण के प्रति एक सजग चेतना का आह्वान किया है। एकमात्र मनुष्य ही है जो देहधारी जीवों को पर्यावरण की सुविधा दे सकता है। साहित्य और प्रकृति की यह जुगलबंदी स्वस्थ पर्यावरण की स्थापना करती है। यह विस्मयकारी हो सकती है, अप्रत्याशित नहीं। वैदिक साहित्य में वृक्ष को देवता माना गया है। वैदिक ऋषियों की प्रकृति के प्रति यह संवेदनशीलता और आत्मीयता स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण को बढ़ावा देती है। दुखद है कि विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति पर ही सारी चोट की जा रही है। हमारी परंपरा में वृक्ष वंदनीय हैं। उनकी पूजा की जाती है। 'शाल्मली'

और 'वट वृक्ष' की पूजा हमारी सनातन संस्कृति का अभिन्न अंग है। पुष्पवती डालियों का तोड़ना भारतीय समाज में वर्जित है। यह एक तरह का पाप है। वैदिक ऋषि 'ओऽम् वनस्पतयः शांतिः', 'ओऽम् ओषधयः शांतिः', 'ओऽम् पृथ्वी शान्तिः' द्वारा उसी चेतना को हजारों वर्षों से जीवंत बनाता रहा है। इन शांति पाठों के पाठ–पुनर्पाठ, बहुपाठ का तात्पर्य पर्यावरण को बचाना ही है। वेदोपनिषदों, स्मृति, गीता, रामायण और महाभारत तक उसी चेतना का विस्तार दिखता है। पीपल वृक्ष का नाम वासुदेव है। कृष्ण को भी वासुदेव कहा जाता है। कृष्ण जैसी महत्ता यहाँ वृक्ष को दी जाती है। ऑक्सीजन का सबसे बड़ा स्रोत पीपल है। श्रीकृष्ण कहते हैं मैं 'वृक्षों में पीपल हूँ'। महाभारत के पश्चात् पांडवों का शांति पर्व, वन पर्व उसी का संकेत है। मनुष्य एवं अन्य जीवधारी प्राणियों का अस्तित्व स्वस्थ पर्यावरण पर ही निर्भर करता है। अतः रचनाकारों के साथ जनसामान्य को भी वनस्पति के संरक्षण, जल के संचयन एवं वायु को प्रदूषण रहित करने के लिए जवाबदेह होना पड़ेगा। चारों तरफ पर्यावरण में निरंतर गर्मी बढ़ रही है। परिणामतः कई प्रकार के पशु–पक्षी, तितली, जुगनू इत्यादि अतीत के विषय बनते जा रहे हैं। उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया है। इस प्रकार के गंभीर खतरे मनुष्य के समक्ष भी निकट भविष्य में उपस्थित हो सकते हैं। इस पर गंभीरता से सरकार और जनता दोनों को सोचना होगा।

पर्यावरण को असंतुलित व विकृत करने में मनुष्य की उपभोक्तावादी प्रवृत्ति अधिक जिम्मेदार दिखती है। धुआँ उगलती कारें, रेफ्रिजरेटर का बढ़ता चलन, गर्मी में ए.सी. का प्रयोग करते हुए दुलाई ओढ़ने का फैशन, बढ़ते वातानुकूलित आवास, उनसे उत्सर्जित हानिकारक गैसें, अधिकतम उपज की चाहत में रासायनिक खादें और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग, अनेकों प्रकार के डियोड्रेंट, बॉडी लोशन, मिट्टी तक की खाल उधेड़ लेने वाले डिटरजेंट पाउडर, पर्यावरण को छिन्न–भिन्न कर देने को तत्पर हैं। ओजोन परत में छिद्र कर देने वाली सूर्य की बेधक किरणों से बचाव के लिए जीवन–शैली को प्रकृति के अनुरूप

ढालना होगा। वैज्ञानिकों के मस्तक पर उभरी चिंता की वक्र रेखाएँ पर्यावरण के खतरे की ही चेतावनी हैं। ऐसे संकट के समय में मनुष्य को अपनी आँख खुली रखनी होगी। कृत्रिम जीवन का परित्याग कर स्वाभाविक जीवन के पथ पर कदम बढ़ाना होगा। जीवन के चकाचौंध से बचना, त्येन त्यक्तेन भुंजीथा के भाव से रहना और परिश्रम को महत्व देना ही पर्यावरण को स्वस्थ रखने के कारक हो सकते हैं।

औद्योगिक विकास और कृत्रिम जीवन जीने की चाहत में 21वीं सदी का मनुष्य पर्यावरण से खतरनाक खेल–खेल रहा है। यह खेल आग से खेलने जैसा है। अंधे विकास की दौड़ में प्राकृतिक स्रोतों का जरूरत से अधिक दोहन आत्मघाती कदम है। जल स्रोतों का दोहन, इमारती लकड़ियों के लिए वनों में पैदा होने वाले वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, अनियोजित उद्योगधंधे और भोगवादी जीवन शैली की आत्यंतिक चाहत ने प्रकृति को बुरी तरह घेर रखा है। घरों को सुंदर बनाने की होड़ में, राजमार्गों के चौड़ीकरण में पेड़ों की हत्याएँ हो रही हैं। कीमती पत्थर के लिए पहाड़ों का उत्खनन हो रहा है। उन पहाड़ों के बीच राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय मार्गों का निर्माण हो रहा है। झरनों–नदियों के अधिकाधिक पानी का प्रवाह मंद हो गया है। कल–कारखानों के प्रदूषित जल की पुनर्वापसी उन्हीं नदियों में हो रही है। फलतः पर्यावरण का प्रदूषित रूप विकराल होता जा रहा है। वह पानी न खाने के काम आता है, न जीवन निर्वाह के लिए उपयोगी है। अब तो लोग नदियों में स्नान के लिए तरस रहे हैं। नदियों के प्रवाह को बाधित कर बड़े–बड़े बाँध बनाए जा रहे हैं। उससे जलविद्युत पैदा कर हाईमास्ट के बल्ब सड़कों पर रोशनी बिखेर रहे हैं। वैज्ञानिकों का एक वर्ग इसे पर्यावरण का शत्रु मानता है। फिर भी आधुनिक सुख–सुविधा के मोह–जाल में उलझे मनुष्य की आँख नहीं खुल रही है। एक हाईमास्ट बल्ब कई वृक्षों को सूखने के लिए विवश कर देता है।

पर्यावरण और जीवन का अटूट संबंध है। उत्तम स्वास्थ्य, सकारात्मक सोच व स्वस्थ समाज के निर्माण में पर्यावरण की वही

भूमिका है जो सृष्टि के निर्माण में ईश्वर की। पर्यावरण के असंतुलन पर नई पीढ़ी को गंभीरता से चिंतन करना होगा। ऐश्वर्यमय और आरामतलब जीवन की सोच को खारिज करना होगा। शारीरिक श्रम को महत्व देना होगा। आज का युवा मानस भिन्न–भिन्न कार निर्माता कंपनियों के मोहक जाल में उलझकर जाने–अनजाने पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। एक परिवार में जितने सदस्य हैं उतनी कारें हैं। भवनों के निर्माण इतनी अधिक संख्या में हो रहे हैं कि वनस्पतियाँ स्वयं मुरझा जा रही हैं। पर्यावरण को संरक्षित रखने के लिए हमें अनावश्यक जीव–जंतुओं के जीवन को समाप्त करने से भी बचना होगा। असंख्य जीव–जंतु–कीटाणु पर्यावरण के मित्र हैं, अत्यंत उपयोगी हैं। रासायनिक खादों, डिटरजेंट के विषैले जल स्रोतों, नगरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति ने पर्यावरण के समक्ष एक बड़ी चुनौती खड़ी कर दी है।

संपर्क सूत्र

1. डॉ. वासुदेवन 'शेष, जी–4, अक्षय लैट्स, इरुसप्पा स्ट्रीट्स, आइस हाउस, ट्रिप्लिकेन, चेन्नई– 600005. मोबाइल 9444170451 ईमेल – vasudevanshesh@gmail.com
2. डॉ. वेद मित्र शुक्ल, 345, पॉकेट 16, आदर्श अपार्टमेंट्स, सेक्टर 3, द्वारका, नई दिल्ली– 110078, मोबाइल 9953458727, 9599798727 ईमेल – vedmitra.shukla@rajdhani.du.ac.in
3. डॉ. वासंती रामचंद्रन, CII– 16, सह्याद्रि, प्लाट 5, सेक्टर 12, द्वारका, नई दिल्ली– 110078, मोबाइल 9818752270, ईमेल – ramavas2000@yahoo.com
4. श्री राधेश्याम भारती, 281–सी, उत्कर्ष, मॉडल टाउन के पास, विनोबा विहार, मालवीय नगर, जयपुर 302017, मो. 09413395751 ईमेल – bhartiya.radheyshyam3@gmail.com
5. श्री दीपक दीक्षित, फ्लैट नंबर 410, ब्लॉक 2, जी के प्राइड, बालाजीनगर रोड, यप्राल, सिकंदराबाद, मेडचल 500087 (तेलंगाना), मोबाइल 9589030075, ईमेल coldeepakdixit@gmail.com
6. श्री राहुल शर्मा 'अस्त्र', डी–27, अपेक्स सिटी, बागपत रोड, मेरठ, उत्तर प्रदेश, पिन– 250002, मोबाइल 9685144057 ईमेल rahh10580@gmail.com
7. श्री प्रमोद भार्गव, शब्दार्थ 49, श्रीराम कॉलोनी, शिवपुरी म.प्र., मो. 09425488224, 09981061100 ईमेल pramod.bhargava15 @gmail.com
8. श्री पंकज चतुर्वेदी, संपादक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 5, नेहरू भवन, वसंत कुंज संस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली– 110070, मोबाइल 9716043446, 9891928376 ईमेल – pc7001010@gmail.com
9. श्री हरिराम मीणा, 31 शिवशक्ति नगर, किंग्स रोड, अजमेर हाई–वे, जयपुर–302019, मोबाइल 9799556622, ईमेल– hrmbms@yahoo.co.in

10. श्री दुर्गा प्रसाद, अनुसंधित्सु, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, 793022, मोबाइल 9650149480, ईमेल– durga230prasad@gmail-com
11. डॉ. अंबिली टी., सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सरकारी महिला कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, मोबाइल– 9495369970, ईमेल– ambilihindi@gmail.com
12. डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कालीकट विश्वविद्यालय, पोस्ट ऑफिस कालीकट विश्वविद्यालय, थेनहीप्पलम, मलप्पुरम जिला, केरल–673 635, मोबाइल 9446661250 / 9447661250, ईमेल– drhebbarillath@gmail.com, drprabhakaranhebbarillath@gmail.com
13. डॉ. रूपचंद गौतम, 228 / 9, मंडोली, दिल्ली– 110003, मोबाइल 9868414275
14. डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश', 'अभिव्यक्ति', 23, गढ़ विहार, फेज–1, मोहकमपुर, देहरादून–248005, मोबाइल 09411173339 ईमेल– chamoladc@yahoo.com
15. श्री अजित कुमार, शोध–छात्र, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, 793022, मोबाइल 9077078917, ईमेल– ajitk1134@gmail.com
16. डॉ. प्रणु शुक्ला, सहायक आचार्य– हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, टोंक(राजस्थान), मोबाइल 7597784917, ईमेल– pranu.rc55@gmail.com
17. डॉ. के. वनजा, प्रोफेसर एवं डीन, मानविकी संकाय, हिंदी विभाग, कोचीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोचीन विश्वविद्यालय पोस्ट ऑफिस, कोच्ची 682002, ईमेल– vanaja.krevathy @gmail.com
18. डॉ. समीर कुमार सिन्हा, वाइल्डलाइफ ट्रस्ट ऑफ़ इंडिया, एफ –13, सेक्टर–8, नोएडा– 201301, मोबाइल 9939004228, ईमेल– samir.wild@gmail.com

19. डॉ. के. श्रीलता विष्णु, प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिंदी विभाग, श्रीशंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालड़ी, केरल— 683574, मोबाइल 09497273927, ईमेल— sreelathavishnu2018@gmail.com
20. डॉ. प्रियंजन, 318 सिविल बाज़ार, दारी रोड़, धर्मशाला, काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश, मोबाइल 7780855042, ईमेल— prianjansharma @gmail.com
21. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, बी—203, पार्क व्यू सिटी—2, सोहना रोड, गुरुग्राम (हरियाणा) —122018, मोबाइल 07838090732, ई—मेल giriraj3100@gmail.com
22. डॉ. मिलन बिश्नोई, सहायक आचार्य, खाज़ा बंदानवाज विश्वविद्यालय, कलबुर्गी, कर्नाटक, मोबाइल 6380568643, ईमेल— milanbishnoi@ gmail.com
23. श्री पी. रवि, यु. आर ए— 119, उणिच्चिरा, चंगम्पुषा पार्क पी. ओ. जिला एरणाकुलम— 682033, मोबाइल— 9446269365, ईमेल— 456raviparayil@gmail.com
24. डॉ. दीपक कोहली, संयुक्त सचिव, उत्तर प्रदेश शासन, 5/104, विपुल खंड, गोमती नगर लखनऊ— 226010 (उत्तर प्रदेश), मोबाइल 9454410037, ईमेल— deepakkohli64@yahoo.in
25. डॉ. कपिल गौतम, सहायक—आचार्य, संस्कृत विभाग, मानविकी एवं समाजविज्ञान विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान, मोबाइल— 9672199658, ईमेल— kapilg2008 jnu@gmail.com
26. डॉ. गौरी त्रिपाठी, एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ ईमेल— tripathigauri07@gmail.com
27. डॉ. उदय प्रताप सिंह, बी.एफ.ए. 13, हरनारायण विहार, सारनाथ— 221007, वाराणसी, मोबाइल 9415787367,
ईमेल— dr.udaipratapsinghvns@gmail.com

© Government of India
Controller of Publication

PED-1036
450-2024 (DSK-II)

प्रधान संपादक के मंतव्य से साभार...

पुरातन काल से ही भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में पर्यावरण के सभी चल–अचल तत्वों में देवत्व की स्थापना करने के कारण उसके प्रति सुरक्षा, संबद्धता और हृदयभूत संवेदनशीलता का दृढ़ भाव भारतीय मानस में पैठा हुआ है। विभिन्न त्योहारों–रस्मों पर सूर्य–चाँद–तारे को अर्घ्य, गोवर्धन आदि पर्वतों की परिक्रमा, पितृपक्ष में चींटी, कुत्ते कौवे आदि का ग्रास, पीपल, तुलसी, केला, वटवृक्ष आदि वृक्षों की दैनिक पूजा भारतीय समाज की ये सभी गतिविधियाँ हमारे मन–मानस के प्रकृति के प्रति अनन्य जुड़ाव और बार–बार कृतज्ञता–ज्ञापन की परिचायक हैं। संत–साहित्य में भक्त कवियों के स्वरों में पर्यावरण के प्रति संचेतना मुखरित होती दिखाई देती है जब संत कबीर दास कहते हैं– "बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर। पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।" पर्यावरण–चेतना की दृष्टि से देखें तो इस साखी में कवि ने आलंकारिक तथा कम–उपयोगी वृक्षों के स्थान पर सघन और फलदार वृक्षों के अधिकाधिक रोपण की उपादेयता पर बल दिया है।

प्रो.सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर

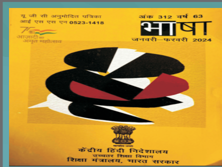

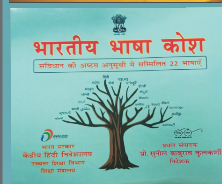

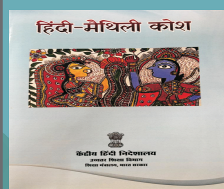

पर्यावरण विमर्श

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
दूरभाषः–011–20862356 / 26105211
एक्सटेंशन– 248
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com

Central Hindi Directorate
(Ministry of Education, Govt. of India)
West Block-7, Ramakrishnapuram,
New Delhi-110066
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com